ग्रन्थकार
श्री पं० बांकेलाल चतुर्वेदी

जिसकी खोज में हम जानते हुए या न जानते हुए भी
रात्रि दिन लग रहे हैं, जिनके बिना हमें क्षण भर
भी चैन नहीं है, जो हमारा सगा सम्बन्धी और
सब कुछ है, जिसको हम कभी किसी
समय भी नहीं भूलते, जो यहाँ के प्रत्येक
हृदय में अपनी झलक दिखा जाता है
उसी अपने इष्टदेव सच्चिदानन्द को
अपने वे हृदय के भाव
समर्पण करता हूँ ।

भूमिका

कैसे आश्चर्यकी बात है कि हम यही नहीं जानते कि हम कौन हैं, कहाँ हैं और जहाँ हैं वहाँ क्यों हैं। यों तो रात्रि-दिनके व्यवहार में हम इन प्रश्नों के सरल उत्तर दे ही लिया करते हैं, अर्थात् व्यावहारिक दृष्टि से सदा यही जानते रहते हैं कि यह जो कुछ देख पड़ते हैं हम वही शरीर हैं, हम संसार में हैं, और अपनी इन्द्रियों को अनेक भोग भोग कर तृप्त करते हुए उनसे प्राप्त सुखों का अनुभव करने ही के लिये हम यहाँ हैं। परन्तु जब कभी-कभी उन्हीं भोगों के भीतर छिपी हुई निस्सारता आकर दृष्टि के सम्मुख खड़ी हो जाती है, तब हमारे जाने हुए सब उत्तर मिथ्या प्रतीत होने लगते हैं। तब हम घबरा कर कहने लग जाते हैं, कि हाय! क्या हम जो कुछ यह देख पड़ते हैं सो नहीं हैं, क्या यह सुन्दर स्थान नाटककी रंग-भूमि के समान है, और हाय क्या ये सारे इन्द्रिय-जन्य सुख केवल एक छलावे के ही समान हैं?

हम इन प्रत्यक्ष उत्तरोंसे परे स्वयं सोचनेका साहस कभी नहीं करते, यदि ये धोखे के सुख स्वयं ही हमें न जँचा दिया करते कि हम गहरी भूल में हैं। फिर अपनी भूल को स्वीकार करके ज्योंही हम आगे बढ़ते हैं त्योंही फिर वे ही सुख आकर हमारे गले लग जाते हैं और वही हमारा कल्पित चित्र हमारी दृष्टि के सम्मुख आकर हममें दृढ़ता ले आता है। हम आगे बढ़ना भूल जाते हैं, यही क्रम सदा चलता रहता है, यहाँ तक कि एक समय हम इस रंग-भूमि से ऐसे विलीन हो जाते हैं, मानो कभी कुछ थे ही नहीं। इस प्रकार हम अपनी वास्तविकता को जाने बिना ही यहाँ से चले जाते हैं।

कुछ लोग साहस कर के प्रयत्नशील हो जाते हैं, परन्तु अप्रत्यक्ष होने के कारण उनको इतनी उलझनें पड़ती हैं कि वे घबरा कर इन पर विचार करना छोड़ बैठते हैं और बिना विचार किये ही किसी एक पंथ का अनुसरण करने लग जाते हैं। यह बात उनकी विवशता की होती है, इसको अन्ध-विश्वास कहते हैं। यह अन्ध-विश्वास उनकी स्वाभाविक इच्छा पर कुठाराघात करता है। चाहे ऊपर ऊपर से वे भले ही अपनी दृढ़ता प्रकट करते रहें, पर जब समय आता है, उनका वह अन्ध-विश्वास धोखा दे जाता है, उनके हृदय को डाँवाडोल कर देता है।

ऐसी दशा में कुछ लोग तो यहाँ तक कह देते हैं कि वास्तव में ये प्रश्न हल ही नहीं हो सकते। यह विश्व की पहेली इतनी जटिल है कि इस पर जितना विचार किया जायगा, उतने ही अनेक तर्क

कदली-पत्र के सदृश निकलते ही चले आवेंगे। तर्क का अन्त नहीं होगा अतः इन पर विचार करना छोड़ प्रत्यक्ष का ही उपभोग करना चाहिए, भविष्य जो कुछ हो।

हमारा हिन्दू-शास्त्र कहता है कि यह बात नहीं है कि ये प्रश्न बिना हल किये ही रह जायँ। वह अन्ध-विश्वास करने को नहीं कहता, वह उन प्रश्नों का उत्तर देता है और साथ ही यह भी कहता है कि प्रथम तुम शक्ति प्राप्त करो जिससे जानी हुई बातें तुमको प्रत्यक्ष हो जाँय। वह शक्ति तुम्हें अपने अन्तःकरण के शुद्ध करने से मिल सकेगी। जैसे दर्पण पर मल चढ़ जाने से उसमें पारदर्शकता नहीं रह जाती, उसी प्रकार तुम्हारे अन्तःकरण पर दीर्घकाल से मल चढ़ जाने के कारण तुम्हारी निश्चयात्मक बुद्धि में निर्णायक शक्ति नहीं रही है। फिर मलीन बुद्धि किस प्रकार तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देकर तुम्हें निश्चय के शिखर पर पहुँचा सकेगी? उस शक्तिहीन बुद्धि से केवल कुतर्क करके तुमको घबराहट तथा असफलता होनी ही चाहिए।

जब कोई शक्ति अपनी वास्तविकता जान लेने की हमारी स्वाभाविक इच्छा को नहीं दबा सकती, तो हमारे लिये इससे बढ़ कर कोई भी अभिशाप नहीं है कि हम उसको बिना जाने ही रह जायँ। और उसकी जानकारी तब तक नहीं हो सकेगी जब तक अपने अन्तःकरण को निर्मल न कर लें। जब यह बात निर्विवाद है तो हमें सम्पूर्ण तर्क-वितर्कों का सहारा छोड़ उन्हीं उद्योगों में लग जाना चाहिए, जिनसे सदा के लिए ये मल धोये जा सकते हैं।

वे ही शास्त्र हमको वताते हैं कि हमारे अन्तःकरण पर काम, क्रोध आदि दुर्गुणी विचारों का विकार रूपी मल चढ़ रहा है, अर्थात् वह उन्हीं दुर्भावों में रँग रहा है। यह मल रात्रि-दिन चढ़ता ही रहता है, इससे हमारे अंतःकरण में जो भीतर देखने की पारदर्शी शक्ति थी वह जाती रही है। हृदय-दर्पण एक दम धुँधला होगया है, और इन मलों को धोडालना हमारे लिए कितना कठिन हो रहा है, यह वात किसी से छिपी नहीं है। ये मल धोये जा सकते हैं केवल सद् विचारों का वहाँ वारम्वार प्रवेश होने से और तीव्र उद्योग करने से। वस इन्हीं दुर्गुण रूपी मलों को हृदय से निकालने के सम्बन्ध में ग्रन्थ के ग्रन्थ भरे पड़े हैं, परन्तु ये ही दुर्गुण उनको पढ़ने और तदनुकूल उपाय करने की रुचि हम में नहीं होने देते। हम में रुचि होती है ऐसी पुस्तकें पढ़ने की जिनमें सांसारिक व्यवहारों की अनूठी-अनूठी वाते हों, जिससे इन भीतर छिपे हुए दुर्गुणों को और भी अधिक उत्तेजना मिलती रहती है। ऐसी पुस्तकें कहानी, किस्से तथा उपन्यास के रूप में लिखी जाती हैं।

मैंने प्रयत्न किया है कि मैं ऐसे पुरुषों को उनकी रुचि के अनुकूल उपन्यास ही पढ़ाऊँ और उसी उपन्यास में उनके वास्तविक् अस्तित्व का चित्र इस भाँति अङ्कित कर दूँ जिससे इसमें मन वहलाव की सामग्री मिलते हुए भी उनकी दृष्टि के सम्मुख वे सब बातें घूमती चली जायँ जो उनको वास्तविकता के समझने में रुकावट डालती; तथा उनके परम उद्देश्य के प्राप्त करने में

रोड़ा अटकाती है। इस भाँति इसको पढ़ते हुए न तो उनका जी ही ऊबे और न वे अपनी इष्ट-सिद्धि से ही वंचित रह जाँय।

मैंने इस पुस्तक का नाम 'भूला यात्री' रक्खा है। जीवात्मा यात्रा कर रहा है, इसीलिए वह यात्री है परन्तु वह भूल रहा है। न तो वह अपने को जानता है न स्थान को और न अपने उद्देश्य को। सदा संग रहने वाले उसके चार साथी हैं: मन, बुद्धि, चित्त, और अहंकार। इन्हीं को संग ले कर वह इस यात्रा में तन्मय हो रहा है। मैंने उनके भी नाम क्रमशः मनीराम, बुद्धिप्रकाश, चेतनदास और अहंकारी रख लिए हैं। यहीं से उपन्यास आरम्भ होता है। भूल में पड़ना उपन्यास का उपक्रम और भूल का निकाला जाना उसका उपसंहार है। सद्गुणों को देवता मान कर प्रत्येक के साथ में देव शब्द व दुर्गुणों को असुर मान कर प्रत्येक के साथ में असुर शब्द जोड़ दिया है। विवेकानन्द (विवेक) यात्री का सच्चा मित्र है, जिसका संग आदि से अंत तक रहा है। इन सबका वास उसके हृदय-गढ़ (हृदय) में ही रहा करता है। गढ़ में दो मार्ग हैं—एक परहित और दूसरा स्वार्थ। परहित-मार्ग पर देव मिलते हैं, जो उसको उसके गन्तव्य स्थान पर पहुँचाने वाले हैं। स्वार्थ-मार्ग पर असुर मिल कर उसको सदा चक्कर में डालते रहते हैं। इसी गढ़ में देवासुर-संग्राम करा कर असुरों को खदेड़ कर भगा देने का प्रयत्न किया गया है।

हृदय-गढ़ से असुरों का निकाला जाना मानो हृदय पर जमे हुए मलों का धो डालना है। दुर्गुणों का निरंतर ध्यान व विचार

हृदय ही में होता है, फिर वे कार्य रूप में प्रकट होते हैं। मनीराम (मन) ही इनको ग्रहण करता है। उस बहके हुए मनीराम को ही सधाये हुए घोड़ों की भाँति स्थिर करके शांत अवस्था में ले आना मानो सम्पूर्ण दुर्गुणों को भगाकर सद्गुणों का पूर्ण रूपेण ग्रहण करना है। वही प्रयत्न इसमें इन सबको पात्र बना कर किया गया है और व्यावहारिक वार्त्तालाप द्वारा प्रकट किया गया है।

यह बात विशेष रूप से ध्यान धरने योग्य है कि यद्यपि यह सब कुछ वाह्य पात्रों द्वारा वाह्य कर्मों का ही खेल खेला गया है, तथापि मेरा अभिप्राय केवल अंतःकरण शुद्ध करने का है। इसमें जो कुछ भी वाह्य कार्यों का रूप दिखाई पड़े उसे आभ्यांतरिक भावों का रूपान्तर ही समझ लेना चाहिये। यद्यपि यह सत्य है कि आभ्यांतरिक विचार किसी न किसी समय कार्य रूप में प्रकट होते ही हैं तथापि कर्मों की उत्पत्ति में केवल जीवात्मा ही कारण नहीं है। क्योंकि वह इस संसार का संचालन नहीं कर रहा है, वह किसी अदृष्ट महान् शक्ति के अधीन है। उसमें कब, कहाँ, और किसके द्वारा, व्यक्तिगत वा समष्टि रूप से किन-किन कर्मों की आवश्यकता है और घटनावश वह किस भाँति प्रकट हो जायँगे, इसमें हमारा हाथ नहीं है। क्योंकि किसी समय हम न चाहते हुए भी विवश होकर किसी कर्म को करते हुए देखे जाते हैं। भगवद्गीता में भी भगवान् ने कर्मों के होने में पाँच कारण बताये हैं, केवल जीवात्मा को ही कर्त्ता नहीं कहा है। अर्थात्

सद्गुणों द्वारा शोधी हुई बुद्धि से भी किए हुए बाह्य कर्मों में भले ही विपरीतता दीख पड़े, जिसका हेतु भगवान् के बताये हुए पाँच कारणों में से कोई हुआ हो और जिसने हमारी अनिच्छा होने पर भी हम से वह कर्म करा लिया हो; परन्तु हमारे आभ्यांतरिक भावों में रत्ती भर भी परिवर्त्तन नहीं होना चाहिए, क्योंकि अपने हृदय में सद्भावों को लाने के लिए हम स्वतंत्र हैं।

यद्यपि इस उपन्यास में स्थान-स्थान पर जीवात्मा (यात्री) की भूलों को निकालने का प्रयत्न किया गया है तथापि उसमें अत्यन्त दृढ़ता तभी आई है जब उसके हृदय (हृदय-गढ़) में से सम्पूर्ण विकार (असुर) निकाल दिये गए हैं। उस समय उसको स्वानुभव होकर वे सब बातें प्रत्यक्ष-सी होगई हैं और वह पूर्ण निर्भ्रम हो गया है।

मुझ सरीखा अल्प शिक्षित मनुष्य पूर्वोक्त जटिलता को उपन्यास-द्वारा समझाने का साहस कर बैठा है, जिसने आज तक कभी कोई पुस्तक लिखी ही नहीं; और न वह स्वयं समझ रहा है कि इसमें उसको कहाँ तक सफलता हुई है। अस्तु, जो कुछ मैंने सीखा और जाना था उसी को अपने प्रेमी मित्रों के अत्यन्त आग्रह करने पर सम्पूर्ण गुण-ग्राहक प्रेमियों के सम्मुख रख दिया है। यदि मेरा उद्योग विद्वत्समाज की दृष्टि में ठीक उतरा तब तो मेरा साहस और भी बढ़ जायगा, नहीं तो मैं यही समझूँगा कि मेरे इतने समय का दुरुपयोग होने से बच गया। मेरे दोनों हाथ लड्डू हैं।

अन्त में मैं पं० हरिशङ्करजी शर्मा 'कविरत्न' (आगरा) का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ जिन्होंने इस पुस्तक के संशोधन का भार अपने ऊपर लेकर उन त्रुटियों को दूर कर दिया है जो मैंने पुस्तक-लेखन में की थीं।

श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी ।

भवदीय—
बाँकेलाल चौबे,
टूण्डला।

भूल-सुधार

पुस्तक के छपने में कुछ अशुद्धियाँ रह गई हैं। पाठक कृपा कर उन्हें निम्न-लिखित शुद्धि-पत्र के अनुसार सुधारलें।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१३	११	किंचिन्	दुख किंचित्
१४	११	नहीं	वहीं
१६	१	आधीश्वरी	अधीश्वरी
२६	३	तृप्त	अतृप्त
"	५	दुराग्रह	दुराग्रही
३५	२०	राति	रति
५६	१७	चारों	चरों
६२	१६	में	ने
६४	२०	सरसन	सरवस
११२	१४	तुम्हारे	हमारे
१२१	३	प्रसंशा	प्रशंसा
१२३	४	पहुँचाना	पहुँचना
१२६	२१	हम	तुम
१४३	१४	अदि	यदि
१४७	१७	वैंठ	वैठा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५०	२०	विवेकासुर	अविवेकासुर
१५८	१५	परअपकासुर	परअपकारासुर
१६८	५	सकता	सकता है
१६६	२१	कल्प	अल्प
१८१	३	सर्थक	सार्थक
१६७	७	सकते हैं	गए हैं
२०१	१७	होता	होता है
२०२	८	तए	गए
२०५	३	प्रसंशा	प्रशंसा
२१५	६	देखर	देकर
२१५	६	यह	यही
२१६	२०	हो हुए	हुए
२१०	११	किरती	करती
२१४	१२	के ही दुखी	के दुखी ही
२६५	२०	मायासुर	हे लोभासुर
२६६	१	सुन्दरी	सुरी

इनके अतिरिक्त छपते-छपते कहीं-कहीं मात्राएँ भी टूट गई हैं, पाठक उन्हें भी यथास्थान सुधार लेने की कृपा करें।

भूला यात्री

भूल

१

"मैं अब घूमते घूमते बहुत थक गया, कुछ पता नहीं चलता कि यह क्या माया है, मेरी घुड़दौड़ ने मुझे एक दम क्लांत कर दिया।" ऐसा कहता हुआ एक यात्री एक स्थान पर बैठ गया और अपने एक साथी से बोला, कि हे मनीराम, बताओ अब तुम्हारी क्या इच्छा है ? तुम्हारे कहने से व तुम्हें ही प्रसन्न करने को मैंने बड़ा श्रम उठाया, परन्तु कुछ फल न निकला। जितना घूमा उतना ही मार्ग जटिल होता गया। सचमुच मैं मार्ग भूल रहा हूँ। मैं मार्ग ही नहीं भूल रहा, किन्तु यह भी भूल रहा हूँ कि मैं कौन हूँ ! मुझे स्वयं अपना ही पता नहीं रहा, और यह भी चेत नहीं रहा कि मैं कब से घूम रहा हूँ, इस समय कहाँ हूँ, यहाँ कहाँ से आया हूँ और कहाँ जाना है। अर्थात् यहाँ की भूलभुलैयों

के चक्कर में पड़ कर मैं अपने गन्तव्य स्थान को नितान्त ही भूल गया और तुम मुझे इतना भटका रहे हो कि मेरा इतना सारा घूमना ही निष्फल हो रहा है। जहाँ देखो वहाँ तुम अटक जाते हो, जब कुछ सार नहीं मिलता तब और आगे दौड़ने लगते हो। चेतनदास भी तुम्हारा ही साथ देने लगता है, बुद्धिप्रकाश विचारा बहुत बल लगाता है, परन्तु तुम दोनों उसको भी चक्कर में डाल देते हो। फिर ऐसी दशा में अहंकारी भी तुम्हारा ही पीछा करने लगता है। तुम्हीं मेरे चारों साथी—जिनको कि संग लेकर मैं इस यात्रा में लग रहा हूँ, मुझे खूब भटका रहे हो। क्योंकि तुम्हीं मेरी शक्ति हो व तुम्हीं मेरी यात्रा के सहायक हो। अब बताओ कि क्या हम इसी भाँति भूल में पड़े रह कर सदा भटकते रहेंगे या कभी हमारे भटकने का अन्त होकर हम अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँचेंगे ?

इस समय तो मेरी दशा उस भूले हुए मृग के समान हो रही है जो प्यासा होने के कारण चमकती रेती को देख कर, उसे जल समझता हुआ, दौड़ कर जाता है, परन्तु वहाँ जल न मिलने से व्याकुल होकर सिर पटकने लगता है। फिर भी ऐसे ही अन्य स्थान को देख कर दौड़ता है, पुनः उसकी वही दशा हो जाती है। जो कुछ हो हमें अब सावधान होकर किसी ऐसे मार्ग-परिचित पुरुष की खोज करनी चाहिए जो हम भूले-भटकों को राह बता कर हमारा दुख दूर करदे।

चेतनदास ने कहा कि वास्तव में हम बड़ी गहरी भूल में पड़े हुए हैं। इस बात पर हम कभी विचार ही नहीं कर सके कि हमारी भूलों को निकालने वाले, तथा हमको ठीक-ठीक मार्ग बता देने वाले किसी पुरुष की हमको खोज करनी चाहिए। जब यहाँ की प्रत्येक बात में भूल है तो यह भी बड़ी भारी भूल हो रही है। यही तो यहाँ की भूलभुलैयों की तारीफ़ है कि भूल में पड़ा हुआ भूल पर भूल करता ही रहता है। मुझे कभी-कभी इस का विचार तो होता था कि हम लोग अंधाधुंध कहाँ चले जारहे हैं, परन्तु फिर भूल जाया करता था और भूलभुलैयों के चक्कर में पड़ जाया करता था। मेरी सलाह है कि इस काम को बुद्धिप्रकाश ही ठीक-ठीक कर सकेगा, वही पता लगा सकेगा और वही मार्ग-परिचित पुरुष से मिलने पर उसकी बात ठीक-ठीक समझभी सकेगा। यह सामर्थ्य इसी में है।

बु०—मैं भरसक प्रयत्न करूँगा, और आशा है कि पता लगा लूँगा; परन्तु डर यह है कि हमारे मित्र मनीराम फिर न कहीं बहक जायँ, क्योंकि यह शीघ्र-शीघ्र बहक जाने के स्वभाव वाले हैं। फिर कोई भी समझावे तो समझते ही नहीं। बालक के समान हठी बन जाते हैं। यदि ये सँभले रहें तो मैं बीड़ा उठाता हूँ कि अपने प्रयत्न में अवश्य सफल होऊँगा।

या०—आखिर तो मनीराम हमारे अधीन ही हैं, अब मैं इनका हठ नहीं मानूँगा। हमारा सर्वनाश हो रहा है, आपत्ति पर

आपत्ति झेल रहे हैं, कहाँ तक मैं इनके हठ को रक्खूँगा।

म०—नहीं मैं प्रण करता हूँ कि अब सावधान रहूँगा।

चे०—और मैं इनको चेताता रहूँगा।

अहं०—मुझे तो इनका रत्ती भर भी भरोसा नहीं है। आप लोग इनको भली भाँति जानते हैं कि ये बड़े चंचल हैं, इनके संकल्प-विकल्प घड़ी-घड़ी में बदलते रहते हैं। इनकी अस्थिरता को क्या कहें, पारे के समान ढरकते हैं, बिजली के समान इधर से उधर पलक मारते दौड़ जाते हैं; बलवान् हैं, हठी हैं, बाल स्वभाव हैं और दुर्निग्रहणीय हैं।

म०—यारो, इस समय मेरी बुराई भर पेट कर लो, परन्तु याद रखना, जब समय आवेगा केवल मेरी—हाँ केवल मेरी ही—सहायता यात्री को सफल मनोरथ कर सकेगी। क्योंकि तुम सब जानते हो—भली भाँति जानते हो—कि यदि मैं ही इनकी नैया को मँझधार में डुबाने वाला हूँ, तो मैं ही उसे किनारे लगाने वाला हूँ। यदि भव-जाल में फँसाकर मैं ही इनको रुलाता हूँ, तो मैं ही छुड़ाकर हँसाता हूँ। इच्छाओं की प्रज्वलित अग्नि को यदि मैं ही जलाता हूँ, तो मैं ही बुझाता हूँ। इनके अभीष्ट स्थान का यदि मैं ही छुड़ाने वाला हूँ, तो केवल मैं ही मिलाने वाला हूँ; ये अपना कोई भी भेद मुझसे नहीं छिपा सकते और न बिना मेरी सहायता के कोई भी काम कर सकते हैं।

या०—निस्सन्देह तुम में ऐसी ही शक्ति है, फिर मैं नहीं

समझता कि तुम मेरे सर्वनाश को अच्छी तरह समझते हुए भी क्यों नहीं वही काम करते जिसमें मेरा हित हो। हठ क्यों नहीं छोड़ देते हो?

म०—मैं यह कभी नहीं चाहता कि आपका अहित हो। क्या आपके अहित होने से मेरा कभी हित हो सकता है? आपको कष्ट मिलने पर क्या मैं कभी सुखी रह सकता हूँ? परन्तु करूँ तो क्या करूँ। जिस समय मैं अचेत हो जाता हूँ, किसी का जादू मुझ पर चल जाता है, उस समय मुझे हिताहित का ध्यान ही नहीं रहता।

जिस समय ये सब आपस में इस प्रकार बातचीत कर रहे थे, समीप ही एक अपरिचित पुरुष उसको बड़े ध्यानपूर्वक सुन रहे थे। बुद्धिप्रकाश ने उनको खड़ा देख, अभिवादन करते हुए उनसे आसन पर बैठने की प्रार्थना की। वह बैठ गए और कहने लगे कि मैं आप लोगों की करुणाजनक वार्ता सुनकर ही दयार्द्र हृदय हो यहाँ खड़ा हो गया था, इच्छा हुई कि मैं आपकी कुछ सहायता करूँ।

बु०—महाशय आपका नाम क्या है?

वह—मेरा नाम ध्यानानंद है।

बु०—महाराज जब आपने हमारी दुख-कहानी सुन ही ली है तो कृपा करके हमारा संकट मोचन कीजिए।

ध्या०—मुझमें वह शक्ति है, कि जो कोई किसी अज्ञात

विषय को जानना चाहे उसका मैं ऐसे प्रगाढ़ रूप से उसका मनन कराता हूँ कि वह उसको साक्षात्-सा हो जाता है; साक्षात ही नहीं हो जाता, किन्तु वह उसका अधिकाधिक सादृश्य प्राप्त करता जाता है। बिना मेरी सहायता के तुम्हारी भूलें कदापि नहीं निकल सकतीं। क्योंकि मैं ही तुमको ऐसे-ऐसे महापुरुषों से मिलाऊँगा कि जिनकी कृपा व सहायता प्राप्त कर तुम सम्पूर्ण दुखों से छूट जाओगे। सबसे प्रथम मैं तुम्हारी भेंट एक ऐसे प्रेमी, निष्कपट, साधु पुरुष से कराता हूँ कि जिनको तुम अपना सच्चा मित्र बना कर उनसे सदा सहायता प्राप्त करते रहोगे। वे सदा छाया की भाँति तुम्हारे पीछे-पीछे घूमा करेंगे और तुम्हारे पथ-प्रदर्शक होंगे, तथा तुम अन्त में उन्हीं के द्वारा सफल मनोरथ होकर आश्चर्य करोगे।

विवेक

२

पतित पावनी भागीरथी के तीर एक परम पुनीत पर्णकुटीर में हम आज एक वयोवृद्ध पुरुष को बैठा देखते हैं, । यह माथे में त्रिपुण्ड लगाये, गले में रुद्राक्ष की माला धारण किए हुए हैं, इनके मुख पर गंभीरता विराज रही है, समय सायंकाल का है, सूर्यास्त हो रहा है, चंद्र देव का उदय होना प्रारम्भ होगया है। इसी समय हमारे पूर्व परिचित यात्री को संग लिए हुए ध्यानानन्दजी इनके पास पहुँचे और कहने लगे कि विवेकानन्दजी, आज आप की सेवा में यह यात्री उपस्थित हुआ है और आप से अपनी दुख-कहानी कहना चाहता है । आज्ञा पाकर वह यात्री एक ओर बैठ गया। मनीराम प्रभृति इसके संग थे ।

विवेकानन्द ने कहा कि यात्री को अपना वृत्तान्त स्वयं कहने की आवश्यकता न होगी, मैंने अपने अनुभव से सब कुछ जान लिया। मेरा तो काम ही यह है कि मैं दुखियों की सहायता करूँ। जब तक ये मुझको भूले रहे थे दुखी रहे, अब इन्होंने मुझे स्मरण किया मैं इनकी सहायता करने को तैयार हूँ। ध्यानानन्दजी तुम बड़े शक्तिमान् हो। जो तुम्हारा सहारा लेकर किसी के पास जाता है फिर तुम अपनी प्रबल शक्ति से उसको उस असहाय का सहायक बना ही देते हो । यात्री के धन्य भाग्य हैं कि जिसके ऊपर आप दयालु होगए।

या०—महाराज मैं असाध्य रोगी—जिस धन्वन्तरि वैद्य की बहुत काल से खोज में था, वह आज मुझे मिल गया। अब मेरा रोग निश्चय दूर हो जायगा, उसके लिये मैं ध्यानानन्दजी का परम अनुगृहीत हूँ।

वि०—परन्तु रोगी को ओषधि स्वयं सेवन करनी पड़ेगी, वह चाहे जितनी कटु हो।

या०—अवश्य करूँगा।

वि०—पहले अपने मन्त्री मनीराम से तो पूछ लो। वह न तो स्वयं सेवन करेगा और न तुमको करने देगा क्योंकि तुम उसकी इच्छा के विरुद्ध कुछ भी नहीं करते।

बुद्धिप्रकाश ने हाथ जोड़ कर कहा, कि महाराज हमारे स्वामी इतने सरल व शुद्ध हैं कि ये अपने मन्त्रियों पर पूर्ण विश्वास रखते हैं। हम लोग इन्हें जिस ओर ले जाना चाहें लेजा सकते हैं, उसका कारण यह है कि ये इस नगरी में आकर अपने को भूल से गए हैं। इनको यह भी मालूम नहीं रहा कि ये कौन हैं, इस समय ये कहाँ भ्रमण कर रहे हैं, कहाँ से आये और इनको कहाँ जाना है। जिस समय आप इनको इनके वास्तविक रूप से परिचित करा देंगे तथा इनकी अन्य भूलों का भी इन्हें पता देंगे उस समय इनको आत्मिक बल प्राप्त हो जायगा। जैसे सिंह का बच्चा स्यारों के सहवास से तुच्छ-तुच्छ बातों से डरता रहता है, परन्तु जिस समय उसको अपने स्वरूप का वास्तविक

बोध हो जाता है वह अपनी शक्ति से परिचित होकर फिर किसी से भी नहीं डरता। उसी प्रकार जब ये भी अपनी शक्ति से परिचित हो जायँगे, तब इनके अधीनों का इन पर कुछ भी वश नहीं चलेगा।

वि०—बुद्धि प्रकाश तुमने बात यथार्थ ही कही है, परन्तु मेरा अभिप्राय यह है, कि जिस मायापुरी में तुम आज कल भ्रमण कर रहे हो, वह बड़े विकट जालों से गुथी हुई है। इसका प्रत्येक फंदा यात्री के पगों में पड़ कर उसको ऐसा विवश कर देता है कि उसका उसमें से निकलना कठिन हो जाता है। मैंने सहस्त्रों ऐसे यात्री देखे हैं, जिनको कि उनके वास्तविक स्वरूप का बोध करा दिया गया, यहाँ के गुथे हुए जालों से, खाइयों से, गड्ढों से तथा पैने-पैने कंटकों से भी सतर्क रहने के लिए समझा दिया गया, परन्तु फिर भी वे ऐसे गिरे कि पुनः उठने के योग्य भी न रहे। तुम अपनी भूलों को उपदेश द्वारा समझना चाहते हो, परन्तु उन पर तुम्हारा विश्वास ही न जमेगा, फल कुछ भी नहीं निकलेगा।

या०—तब तो महाराज मेरी घबराहट और भी बढ़ गई। यदि यहाँ आकर भी मेरा दुख दूर न हुआ तो फिर मेरा कहीं भी ठिकाना नहीं है।

वि०—नहीं घबराने की कोई बात नहीं है, अब तुम मेरे पास आए हो तो मैं एक सच्चे मित्र की भाँति तुम्हारी सहायता

करूँगा । क्योंकि जो बात परोक्ष में है उस पर कहने सुनने से कैसे विश्वास हो सकता है ? उसको तुम्हें प्रत्यक्ष के सहारे समझना पड़ेगा, जिस पर तुम सहज ही में विश्वास कर सकते हो। इस मायापुरी में तुम्हें अँधेरे में टटोलना पड़ेगा, क्योंकि यह अँधेरी नगरी है । असुरों ने यहाँ अँधकार फैला रक्खा है, उसी अँधेरे में मैं तुम्हें हर समय सहारा देता रहूँगा, तुम्हारा हाथ पकड़ कर तुम्हें मार्ग बताता चलूँगा। मैंने तुमको मित्र बनाया है, मैं मित्र से विश्वासघात कभी नहीं करूँगा।

यात्री विवेकानन्द के चरण पकड़ कर कहने लगा कि मेरे भाग्य उदय हुए जो मुझको आप सरीखा प्रभावशाली निष्कपट मित्र मिल गया। अब मुझे पूर्ण आशा हो गई कि आपकी ही कृपा से मेरी भूलों का अंत होगा, और मैं अपने गंतव्य स्थान पर पहुँच सकूँगा।

वि०—परन्तु इसमें एक बात और भी है कि यदि तुम किसी के बहकाने में आकर मुझे छुटकार दोगे, मुझसे अपना हाथ छुड़ा लोगे, तो मैं तुम्हारे पास से भाग जाऊँगा।

या०—नहीं, ऐसा कदापि नहीं करूँगा।

वि०—मनीराम से सावधान रहना यह शीघ्र बहका कर मेरा साथ छोड़ने के लिए तुम्हें विवश करेगा।

या०—मैं इसका कहा नहीं मानूँगा।

वि०—तो तुम सफल मनोरथ हो सकोगे।

ध्येय

३

संसार में स्वजनों का व अन्य सम्बन्धियों का मिलना उतना कठिन नहीं है, जितनी कठिन एक सच्चे मित्र की प्राप्ति है। यों तो मनुष्य को नित्य ही नए-नए मित्र मिला करते हैं, परन्तु वे स्वार्थी मित्र, जहाँ उन्हें निज स्वार्थ की हानि होती दीख पड़ी अथवा मित्र पर कोई संकट के लक्षण भी दिखाई देने लगे तो ऐसे भाग जाते हैं कि फिर उनकी परछाँई भी दुर्लभ हो जाती है। सच्चे मित्र में कपट का लेश भी नहीं होता उसकी मित्रता आरम्भ में भले ही कम दिखाई पड़े परन्तु दिन के उत्तरार्द्ध भाग की छाया के समान वह उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है। उसमें अपने मित्र के दुख देखने की शक्ति ही नहीं होती। क्या ऐसे मित्र का पा लेना कुछ कम भाग्य की बात है?

हमारे यात्री को ऐसा ही सच्चा मित्र मिल गया है, वही मित्र विवेकानन्द यात्री के पास बैठे हुए बात चीत कर रहे हैं।

विवेका०—मित्र तुम भूल भुलैयों के चक्कर में पड़कर दुखी हो रहे हो। तुम सुखी तभी हो सकते हो जब तुम्हारी भूलें निकल जायँ। तुम्हारी प्रथम भूल तो यह है कि तुम अपने ही को भूल रहे हो, दूसरी भूल यह है कि तुम यही नहीं जानते कि इस समय तुम कहाँ हो, तीसरी भूल यह है कि तुमको यह चेत

नहीं रहा कि तुम कहाँ से आए और तुम्हें कहाँ को जाना है। अब मैं अन्य भूलों को निकालने से पहले तुम्हें यह समझाऊँगा, कि तुमको कहाँ जाना है। फिर उसीसे तुम्हारी अन्य भूलों का पता स्वतः ही चलता चलेगा। तुम निरंतर यात्रा कर रहे हो परन्तु यह नहीं जानते कि तुम कहाँ जाने के लिए यह यात्रा कर रहे हो, और जहाँ जाना चाहते हो। क्या तुम कह सकोगे कि तुम वहाँ निष्प्रयोजन पहुँचना चाहते हो ?

या०—कभी नहीं, मेरा अवश्य कोई प्रयोजन होना चाहिए।

वि०—क्या तुम बता सकोगे कि वह तुम्हारा प्रयोजन क्या है ?

या०—मैं इसके समझने में भी भूल कर रहा हूँ।

वि०—जब तुम यह यात्रा निष्प्रयोजन नहीं कर रहे हो, तो कहना पड़ेगा कि तुम कुछ प्राप्त करने को किसी गन्तव्य स्थान पर पहुँचना चाहते हो।

या०—निस्संदेह !

वि०—अब विचारणीय यह है कि वह क्या वस्तु है जिसके कि प्राप्त करने की तुम्हारी इच्छा हो रही है और उसको न समझते हुए भी तुम इतनी दौड़-धूप कर रहे हो। तुम्हारी वह कौन-सी प्रबल इच्छा है जो तुमको खींचे-खींचे फिर रही है।

या०—महाराज मेरी इच्छा सदा यही रहती है, कि मुझको सुख मिले। मैं दुख से सदा घृणा करता हूँ।

वि०—तुम ठीक कहते हो। वास्तव में तुम केवल सुख के इच्छुक हो। जब यहाँ पर तुमको किसी पदार्थ में सुख मिलता है तब तुम उसीको अपना गन्तव्य स्थान समझ कर ठहर जाते हो, परन्तु उसी सुख में—उसके पीछे छिपा हुआ दुख जैसे ही तुम्हारे सम्मुख आजाता है, तुम वहाँ अपनी इच्छित वस्तु को खोया हुआ देखकर तुरन्त ही आगे दौड़ने लगते हो। क्या यह बात सत्य है?

या०—बिल्कुल ठीक है।

वि०—सारांश यह है कि तुम सुख अर्थात् आनन्द के इच्छुक हो, तुम वहाँ पहुँचना चाहते हो जहाँ आनन्द का सागर हो, वह आनन्द एकरस हो, उसमें किंचित् भी मिश्रित न हो, वही तुम्हारा गन्तव्य स्थान होना चाहिए।

या०—हाँ महाराज, ठीक समझ गया।

वि०—और भी बताओ कि क्या तुम यह नहीं चाहते कि तुम्हारा अस्तित्व सदा बना रहे। क्या तुम कभी अपने को खोना चाहते हो? क्या तुम्हारे स्वभाव में त्रिकालाबाधित सत्ता की प्राकृतिक भावना सदा ही बनी नहीं रहती? क्या तुम्हारे में यह इच्छा नहीं रहती कि अटूट इच्छित पदार्थ 'आनन्द' को सदा बने रहकर प्राप्त करते रहो?

या०—निश्चय यही इच्छा रहती है।

वि०—इसके अतिरिक्त क्या तुम्हारे में यह उत्सुकता सदा

नहीं रहती कि अमुक पदार्थ, अमुक दृश्य वा अमुक भाव को जितना तुम अब तक जान, देख और समझ चुके हो, उसके आगे और क्या है, उसको भी जान लो? क्या तुम्हारी ज्ञान-पिपासा सदा बढ़ती नहीं रहती—अर्थात् जिस आनन्द को तुम चाहते रहते हो, उसको ज्ञानपूर्वक ही भोगना चाहते हो।

या०—अवश्य।

वि०—सारांश यह निकला कि तुम अपने एक मात्र ध्येय आनन्द को सत्य रूप में तथा ज्ञान रूप में देखना पसन्द करते हो—अर्थात् तुम्हारा आनन्द सत् व चित् मिश्रित होना चाहिए। तो ऐसी तुम्हारी इच्छा जहाँ पूर्ण रूपेण पूर्ण हो वही तुम्हारा गन्तव्य स्थान होना चाहिए, और वहीं पहुँचने के लिए तुम निरंतर यात्रा कर रहे हो। अपनी यात्रा में तुम्हें अपनी इच्छा पूर्ण होती कभी-कभी दिखाई पड़ती है। परन्तु वह अपूर्ण होती है तो अपूर्ण को पूर्ण कहीं होना ही चाहिये। प्रत्येक वस्तु का स्रोत कहीं होना ही चाहिए, जो पूर्ण हो। तुम थोड़े से सन्तुष्ट नहीं होते इसीलिये पूर्ण की ओर दौड़ रहे हो। जहाँ वह पूर्ण प्राप्त हो सके वहीं तुम्हारा गन्तव्य स्थान होना चाहिए। तो बताओ कि क्या तुम अब अपने गन्तव्य स्थान को ठीक-ठीक समझ गए। क्या तुमको वह तुम्हारा प्रिय गन्तव्य स्थान प्रत्यक्ष-सा हो गया? अपने चारों साथियों से भी पूछ लो कि उनको तो अब इसमें कोई सन्देह नहीं रहा। सब एक स्वर से चिल्लाकर

कहने लगे कि हाँ-हाँ महाराज, हम सब ठीक-ठीक समझ गए; वही हमारा गन्तव्य स्थान है, वहीं हम पहुँचना चाहते हैं, और यही हमारी प्रबल इच्छा है।

वि०—अच्छा तो तुम अब मेरे साथ-साथ अपनी यात्रा में चलो, मैं तुमको तुम्हारे ही इच्छित पदार्थ के द्वारा तुम्हारी यात्रा पूर्ण कराऊँगा—अर्थात् उसी पूर्ण सागर तक ले चलूँगा जहाँ पहुँचकर तुम्हारी इच्छा पूर्ण रूपेण पूर्ण हो जायगी। तुमको यात्रा में भी उसके दर्शन होते चलेंगे। वह महासागर रूपी आनन्द-देव तुमको तीन रूपों में प्रत्यक्ष होता चलेगा। तुमको ज्ञानदेव, कभी सत्यदेव और कभी आनन्ददेव यात्रा में ही अपनी झलक दिखाते चलेंगे। परन्तु तुम्हें अपने प्रत्येक पग पर अपनी इच्छित वस्तु का ध्यान रखना होगा, अपने मार्ग में उसीको मूल मन्त्र बना कर चलना होगा।

माया

४

मायापुरी की आधीश्वरी मायारानी को हम आज एक सुन्दर सुसज्जित कमरे में एक सिंहासन पर विराजमान देखते हैं। रक्त वर्ण, रक्त वस्त्राभूषणों से विभूषित, विशाल मूर्ति, गाव तकिया के सहारे बैठी हुई ऐसी देदीप्यमान हो रही है, मानो सहस्रों विश्व की शक्तियाँ एक स्थान पर एकत्र होकर उस विशाल मूर्ति में समा गई हैं। गले में मुक्ता-माला पड़ी हुई है, हाथ में कराल कृपाण लिए हुए है, लोहित वर्ण दृष्टि में भीषणता आगई है और उसके सुदीर्घ नेत्रों से भयङ्कर अग्नि-ज्वाला निकल रही है। ऐसी चन्द्र, सूर्य व तारागणादिक की सृष्टि करने वाली मायारानी के सम्मुख महाकाल, दशों दिशाएँ, मरुतगण, गंधर्व, यक्ष व राक्षस नत मस्तक खड़े हैं। एक ओर महामारी, विसूचिका आदि व्याधियाँ भयङ्कर रूप धारण किए उपस्थित हैं, तो दूसरी ओर ऋद्धि-सिद्ध विराजमान हैं। एक ओर देवगण उनका गुण-गान कर रहे हैं, तो दूसरी ओर अनेक असुर उसका नाना विधि बखान कर रहे हैं। मारण, मोहन, उच्चाटन और वशीकरण मन्त्रों से मन्त्रित किया हुआ सम्पूर्ण दरबार जन-समूह से खचाखच भरा है। जिस ओर देवगण विराजमान हैं उसी ओर सिंहासन पर मायारानी के समीप ही एक शुक्ल वर्णा स्त्री बैठी है। असुरों की

ओर एक स्त्री कृष्ण वर्ण बैठी है। सभा के उपस्थित सम्पूर्ण मनुष्यों में सन्नाटा छा रहा है। मायारानी ने निस्तब्धता को भंग करते हुए, एक दूती की ओर देख कर, जो समीप ही खड़ी हुई थी, पूछा कि मेरे राज्य के क्या समाचार हैं? कोई नवीन बात हो तो सुना। उस दूती ने हाथ जोड़ कर निवेदन किया कि महा-रानाजी हमारे राज्य में एक नवीन यात्री ने प्रवेश किया है, उससे ध्यानानन्द के द्वारा विवेकानन्द ने मित्रता करली है और उसको भरोसा दिया है कि वे उसे हमारी नगरी से निकाल कर उसकी यात्रा पूरी करा देंगे।

माया—क्या विवेकानन्द ने, उसको हमारी नगरी से निकाल देना हँसी ठट्ठा समझ रक्खा है। यदि वे इसी तरह यात्रियों को हमारी नगरी से निकाल दिया करेंगे, तो हमारे खेल का अन्त ही हो जायगा; और तू उसको नवीन यात्री कैसे कहती है, वह तो एक दीर्घ काल से इसी नगरी में चक्कर काट रहा है। मैं ही अपने स्वामी की इच्छानुसार सब यात्रियों को खेल खिलाया करती हूँ और खेल के नियमानुसार उसे अनेक गढ़ों में घुमाया करती हूँ। कह और क्या समाचार हैं।

दूती—विवेकानन्द के बहकाने से आपकी प्रजा में बहुत से यात्री आपको मिथ्या, छलावा, ठगिनी व क्रूर आदि नामों से संबोधन करने लग गए हैं।

माया—मैं नहीं समझती कि विवेकानन्द यात्रियों को क्यों

उल्टी बात समझाया करते हैं। वे अपने को बहुत बुद्धिमान समझते हैं, यह नहीं सोचते कि जब मैं किसी महान् शक्तिशाली की– जो सत्य स्वरूप है और जो सदा मुझमें गुप्त रूप से वास करते हैं—एक शक्ति हूँ तो मैं मिथ्या कैसे हो सकती हूँ। क्या सत्य-स्वरूप की शक्ति अथवा विभूति कभी मिथ्या हो सकती है? हँसी की बात है, कि यात्री मेरे ही में रहते और मुझसे ही शिक्षा प्राप्त करते हुए भी अंत में मुझको ही मिथ्या कहने लग जाते हैं। क्योंकि मेरे अनेक भाँति पट परिवर्तन करने के कारण मैं उनको मिथ्या जँचने लगती हूँ। मैं चाहे कितने ही रूप बदलती रहूँ पर फल में मैं सत्य ही ठहरती हूँ, क्योंकि मेरा स्रोत तो सत्य से ही है। मिथ्या तो कोई वस्तु ही नहीं। जहाँ देखो वहाँ सत्य ही छा रहा है। मैं ठगिनी नहीं हूँ और क्रूर भी नहीं हूँ; क्योंकि मैं तो स्वामी की इच्छानुसार ही खेल खिलाया करती हूँ। यह खेल द्वन्द्वों से खिलाया जाता है। यदि द्वन्द्व न रचे जाते तो खेल हो ही नहीं सकता था। उन्ही द्वन्द्वों के द्वारा मैं यात्रियों की कठिन से कठिन परीक्षा लेती रहती हूँ। खेल रूपी कर्म-चक्र पर उन्हें घुमाती रहती हूँ। कभी वे गिरते हैं कभी उठते हैं। जैसे-जैसे वे खेलों में सफल होते रहते हैं उनमें निर्मलता तथा दृढ़ता आती रहती है।

जो लोग मेरी वास्तविकता को नहीं समझते, वे ही मुझे क्रूर अथवा ठगिनी कहा करते हैं। देखो, मैं त्रिगुणमयी हूँ, मेरी इस मायापुरी में कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है जिसमें मेरे ही तीनों

गुण न हों—अर्थात् मैं ही सब पदार्थों में अपने तीन रूप धारण करके सदा वास करती हूँ। यात्री के गढ़ में भी अपने इन्हीं तीनों रूपों से सदा उपस्थित रहती हूँ। मेरे रूपों के नाम सत्, रज और तम हैं। जब यात्री के गढ़ में अज्ञान, मन्दता, असावधानी, निद्रा, आलस्य, मोह व प्रमादादि की वृद्धि हो, तब समझो कि मैं तमोगुण रूप से प्रकट होकर वहाँ अंधकार कर देती हूँ। मेरे अन्य दोनों रूप छिप जाते हैं। जब वहाँ लोभ-प्रवृत्ति, कर्मारम्भ, अशांति तथा इच्छा का उदय हो, तब समझो कि मैं वहाँ रजो-गुण रूप से रहती हूँ और उसजगह धुँधला प्रकाश हो जाता है। जब वहाँ प्रकाश व ज्ञान का उदय हो, तब जानो कि मैं वहाँ सतोगुण रूप से प्रकट होकर प्रकाश ही प्रकाश कर देती हूँ। जिस समय मैं वहाँ एक रूप से रहूँगी, मेरे अन्य दोनों रूप छिपे रहेंगे। इस प्रकार मैं सदा उसके गढ़ में वास करती हुई उसको स्वयं ही अवसर देती रहती हूँ कि वह जिस रूप को चाहे उसे अपना कर खेल खेलता हुआ ही अपने मार्ग में चलता रहे। अब यह उसी की अयोग्यता है कि वह मेरे सत् रूप को न अपना कर तमरूप से प्रेम करता रहे।

यदि मैं क्रूर होती तो मुझ में यह समता न होती। खेल की यही तो तारीफ़ है कि खेल की सब सामग्री सब यात्रियों के सम्मुख समभाव से उपस्थित कर दी जाती है। खिलाड़ी अपनी ही योग्यतानुसार चाहे जीते चाहे हारे, खेल में अन्याय नहीं होने

पावेगा। फिर न जाने यात्री लोग मेरी क्यों निंदा किया करते हैं—मुझको क्यों बुरा-भला कहा करते हैं। जब खिलवाड़ उनके सामने है, वे निष्पक्ष भावसे खिलाये जा रहे हैं, फिर चातुरी से जी लगा कर, वीर बन कर क्यों नहीं खेलते। रोंगटी तो खेल में आप करते हैं और मुझको कोसा करते हैं। मुझको ठगिनी बता कर मुझसे दूर भागने का प्रयत्न किया करते हैं। भाग के कहाँ जायँगे, चक्कर तो मेरी नगरी ही में काटा करेंगे। और यदि इस खेल से निकलना भी चाहेंगे तो मेरी ही नगरी में रहते हुए, मेरी समुद्र रूपी शक्ति में डुबकी लगा कर ही तो तत्व की बात पर पहुँचेंगे, और अपनी भूलों को समझ कर ज्ञातव्य का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। इसके अतिरिक्त उनको इस अटूट खेल से निकलने का अन्य कोई मार्ग ही नहीं है।

शुक्लवर्णा रमणी की ओर देख कर बोली कि क्या तुम बता सकती हो कि तुम्हारा सैनिक विवेकानन्द क्यों यात्रियों को ऐसा विपरीत ज्ञान सिखाया करता है।

शुक्ल०—नहीं, कदापि नहीं, हमारा विवेकानन्द ऐसी विपरीत सीख कदापि नहीं दे सकता। यह धोखा तो अविवेकासुर ही देता रहता है और नाम विवेकानन्द का लगा देता है। विवेकानन्द का सहारा लेने वाला क्या कभी अंधकार में पड़ा रह सकता है, क्योंकि वह तो सत्य को सदा उजागर करने वाला है।

माया रानी कृष्णवर्णा की ओर मुख फेर कर बोली कि क्या

तुम्हारा सैनिक ऐसी विभ्रमको हमारे राज्य में फैला कर हमको कलंकित करता रहता है ?

कृष्ण०—महारानीजी हमारे पक्ष के सैनिक असुरों का सामना सदा देवों से हुआ ही करता है, हम लोग अपनी कूट नीति से इनको बदनाम करके यात्री को गढ़ से निकालने का सदा प्रयत्न करते रहते हैं, और वहाँ पर इस प्रकार अपना आसन दृढ़ जमाते हैं। इसीसे देव हमसे जीत नहीं सकते। यदि हम ऐसा न करें और अपना पार्ट न खेलें तो ये देव प्रबल होकर सब यात्रियों के खेल का अंत करदें, और आपकी नगरी नष्ट-भ्रष्ट हो जाय।

मायारानी हँस कर बोलीं कि ठीक है, तुम दोनों इस खेल में अपना अपना पार्ट खूब जी लगा कर करो जिससे मेरा स्वामी, जो मुझमें ही रहता हुआ अपनी प्रभुता को लीला रूप में गुप्त रूप से देखना चाहता है, सफलता के साथ सदा देखता रहे। तभी मैं तुम दोनों से प्रसन्न रहूँगी।

आज हम उसी कृष्णवर्णा को, जिसको मायारानी के समीप उसी के दरबार में बैठा हुआ देख चुके हैं, एक स्थान पर एक पुरुष से बात करते हुए देख रहे हैं। उसके माथे पर कुछ-कुछ चिन्ता की रेखायें दृष्टिगोचर हो रही हैं और स्वेद-कण भी झलक रहे हैं, जिन्हें वह वस्त्र से पोंछती हुई उसी पुरुष से बड़े असमंजस में हो कर कुछ तिरस्कृत वाणी से बातें कर रही है। वह यह कह रही है, कि यह तो बड़ा अनर्थ हो गया कि हमारी इतनी चौकसी रखने पर भी हमारा परम शत्रु विवेकानन्द वहाँ पहुँच गया। पहुँच ही नहीं गया वरन् उससे और यात्री से मित्रता भी हो गई। यह समाचार मुझे उस समय ज्ञात हुआ जब माया-रानी की दूती दरबार में उसे राज्य के समाचार सुना रही थी। अविवेकासुर, तुम्हारी इतनी असावधानी! क्या तुम ऐसे शक्ति-हीन हो गए थे कि विवेकानन्द को यात्री के पास जाने से रोक ही न सके। मैं तो तुम्हारा बड़ा भरोसा रखती थी, यह क्या हुआ?

अवि०—यह करतूत ध्यानानन्द की है, वही तो सबसे प्रथम यात्री से मिला था। मैंने उसे रोका था, विघ्न डाला था परन्तु वह नहीं रुका। यात्री परम दुखी हो कर व्याकुल हो रहा था, उसका

सहारा पाकर वह प्रसन्न हो गया। फिर ध्यानानन्द ने उसे विवेकानन्द से मिलाया और उससे मित्रता करा दी।

कृष्ण०—तो अब हमको भी सावधान हो जाना चाहिए। देखो तुम फिर वहाँ यात्री के गढ़ में पहुँच जाओ और अपनी कूट नीति से किसी प्रकार विवेकानन्द को वहाँ से हटाने का प्रयत्न करो। हाँ, अपने साथ भ्रमासुर व शंकासुर को भी लेते जाओ। इन दोनों से तुम को अच्छी सहायता मिलेगी। वे दोनों विवेकानन्द की एक न चलने देंगे।

'जो आज्ञा' कहकर अविवेकासुर अपने साथ भ्रमासुर व शंकासुर को लिए हुए यात्री के गढ़ में पहुँच गए। उसने देखा कि यात्री व विवेकानन्द दोनों मित्र परस्पर कुछ बातचीत कर रहे हैं। वे भी तीनों एक ओर छिपकर उनकी बातें सुनने लगे

वहाँ विवेकानन्द की बगल में एक भद्र पुरुष और भी बैठे थे जो एक ढीला-ढाला लम्बा सफेद कुर्ता पहने और सिर पर सफेद टोपी लगाये, नीची-नीची सफेद धोती पहने, गले में सफेद दुपट्टा डाले, माथे में श्वेत चंदन का त्रिपुण्ड लगाये और हाथ में सुमरनी लिए हुए थे। विवेकानन्द और यात्री में इस प्रकार बातचीत हो रही थी।

विवेकानन्द ने कहा कि मैंने उस दिन तुमको मायारानी के दरबार में लेजाकर जो दृश्य दिखाया था, मैं समझता हूँ कि तुमने मायारानी के वचनों से ही अपनी स्थिति को बहुत कुछ

समझ लिया होगा। परन्तु केवल समझने से ही काम नहीं चलेगा तुमको इन विश्वासदेव का भी सहारा लेना होगा जो तुम्हारे सामने बैठे हैं, इनको मैं ही तुम्हारे पास लाया हूँ।

या०—मित्र मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। आप मुझ डूबते हुए को बड़ा भारी सहारा दे रहे हैं। मैंने आपकी कृपा से मायारानी के दरबार में जाकर स्थिति को बहुत कुछ समझा है। एक तत्व की बात उसमें मैंने यह समझी है, कि इस मायापुरी में शक्ति का साम्राज्य है। जहाँ मैंने दृष्टि पसार कर देखा वहीं मुझे शक्ति ही शक्ति दिखाई पड़ी। देव असुर आदि जितने मुझे दिखाई पड़े वे सब ही अपनी-अपनी पृथक-पृथक शक्ति रखते हैं। मायारानी स्वयं शक्तियों का भण्डार मालूम हुई, मानों उसकी यह मायापुरी शक्तियों से खचाखच भरी है।

वि०—तो फिर मायारानी का यह कथन कि वह भी किसी महान् शक्ति का एक अंश है क्या सिद्ध नहीं करता कि इन सब शक्तियों का कहीं कोई एक केन्द्र है। अर्थात् कहीं पर छिपा हुआ एक मूल स्रोत है। वहाँ से ही निकल कर ये सब शक्तियाँ नाना रूपों में फैली हुई राज्य कर रही है।

या०—अवश्य, ऐसा ही समझ में आरहा है। और इन विश्वासदेव के दर्शन से ही इस बात में मुझ में दृढ़ता आरही है।

वि०—अब सोचो कि क्या तुम भी स्वयं कोई शक्ति नहीं ठहरते?

या०—महाराज, मुझे वहाँ पर दो प्रकार की शक्तियाँ दिखाई दीं; एक शक्ति तो मुझे ऐसी मालूम हुई जो मूक कही जा सकती है, जैसे अग्नि में दाहकता शक्ति। दूसरी चेतन शक्ति, जैसे आपके सदुपदेशों ने मेरे दुखित हृदय पर अपना प्रभाव डाल कर मुझ में शक्ति का संचार कर दिया, अतः मैं समझ गया कि मैं कोई चेतन शक्ति हूँ।

अकस्मात् उसी समय यात्री ने एक दृश्य देखा कि समीप ही एक नवयुवक पृथ्वी पर लेटा हुआ है। वह संज्ञाहीन है, शरीर के सब अंग ज्यों के त्यों हैं, परन्तु चेष्टाहीन हैं। यह देखकर उसने समीप ही खड़े हुए दूसरे पुरुष से पूछा कि इसको क्या हुआ? उस पुरुष ने उत्तर दिया कि अमुक पुरुष का यह इकलौता पुत्र था। यह उस अपने पिता को त्याग कर—उसका साथ छोड़ कर चल बसा। यात्री ने कहा कि यह तो यहीं पड़ा है कहीं नहीं गया। उसने कहा कि इसमें जो बोलता पक्षी था वह उड़ गया। यह शरीर तो निर्जीव पड़ा है, इसको अब हम लोग जला कर भस्म कर देंगे। यात्री ने पूछा कि तुमने कैसे जाना कि बोलता पक्षी उड़ गया। उसने कहा कि देखते नहीं हो, नेत्र मौजूद हैं पर उनमें दर्शन-शक्ति नहीं रही। कर्ण हैं पर उनमें श्रवण-शक्ति नहीं रही। नासिका है पर उसमें गंध ग्रहण-शक्ति नहीं रही। सम्पूर्ण अंग ज्यों के त्यों होने पर भी चेष्टा रहित हैं। इसी से जाना कि बोलता पक्षी उड़ गया।

यात्री यह दृश्य देखकर विवेकानन्द से कहने लगा कि अब मैं निस्संदेह होगया कि मैं कोई चेतन शक्ति हूँ, और मैं ही अपनी शक्ति से अपने शरीर को गतिवान् बनाता हूँ।

विश्वासदेव ने पूछा कि क्या तुमको अब विश्वास होगया कि तुम अवश्य ही कोई चेतनशक्ति हो, और इसी अपने गढ़ में वास करते हुए स्वतन्त्र शक्तिमान् तथा सब जड़ पदार्थों से पृथक् हो। वे सब तुम्हारे ही अधीन हैं, उनसे स्वेच्छापूर्वक काम लेते हुए अपनी यात्रा कर सकते हो। जो भ्रमासुर व शंकासुर अविवेकासुर के साथ बड़ी देर से छिपे हुए इनकी बातचीत सुन रहे थे, वे अकस्मात् प्रकट होकर विश्वासदेव से कहने लगे कि मूर्ख, तुम इनको क्या अंध-विश्वास दिला रहे हो। जो बात प्रत्यक्ष नहीं है—अर्थात् नेत्रों से दिखाई नहीं पड़ती उसमें पूर्ण रूपेण कैसे विश्वास जम सकता है। सम्भव है जैसा विश्वास किया जारहा है वैसी बात न होकर अन्य प्रकार से ही हो।

विवे०—मैं तुम दोनों को पहचानता हूँ, तुम विश्वासदेव के पीछे व्यर्थ पड़े रहते हो। तुम उनको कदापि पराजित नहीं कर सकते। अच्छा तो मैं तुमसे यह पूछता हूँ कि तुम प्रत्यक्ष किसको कहते हो।

भ्र०—जो अपनी आँख से दिखाई दे, 'चक्षुर्वै सत्यम्'।

विवे०—क्या तुम अपनी आँख को अपनी ही आँख से देख सकते हो?

भ्र०—नहीं।

वि०—तो तुमको भ्रम हो सकता है कि जाने तुम्हारे आँख है कि नहीं।

भ्र०—जो सब को देखने वाली है वही हमारी आँख है, ऐसा विश्वास करना पड़ता है।

वि०—फिर विश्वासदेव का सहारा क्यों लेते हो।

भ्र०—अन्य तो अपनी आँख से देखकर कहते हैं कि मेरे आँख है।

वि०—दूसरे के कहने पर भी तो विश्वास करना पड़ा, अपनी आँख से तो न देख सके।

भ्र०—मैं दर्पण द्वारा भी तो अपनी आँख देख सकता हूँ।

विवे०—यह तो एक साधन हुआ। यदि साधनों से काम लिया जाय तो अन्य अप्रत्यक्ष भी प्रत्यक्ष हो सकते हैं।

सहसा विश्वासदेव ने झपट कर भ्रमासुर के एक तमाचा मारा। वह चिल्लाने लगा कि हाय मैं मरा मेरे बड़ी पीड़ा हो रही है।

विवे०—तुम झूठे हो, तुम को भ्रम है कि तुम्हारे पीड़ा हो रही है।

भ्र०—मैं सत्य कहता हूँ, मुझको अनुभव हो रहा है।

विवे०—परन्तु उस पीड़ा को तो तुम्हारी आँख देख नहीं रही है, अतः तुम्हारी चक्षुर्वै सत्यं वाली बात तो नितान्त ही ढीली

है। आँख सब कुछ नहीं देख सकती। जिनको पीलिया रोग होता है वे हरे रंग को भी पीला ही देखते हैं। या जो जन्मांध हैं उनको कुछ भी सत्य नहीं हो सकता। यही दशा अन्य इन्द्रियों की भी है, अर्थात् उन इन्द्रियों की विषय-ग्रहण शक्ति जाती रहने पर, अथवा विकृत होने पर उनके द्वारा जो कुछ प्रत्यक्ष हो सकता है वह सब भी भ्रमात्मक माना जायगा।

शंका०—तुम यात्री को एक शक्ति मान रहे हो, पर सोचो तो सही कि शक्ति तो किसी गुणी का गुण है। फिर तुम गुण को ही गुणी क्यों कर मानने लग गए।

विवे०—यदि किसी देश-काल में गुणी प्रत्यक्ष नहीं है, उसके गुण को प्रत्यक्ष देख कर उसे गुणी रूप से ही मानने लगें तो क्या हानि है। अग्नि राख में छिपी हुई है, उस पर हाथ पड़ जाने से यदि हाथ जल जाय और कहने लग जायँ कि अग्नि ने जला दिया तो क्या अनुचित है। कोई तत्व अगोचर है, उसकी शक्ति प्रत्यक्ष है, उस शक्ति द्वारा यदि उस अगोचर तत्व का स्मरण करने लग जाँय तो क्या आपत्ति है। यात्री सदा अगोचर रहते हैं। ये अपने को अपनी किसी भी इन्द्रिय द्वारा कभी नहीं जान सकते। तो यदि अपनी चेतन शक्ति द्वारा अपने को चीन्हने लगें, तो इसमें क्या विपरीतता है?

विवेकानन्द ने यात्री से कहा कि यात्री तुम इस भ्रमासुर की गीदड़ भभकियों में मत आओ, वीर बने रहो, बुद्धिप्रकाश को

सावधान रक्खो। तुमको सत्य का प्रकाश मिलने लगा है, जिस से तुम अपने को पहचान ने लगे हो। तुम ढीले मत पड़ो। यह भ्रम तुम्हारा कभी पीछा छोड़ने वाला नहीं है। इसका अन्त नहीं है। शंकासुर उतना बुरा नहीं है, वह तो प्रकाश होने पर हट जाता है, परन्तु यह दुराग्रह प्रकाश होने पर भी आ कूदता है। यह तो यह भी कह सकता है कि जाने मेरे आँख है भी कि नहीं। बोलता हुआ भी कह सकता है कि जाने मेरे जिह्वा है भी कि नहीं; क्योंकि वह उनको देख नहीं सकता। यह तो जीता हुआ भी अपने में मरे का भ्रम कर सकता है। यह संभव असंभव सब में कूद पड़ता है। विश्वासदेव को यह फूटी आँख से भी नहीं देख सकता, अतः तुम विश्वासदेव को कस कर पकड़ लो, फिर यह तुम्हारा कुछ भी नहीं कर सकेगा।

बुद्धि—महाराज क्या कोई ऐसा उपाय नहीं है, कि जिससे यह हमारे समीप ही न आ सके।

भ्र०—किसकी सामर्थ्य है जो मुझको भगा सके। बड़े-बड़े विद्वान् विचारशील मनुष्यों के पास भी मैं जा पहुँचता हूँ और एक न एक समय इन विश्वासदेव को उनके पास से हटा ही देता हूँ। उनके चित्त में भी मेरा वास बना ही रहता है। जो बात इन्द्रियागोचर है, उसमें विश्वासदेव को कितना ही कस कर क्यों न पकड़ें वे ढीले पड़ ही जाते हैं।

विवे०—यात्री, सच्चा प्रयत्नशील दुर्दमनीय भ्रम को हटाने

का एक उपाय करता है। वह इस मायापुरी में ही अपने अनुभव से यह समझ लेता है कि प्रत्यक्ष जगत् के परिचालन के लिए जिस नियम को काम में लाना पड़ा है, वही नियम अप्रत्यक्ष में भी लागू होना ही चाहिए। नियम एक होना चाहिए उसमें दुभाँति नहीं हो सकती। इससे कोई प्रयोजन नहीं कि तुम्हारी इन्द्रियाँ किसी तत्व को प्रत्यक्ष कर सकती हैं या नहीं। नियम में भेद क्यों हो। बस वह इसीको मूलमन्त्र बना कर नियम की खोज में लग जाता है, कि वह सर्व व्यापक नियम कौनसा है जिसके द्वारा प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष जगत् का परिचालन किया जा रहा है। और जब वह उस नियम का पता इस प्रत्यक्ष जगत् में पा लेता है तब फिर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष को तराजू के एक-एक पलड़े पर रखता है। जिस समय तोल में नियम रूपी डंडी एक समान हो जाती है, वह अप्रत्यक्ष को निश्चय कर लेता है। तुमने अब अपने को एक चेतन तत्व मान लिया है, परन्तु भ्रमासुर बलात् तुम्हारे पास पहुँच कर तुमको चक्कर में डाल सकता है। अतः इससे बचने के लिए तथा विश्वासदेव का साथ पकड़ने के लिए तुमको भी नियम को जान कर निर्भ्रम हो जाना चाहिए, जिससे तुम्हारी प्रथम भूल कि तुम कौन हो पूर्ण रूपेण निकल जाय।

यात्री०—महाराज, कृपा कर आप ही मुझे उस नियम को बता दीजिये।

वि०—देखो प्रत्यक्ष में यह नियम है, कि कोई भी अपनी ही आँख से अपनी आँख को नहीं देख सकता, उसी प्रकार कोई स्वयं को भी स्वयं द्वारा नहीं देख सकता। परन्तु ऐसा प्रत्यक्ष में विश्वास करना पड़ता है कि जो सब को देखने वाली है, वही तुम्हारी आँख है। उसी प्रकार तुमको अपने को चेतन शक्ति मानने के लिए प्रत्यक्ष में ही यह विश्वास करना होगा, कि जो मनीराम आदि को चेतना दे रहा है-शक्तिमान बना रहा है-वही तुम हो। इसके अतिरिक्त अन्य पुरुषों के कथन पर भी विश्वास करते रहते हो कि वे तुम्हारी आँख को देख रहे हैं। उसी प्रकार आप्त पुरुष भी स्वानुभव से तुमको संकेत करते रहते हैं। और जैसे दर्पण द्वारा तुम अपनी आँख को प्रत्यक्ष कर लेते हो, परन्तु वह दर्पण मल रहित होना चाहिए, उसी प्रकार अर्थात् उसी नियम से तुम अपने हृदयगढ़ में ही रहते हुए इस कारण प्रत्यक्ष नहीं होते, कि उस हृदय रूपी दर्पण पर अन्धकार रूपी मल असुरों ने फैला रक्खा है।

या०—तो महाराज किस प्रकार यह अंधकार दूर किया जा सकता है?

विवे०—तुम अपने गढ़ के स्वतन्त्र राजा हो। असुरों ने तुम्हारे मन्त्रीगण को बहका कर अपने प्रबल प्रभाव से अंधकार फैला रक्खा है। तुम्हारे ही मन्त्रीगण उनकी बहकावट में आकर तुम को चौपट कर रहे हैं। तुम पद दलित कर दिये गये हो, मानो

तुम्हारे ही राज्य पर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं रहा है। अब तुम्हें स्वराज्य प्राप्त करने के लिये सत्याग्रह करना पड़ेगा, तुमको स्वावलम्बी बनना पड़ेगा। उस समय यह देखकर कि तुम स्वराज्य प्राप्त करना चाहते हो शत्रु अवश्य ऊधम मचावेंगे, उनसे घोर संग्राम होगा, हम सब देवगण तुम्हारी सहायता करेंगे।

दुर्विकार

६

एक स्थान में एक पत्थर की चट्टान पर बैठे हुए कुछ मनुष्य बातचीत कर रहे हैं। उनकी लम्बी-लम्बी डाढ़ी, डाढ़ी से मिली हुई मूछें और सिर पर लम्बे-लम्बे बाल हैं, उनपर काले-काले साफे बाँधे हुए, व काले-काले अँगरखा तथा पाजामा पहने हुए वे भयानक वेश में दिखाई दे रहे हैं। मध्य में एक स्त्री कुछ ऊँचे से आसन पर बैठी है, जो इन सब की मालकिन मालूम होती है। यह वही कृष्णवर्णा है जिसको हम मायारानी के दरबार में उसके समीप ही बैठी हुई देख चुके हैं। उसके सम्मुख दो पुरुष खड़े हैं, इनको हम भली भाँति पहचानते हैं। एक भ्रमासुर है और दूसरा शंकासुर।

उन दोनों की ओर देखकर वह कृष्णवर्णा कहने लगी कि मैंने जिस कार्य के लिये तुम दोनों को भेजा था उसमें तुम्हें कहाँ तक सफलता हुई। क्या तुम दोनों ने मिलकर यात्री को चक्कर में डाल दिया?

भ्रमासुर बोला, कि मालकिन हम दोनों ने बहुत कुछ प्रयत्न किया परन्तु विवेकानन्द की सहायता से यात्री ने विश्वासदेव को अपना ही लिया। पर हम दोनों भी विश्वासदेव का पीछा छोड़ने वाले नहीं हैं। कभी न कभी हम उनको यात्री के गढ़ से

निकाल ही देंगे। कृष्णवर्णा अविवेकासुरकी ओर देखकर बोली-शोक है कि तुम्हारे वहाँ उपस्थित रहते हुए भी विवेकानन्द ने यात्री पर अपना सिक्का जमा ही दिया। अन्य सरदारों की ओर देखकर उसने कहा, कि क्या हम लोगों को अब यह गढ़ छोड़ना ही पड़ेगा ?

पहला सरदार—मालकिन विवेकानन्द अपना बल कितना ही लगाले, पर मेरे सामने कदापि नहीं ठहर सकेगा। क्योंकि जिस समय मैं अपनी विचित्र मदिरा यात्री को पिला दूँगा, उस समय वह उसके मद में अचेत होकर सब देवों को भूल जायगा। वह ऐसा अचेत होजायगा कि विवेकानन्द आदि सब देखतेके देखते ही रह जायँगे। फिर वे चाहें कितना ही बल लगावें उसको टस से मस नहीं कर सकेंगे। क्योंकि उसे तो कुछ सूझेगा ही नहीं, मैं उसको पूरा उल्लू बना लूँगा। अब हमारा काम यह है कि परहित मार्ग, जिसको देव-प्रवेश के लिए विवेकानन्द ने खोल दिया है, प्रयत्न कर के यात्री से बन्द करवा दें, जिस से गढ़ में देवों का प्रवेश हो ही न सके। और हमारा स्वार्थ मार्ग, जिस से हम लोग गढ़ में आते-जाते हैं बन्द न होने पावे।

दूसरा सरदार—मालकिन आपकी शक्ति तो बड़ी अद्भुत है। देव अपना कितना ही बल क्यों न लगावें, अन्त में आपके सामने उनको हार माननी ही पड़ती है। जिस समय आप किसी गढ़ में पहुँच जाती हो, वहाँ इतनी हलचल मचा देती हो कि

जिसका ठिकाना नहीं। मैं नहीं समझता कि इतनी प्रबल शक्ति रखते हुए भी आप इतनी चिन्ता क्यों कर रही हैं। और मुझे तो इस यात्री की आती है कि इसे क्या सूझी, जो हमारे शत्रुओं से मित्रता करने लगा। मूर्ख हमारे सब अहसानों को भूल कर उनको अपनाने लगा। क्या इसने हमारा गढ़ से निकाला जाना इतना सहज समझ लिया है। मैं अपनी ही शक्ति से एक-एक देव को मार डालूँगा, पीस डालूँगा। मैं एक शेर बबर से कम नहीं हूँ। मेरी गर्जना सुनकर बड़े-बड़े वीरोंकी छाती दहल जाती है। किसकी हिम्मत है, जो मेरे वेग को सहार सके। तीसरे सरदार की ओर देख कर बोला–कि भाई साहब, क्या मैं झूठ कहता हूँ? और तुम्हारी शक्ति का तो अन्दाज ही लगाना कठिन है। तुम्हारे होते भी यात्री पर शत्रुओं का अधिकार हो जाय, यह आश्चर्य की बात है।

तीसरे सरदार ने हँस कर कहा कि मेरी शक्ति का किसी कविने यों अन्दाज लगाया है कि—

'मत्तेभ कुम्भ दलने भुवि संति शूराः,केचित् प्रचंड मृगराज वधेपि दक्षाः।
किंतु ब्रवीमि बलिनां पुरतः प्रसह्य, कंदर्प दर्प दलने विरला मनुष्याः' ॥

यह एक अंदाज लगाया गया है, परन्तु मैं स्वयं ही नहीं जानता कि मुझ में कितनी शक्ति है। और जिस समय मैं अपनी स्त्री रति को किसी यात्री के पास भेज देता हूँ, और जब वह छल, बल करके उसके मन को मथ डालती है, उस समय में

अपने धनुष पर पुष्पों के वाणों को चढ़ा, ऐसा तान कर मारता हूँ कि उसके हृदय के खंड-खंड हो जाते हैं। वह कितनी ही शक्ति क्यों न रखता हो, गिर ही पड़ता है। सहस्रों वर्षों से प्रयत्न करने वाले, कि जिन्होंने अपने शरीरों को सुखा डाला था, वे भी जिस समय मेरे आखेट बने, ऐसे गिरे कि फिर उनका उठना अत्यन्त कठिन हो गया। हँसी की बात है, कि ऐसे निर्बल वृद्ध, जिनमें किसी भी प्रकार की शक्ति नहीं रहती, मैं उनको भी ऐसे-ऐसे नाच नचाता हूँ कि देखते ही बनता है। सच्ची बात तो यह है कि मैं किसी भी शरीरधारी को ऐसा समर्थ नहीं पाता हूँ, जो मेरे वाणों की चोट को सहार सके। वह चाहे मनुष्य हो चाहे पशु-पक्षी। जहाँ अन्य अस्त्र काम नहीं कर सकते वहाँ मेरे ये पुष्पवाण अचूक काम करते हैं। जिस समय मेरी मोहिनी सेना सुसज्जित हो कर रण में आक्रमण करती है, एक सिरे से जीव धारियों को घायल करती हुई—उनके प्राणों को मसोसती हुई चली जाती है। देखने में तो वे जीवित-से देख पड़ते हैं, पर उनको टटोलो तो वे मृतक के समान ही होते हैं। मैं नहीं समझता कि मुझ सरीखा सहायक पा कर भी आप इतना भयभीत क्यों हो रही हैं।

चौथा सरदार ललकार कर कहने लगा कि मुझ से यह अपमान नहीं सहा जाता। हम लोग युद्ध में कहाँ पराजित होते हैं, हमारा गढ़ से निकाला जाना क्या हँसी-ठट्ठा है?

कुबेर की सम्पत्ति सामने धर दूँगा, हीरा, पन्ना, माणिक, पुख-राज आदि अमूल्य रत्न नाना प्रकार के षट्रस स्वादिष्ट भोजन, अनेक सुगंधित मदिराएँ, ऐसी-ऐसी मोहिनी विचित्र वस्तुएँ, जिन पर से मन कभी हटे ही नहीं, जिस समय दृष्टि के सम्मुख आवेंगी, किसकी शक्ति है कि उनका लोभ संवरण कर सके। आकाश के तारे पकड़ना और वंध्या के पुत्र होना संभव हो सकता है, पर उनका लोभ भरपूर बल लगाने पर भी न हट सकेगा। वह बेचारा यात्री कितने पानी में है। मेरी थोड़ी-थोड़ी विभूति पर तो बड़े-बड़े बुद्धिमान अपने सगे भाई, पिता और पुत्र तक का वध कर देते हैं, पर मुझको नहीं त्याग सकते। क्या मैं कभी निकाला जा सकता हूँ! घुसके, अड़के ऐसा चिपक जाऊँगा कि शत्रु बगलें झाँकने लगेंगे कितना ही बल लगावें पर मैं तिलभर भी न हट सकूँगा। तुम देखती नहीं हो, मेरे ही कारण तो भयानक युद्ध होते हैं। लाखों मनुष्यों का संहार हो जाता है, सहस्रों स्त्रियाँ विधवा हो जाती हैं, कितने बालक बिना पिता के रह जाते हैं। मेरे ही पंजे में फँसे हुए परस्पर लड़ मर कर कट जाते हैं, परन्तु मुझे नहीं छोड़ सकते।

पाँचवें सरदार ने गर्ज कर कहा कि मेरी भी शक्ति कम नहीं है। जिस समय यात्री अपनी तरुणाई, यौवन, धन, सम्पत्ति, राज्य, पुत्र-पौत्रादि के मद में चूर हो जाता है उस समय सम्पूर्ण शक्तियाँ एक ओर और मेरी शक्ति एक ओर। मेरी ही शक्ति

प्रबल रहेगी। मदहोश कर दूँगा, बुत बना दूँगा, मन्त्र मुग्ध कर दूँगा, बस मुझे अपनी जादू की लकड़ी फेरने की देर है। आप इतना क्यों घबरा रही हैं। इसको निकाल कर स्वराज्य प्राप्त कर लेना क्या हँसी-खेल है।

वह सिरधरी जो इन लोगों की बात-चीत ध्यानपूर्वक सुन रही थी, बोली—नहीं मैं घबरा नहीं रही हूँ, भयभीत नहीं हो रही हूँ। मैं यह कह रही हूँ कि अपने व शत्रु के बलाबल को विचार कर शत्रु से सचेत रहना मनुष्य का कर्त्तव्य है। जिस गढ़ में हम लोग इतने दिनों से वास कर रहे हैं, यात्री को अपने हाथों की कठपुतली व अपनी राजनीति का खिलौना बनाकर उसके गढ़ में राज्य कर रहे हैं, जहाँ के मन्त्रीगण एक प्रकार से हमारे बस में हो गए हैं, जहाँ की सम्पूर्ण प्रजा यात्री समेत परतन्त्रता ही में सुखानुभव कर रही है, उसी गढ़के वासी क्या सबके सब हमारे विपरीत हो जायँगे। दैव न करे यदि ऐसा हो भी जाय तो क्या फूटासुर आक्रमण करके विप्लव कारियों को सीधा न कर सकेंगे। दुर्विकार क्या उनको अपने वश में न कर लेंगे? फिर क्या हम उनको अपनी कूटनीति द्वारा यह समझाकर कि हम ही यात्री के सच्चे हितू हैं, हम ही उसकी यात्रा पूर्ण करा कर उसकी इच्छित वस्तु को प्राप्त कराने वाले हैं, अपनी ओर नहीं फेर सकेंगे? हमारा जादू बड़ा प्रबल है। यात्री बेचारा तो मन्त्र-मुग्ध हो जाता है। हमारा ढोंग उस पर ऐसा चल जाता है कि वह

हमारे दिखाए हुए सब्ज बाग पर लट्टू होकर अपने परम हितू की ओर दृष्टि ही नहीं करता। हमको अपने जादू पर पूर्ण विश्वास है, परन्तु नीति यह कहती है कि जब युद्ध छिड़ जाय तो शत्रु से सचेत ही रहना चाहिये, क्योंकि शत्रु तृन का भी बुरा होता है। अपनी शक्ति के घमंड में भूल कर असावधानी नहीं करनी चाहिए। अब हमारा प्रथम कर्त्तव्य यह है कि यात्री के मन्त्री मनीराम से मिला जाय और यह मालूम किया जाय कि कहीं वह भी तो नहीं बहक गया है। क्योंकि उसको फिरते देर नहीं लगती, उससे हमारा बड़ा काम निकलता है। साथ ही पर-हित मार्ग की ओर चल कर उसको रोकने का प्रबन्ध भी करना चाहिए।

७

शुक्ल वर्णा, जिसे हम मायारानी के दरबार में देख चुके हैं, आज एक सुन्दर रमणीक वाटिका में एक सुसज्जित सिंहासन पर विराजमान दीख रही है। विवेकानन्द आदि अनेक देव सिंहासन के चारों ओर बैठे हैं। सब के मुख पर गम्भीरता एवं शान्ति छा रही है। सब ही प्रसन्न चित्त बैठे हैं। विवेकानन्द की ओर दृष्टि करके शुक्ल वर्णा ने प्रश्न किया कि विवेकानन्द, तुम मेरे एक चतुर मन्त्री हो, तुमने यात्री से मित्रता करके उसकी असुरों से रक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया है। तुम मुझे यह बताओ कि उसके मार्ग में विघ्नकारी असुरों की रोक का तुमने क्या प्रबन्ध किया है।

वि०—श्रीमतीजी मैंने सबसे प्रथम उसको उसके इच्छित पदार्थ का ठीक-ठीक पता देकर उसकी घबराहट मिटा दी है, और साथ ही उसको उसके वास्तविक रूप का भी बोध करा दिया है, जिससे वह मुझे अपना पूर्ण हितू समझने लगा है। अब मेरा प्रबन्ध यह है, कि मैं यात्री से गढ़ के स्वार्थमार्ग को बन्द कराऊँगा और परहितमार्ग को खुलवा कर उसमें देवों का प्रवेश कराऊँगा। सबसे कठिन प्रबन्ध यह करना पड़ेगा, कि जिस समय गढ़ के छिद्रों में होकर शब्दसेन, रूपराम, रस-

खान, स्पर्शसिंह व गन्धदास बाहर से लाकर उसके लिए अनेक पदार्थ प्रस्तुत करेंगे, उसी समय मनीराम को सावधान करना पड़ेगा। उन सबके लाए हुए पदार्थों द्वारा विचलित होकर कहीं मनीराम यात्री को स्वार्थमार्ग की ओर मोड़ कर असुरों के पास न घसीट ले जाय। यद्यपि मनीराम ने भी असुरों का बहिष्कार कर दिया है, तथापि उस पर तीव्र दृष्टि रखनी पड़ेगी।

शुक्ल०—अवश्य, मुझे मनीराम का किंचित् भी विश्वास नहीं है, क्योंकि कृष्णवर्णा उसे अवश्य बहकावेगी, अविवेकासुर उसे स्वार्थमार्ग की ओर अवश्य घसीटेगा। रूपराम आदि उसके सामने इतने पदार्थ प्रस्तुत कर देंगे कि वह उस मार्ग की ओर सहज ही मुड़ जायगा। फिर कहाँ तक यात्री अपने चंचल मनीराम की रक्षा कर सकेगा। बलिहारी है मायारानी के खेलों की, उसने इस वृहत् खेल में कितनी प्रलोभक व आकर्षक वस्तुएँ उत्पन्न कर दी हैं। अहा! जिधर दृष्टि पसार कर देखो, उधर ही अटूट सामग्री भरी पड़ी है। यदि धन की ओर देखें तो रुपये, पैसे व मुहरों के कोष इतनी अधिकता से उपस्थित हैं कि उनकी गिनती भी नहीं हो सकती। हीरा, पन्ना, माणिक, नीलम आदि रत्नों के ढेर के ढेर बिछे से पड़े हैं। भोज्य पदार्थों की ओर निहारिये तो अनेक स्वादिष्ठ वस्तुएँ अपनी-अपनी भाँति के खट्टे मीठे आदि पृथक् पृथक् स्वाद रखती हुई इतनी अधिकता से समय-समय पर

उत्पन्न हुआ करती हैं, कि जिसका कोई ठिकाना नहीं। यदि गान-विद्या के विषय में विचार करें तो बुद्धि थक कर ठहर जाती है, आगे बढ़ ही नहीं सकती; नहीं जानते इन मनोहर स्वरों से अद्भुत प्रकार की सुरीली तानों के निकालने वाले वाद्यों की उत्पत्ति किस प्रकार हो गई। सुगंधित पदार्थों की ओर देखिये तो बेला, चमेली, गुलाब आदि पुष्पों की अपनी-अपनी भाँति की सुन्दर-सुन्दर सुगंधें, जिनसे दिमाग एक दम तरोताजा हो जाय, क्या मनीराम को विचलित करने में कसर रखती हैं। करोड़ों प्रकार की सुन्दरताएँ, सुन्दर-सुन्दर स्त्री-पुरुषों की अनोखी-अनोखी छवि क्या उसको विवश करनेके लिए कुछ कम हैं। कामोत्पादक पदार्थ, जिनके कि श्रवण, दर्शन तथा कीर्तन मात्रसे ही कामाग्नि प्रज्वलित हो जाती है, क्या उसको मथ करके बेचैन नहीं कर सकते। व हरी विचित्र खिलाड़िन मायारानी, तैने इतने अधिक पदार्थों की रचना करके रूपराम आदि द्वारा मनीराम के फँसाने में कोई कसर नहीं रक्खी है। मालूम होता है कि इन सब खेल के पदार्थों की रचना इसीलिए की गई है, कि किसी प्रकार भी वह कहीं से निकलने न पावें। यदि एक फंदे से निकल जाय तो दूसरा तैयार है और दूसरेसे निकल जाय तो तीसरा। इसी प्रकार अनगिनत फंदे बनाकर ऐसा विचित्र माया-जाल तैने अपनी मायापुरी में फैला दिया है कि इस जाल से, पग-पग पर फिसलने के स्वभाव वाले मनीराम के लिए निकल जाना क्या कभी संभव

हो सकता है ?

विवे०—श्रीमतीजी आप सत्य कहती हैं, मैंने प्रबन्ध किया है कि मैं यात्री को सावधान रक्खूँगा। सतोगुण के प्रकाश में प्रत्येक वस्तु की वास्तविकता उसे समझाता चलूँगा। उसके इच्छित पदार्थों का तथा उसके गन्तव्य स्थान का स्मरण कराता चलूँगा, जिससे वह मनीराम के विचलित होने पर भी स्वार्थ-मार्ग की ओर न खिंच जाय।

शुभ०—ठीक है, परन्तु देखो ऐसे विकट जालों से गुथी हुई नगरी में हो कर यात्री को यात्रा करनी है, और इस समय वह तुम्हारे ही बल पर चल रहा है और तुम विघ्नकारी असुरों को गढ़से निकालने का यत्न भी कररहे हो, परन्तु जैसे कोई किसी गृह में बहुत काल से वास कर रहा हो और वह बलपूर्वक उसकी अनिच्छापूर्वक उसमें से निकाला जाय तो वह उसमें से न निकलने के लिए अपनी पूर्ण शक्ति लगा देगा: इसी प्रकार यात्री के परम वैरी ये असुर भी जो उसके गढ़ में एक दीर्घकाल से वास कर रहे हैं, यह देखकर कि उनके वहाँ से निकाले जाने का प्रयत्न हो रहा है जहाँ पर वह पूर्ण स्वतंत्रता से राज्य कर रहे थे सम्पूर्ण जालों को लेकर अपनी सभी शक्तियों का प्रयोग करके आक्रमण करने को तैयार हो जावेंगे। और मैं खूब समझती हूँ कि यात्री के प्रिय मन्त्री मनीराम इस प्रबल आक्रमण को कदापि नहीं सहार सकेंगे और समस्या कठिन हो जायगी। क्योंकि वह बहका हुआ

मनीराम चेतनदास को अचेत करके बुद्धिप्रकाश को भी भ्रष्ट कर देगा। उसी समय अहंकारी भी मोह जायगा। ऐसी दशा में यात्री भी तुम्हारी चेतावनी को भूल कर कुमार्ग में जा सकता है।

विवे०—तो श्रीमतीजी मुझे इसमें आपकी सहायता भी लेनी पड़ेगी। यदि आप कृपा करेंगी तो मनीराम विचिलित नहीं होने पावेगा।

शुक्ल०—मैं तो सहायता अवश्य करूँगी, परन्तु वह असुरोंकी सिरधरी मनीराम का पीछा कब छोड़ने वाली है! वह एक-एक असुर को खींच-खींच कर लावेगी। देवासुर संग्राम अवश्य होगा। उसी आसुरी का मेरा सामना होगा। अब तुम्हारा कर्त्तव्य है कि तुम यात्री को सावधान रक्खो, उसका साथ क्षणभर के लिए भी मत छोड़ो। मित्र-धर्म का पालन करो। यदि तुम यात्री को चेत में रख सके तो जीत निश्चय होगी। मैं बहके हुए मनीराम की रक्षा दुष्टा पिशाचिनी से अवश्य करूँगी।

दान

८

गढ़ के परहितमार्ग पर मनीराम खड़े हैं, और उनके सम्मुख रूपराम आदि नाना प्रकार की वस्तुएँ लिए उपस्थित हैं। समीप ही दो अपरिचित व्यक्ति और भी खड़े हैं, जिनसे मनीराम बड़ी देर से बात-चीत कर रहे हैं। उन अपरिचित पुरुषों के वेश-भूषा को देख कर देखने वाले शंका कर सकते हैं कि उन्होंने अपने वास्तविक रूप को छिपाया है। उनमें एक तो पुरुष है दूसरी स्त्री। वह स्त्री मनीरामसे कहरही है कि क्या आपने मेरी बातोंपर विचार किया? हम लोग तो आपके शुभचिन्तक हैं, हमारा काम आपको चेता देने का है, आगे आपकी इच्छा। क्योंकि प्रस्तुत वस्तुओं का स्वार्थ व परहितमार्ग द्वारा यात्री के पास पहुँचा देना आपके ही हाथ की बात है। मनीराम ने उत्तर दिया कि आपने यही तो कहा है, कि जो पदार्थ हमारे गढ़ में रूपराम आदि द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं, वे सब परहितमार्ग से यात्री के समीप न पहुँचाए जाकर स्वार्थ मार्ग से पहुँचाए जायँ। अर्थात् इन पदार्थों से दूसरों की दान द्वारा जो सेवा की जाती है वह निरर्थक है।

वह स्त्री बोली—हाँ, हमारा यही कहना है कि धन आदि पदार्थ बड़े परिश्रम से प्राप्त होते हैं। वह बड़े काम की वस्तुएं हैं। धन से अनेक सुविधाऐं पूरी की जाती हैं। धन पास न हो तो

कोई पूछता तक नहीं। विना धन अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं। धन अन्धों को आँख, बहरों के कान, गूंगों की वाणी और लूलों की टाँग है। वह एक शक्ति है जिसके पास होने से मनुष्य शक्तिमान् गिना जाता है। उसी धन को मिथ्या प्रशंशकों की चिकनी-चुपड़ी बातें सुनकर निरर्थक नष्ट करना मूर्खता नहीं तो क्या है? जैसे—मान लीजिए कि आपने परहित का विचार करके एक पौशाला (प्याऊ) बैठाई। धन व्यय किया परन्तु वहाँ क्या हुआ कि जल पीने को असहाय तो दो-चार ही आए, पर ऐसे बहुत-से आए कि यदि वहाँ पौशाला न होती तो वे स्वयं डोर लोटा लेकर चलते और श्रम करके जल कुएँ से खींचते व पीते। अथवा पैसा ख़र्च करके सेवक द्वारा जल खिंचवाते। परन्तु उनको तो ज्ञात था कि मुफ्ती पौशाला मौजूद है, उन्हें श्रम करने की वा पैसा ख़र्च करने की क्या आवश्यकता है। अर्थात् आपको मूर्ख बनाकर वे श्रम से वा धन-व्यय से बच गए। बताइए, इसमें क्या परहित हुआ? इसी प्रकार धर्मशालाको देखकर लोग चार पैसा सराय का ख़र्च बचा लेते हैं। बहुत से लोग मुफ्ती भोजन पाकर अपना धन बचाया करते हैं, और स्वयं धनवान् हो जाते तथा आपको कंगाल बना देते हैं। दृष्टान्त पर दृष्टान्त लेते जाइए, परहित के नाम पर अनगिनत लोग या तो निठल्ले बन जाते हैं या मुफ्ती धन पा कर किसी दुर्व्यसन में फँस जाते हैं।

मैंने यात्री के सम्बन्ध में लोगों के मुख से अनेक प्रकार की

बातें सुनी हैं। वे कहते हैं कि ख़ूब ज़ल्सा बनाया है। एक ने कहा कि मुझे अनायास ही सौ रुपये दे दिए। मैंने याचना की थी कि मेरी पुत्री का विवाह है, मेरे पास कुछ नहीं है, पुत्री स्यानी हो रही है और लोक में मेरी निन्दा हो रही है; परन्तु मेरे न कोई पुत्र था न पुत्री, न किसी का विवाह था। मुझे जुआ खेलने का व्यसन था, मेरे पास धन नहीं था, रुपये मिलने पर मैंने उनसे जुआ खेला। यद्यपि मैं वह सब हार गया पर मेरा शौक़ तो पूरा हुआ।

उस स्त्री का संगी भी कहने लगा कि तुम ठीक कहती हो। मैंने भी अपने कानों से लोगों को यह कहते सुना है कि इस यात्री के आने से जो वेश्या इस ग्राम को छोड़े जाती थीं वे फिर से बसने लगी हैं, क्योंकि व्यसनी लोगों को अब दान में ख़ूब धन मिलने लगा है। नशे की दूकानें फिर से चमकने लगी हैं, सब व्यसनियों के व्यसन पूरे हो रहे हैं। और भी एक बात कह देना चाहता हूँ कि आपका कोषाध्यक्ष दान में आधा रुपया व्यय करता है, आधा स्वयं हड़प जाता है। भोजन की सामग्री में से भण्डारी ख़ूब इष्ट मित्रों को खिलाता है, शेष बचाखुचा दान में देता है, उसमें हट्टे-कट्टे मुस्टंडे तो खा जाते हैं, और अनाथ लोग बहुत कम पाते हैं। वैद्यराज बहुमूल्य दवाओं का मूल्य स्वयं ले लेते हैं, साधारण औषधि रोगी लोग पाते हैं। हम लोग तो सत्य के पुत्र-पुत्री हैं,

यथार्थ बात आपको बताने व चेताने आए हैं। यात्री की .मुत्र लूट हो रही है, दुखी दरिद्री तो अपने-अपने कर्मों का फल भोगते हैं। आपने अपने शुभ कर्मों से यदि सम्पत्ति पाई है, तो आप उसका भोग कीजिए, और उनको उनके दुष्कर्मों का फल भोगने दीजिए। किसी पीड़ित बालक को निरोग कर के आप अधिक हत्या कराने का साहस क्यों करते हैं। जब सब कोई स्वकृत कर्मों का फल भोग रहे हैं, तो आप परहित का मिस कर के धन नष्ट क्यों कर रहे हैं। इस मिथ्या परहित रूपी कीड़े को दिमाग से निकाल डालिए।

मनीराम ने चेतनदास से जो उनके समीप ही बैठे थे, कहा—भाई, इनकी बातें समझमें बैठ रही हैं, तुम क्या विचार करते हो, इनकी बातें असंगत नहीं मालूम देतीं। ये सन्य महाराजके पुत्र व पुत्री क्या हम को असत्य बात बतावेंगे ? और सची बात है कि यदि हमारे धन का वास्तव में दुरुपयोग हो रहा है, जिसको हमने बड़े श्रम से कमाया है तो इसमें केवल हमारी मूर्खता ही ठहरती है। चेतनदास इसको खूब सोचो, विचार करो, तब यात्री के पास चल कर उनसे कहें।

चेतनदास बोले कि यदि ऐसा मान लें कि दस मनुष्यों को धन दान किया गया, उनमें से नौ मनुष्यों ने अनुचित लाभ उठाया केवल एक की यथार्थ सहायता हुई, तो क्या कह सकते हैं कि हमारा परहित कार्य निरर्थक हुआ। परन्तु ये लोग तो यह भी

कह रहे हैं कि यथार्थ सहायता के योग्य पुरुषों को भी सहायता देना ठीक नहीं है। क्योंकि वे भी अपने पूर्वकृत दुष्कर्मों का फल भोग रहे हैं। हम कौन हैं जो भोगते हुए मनुष्यों के विधान में हस्तक्षेप करें। जैसे किसी को एक वर्ष का कारागार-वास हुआ। उसके दण्ड में यह विधान किया गया कि वह एक समय ही रूखा-सूखा भोजन पावे। हमने उसको क्षुधित देखकर किसी प्रकार दूसरी वेला भी भोजन पहुँचाने का प्रबन्ध कर दिया; इस प्रकार दोषी की अनुचित सहायता कर के न्याय का विरोध किया। प्रयोजन यह निकला कि हमें किसी की भी किसी प्रकार सहायता नहीं करनी चाहिए। चाहे कोई कितना ही पीड़ित हमारे मार्ग में क्यों न आ जाय हमें उपेक्षा करनी ही चाहिए। कहो जी बुद्धि-प्रकाश, इस विषय में तुम क्या निर्णय करते हो। तुम्हारी सहायता के बिना मैं एक पंगु के समान हूँ।

बुद्धि०—जिन विवेकानन्द ने हमको यह बताया था कि हम लोगों को सत् के प्रकाश ही में चलना चाहिए, उन्होंने यह भी बताया था कि यात्री के हृदय-गढ़ में सब देवों का प्रवेश केवल परहित मार्ग से ही हो सकता है। और ये सत्य के पुत्र-पुत्री होते हुए भी परहित मार्ग बन्द करके देवों को बाहर ही रोक देना चाहते हैं, यह कैसा प्रकाश है, यह प्रकाश हमको धुँधला दीख रहा है। देव-सहायता बिना हम शत्रु के पंजे में पड़ जायँगे, अतः हमको देवों की सहायता की परम आवश्यकता है। सुनो, हमको

निर्मल प्रकाश चाहिए। धुँधले प्रकाशसे हमारा काम नहीं चलता। आप लोग कृपा कर के इस समय जाइए, हम यात्री से प्रार्थना करेंगे कि ध्यानदेव द्वारा वे सत् प्रकाश प्राप्त करें। बुद्धिप्रकाश की बात सुनकर मनोराम कुछ चंचल से होने लगे और उन लोगों से बोले कि फिर भी दर्शन देना। आपकी बात मुझे ठीक जच रहा है।

हा दैव! क्या होना है। जो मनोराम बड़े दृढ़प्रतिज्ञ बने थे एक ही झोंके में फिसलने लगे। सत् प्रकाश की भी अनिच्छा होने लगी, बुद्धि प्रकाश के निर्णय तक भी नहीं ठहरना चाहते। धन का लोभ होने लगा, इतनी जल्दी यह हाल है तो, देखिये आगे क्या होता है।

लोभ

६

एक टूटी सी चारपाई पर एक दुबला-पतला मनुष्य बैठा है, जिसकी आकृति को देखकर ज्ञात होता है कि उसकी अवस्था तो अभी विशेष नहीं है, परन्तु किसी कारण से वह बुड्ढा-सा दिखाई दे रहा है। मलीन फटे वस्त्र पहने है, एक मिट्टी के हुक्के पर चिलम रक्खी हुई है, उसी को गुड़-गुड़ा कर धुँआ छोड़ रहा है। चारों ओर मक्खियाँ भिनभिना रही हैं। समीप में बैठे हुए दो-चार मनुष्यों से बातचीत कर रहा है। उनमें से एक ने कहा कि श्रीमहाराज लोभासुरजी आपके पास असंख्य धन है, भंडार के भंडार भरे पड़े हैं, फिर आप इस बुरी दशा में क्यों रहते हैं?

लोभा०—अरे क्या धन फेंकने के लिये होता है। धन तो एक शक्ति है, इस शक्ति को जितना बढ़ाया जाय उतना ही अच्छा है। अपनी शक्ति को कोई क्षीण करता है?

दूसरा मनुष्य—हमने सुना है कि आप भोजन भी तो भर पेट नहीं करते।

लोभा०—अरे भोजन की सामग्री जुटाने में भी तो पैसा खर्च करना पड़ता है। प्राण रखने के लिए कुछ न कुछ खा लेता हूँ, कल एक भिखमंगा आया और बोला कि मुझे कुछ खाने को दो,

भूख के मारे प्राण निकलना चाहते हैं। मैंने उसे भगाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया पर वह नहीं टला। जाने कै दिनका भूखा था। भय हुआ कि कहीं वह यहीं न मर जाय, लाचारी से उसे एक रोटी देनी पड़ी। मुझे उस दिन व्रत रखना पड़ा, अच्छा हुआ उस दिन ऐकादशी थी, एक पंथ दो काज होगए। लड़के ने एक पैसा माँगा, मैंने उसे डाट बतलाई कि यदि मेरे पास एक पैसा और आजाय तो मैं उसे मिलाकर अपने ९९९ रु० पंद्रह आने ९ पाईको पूरा एक हजार करलूँ। तुझे एक पैसा देने से फिर दो की फिक्र होजायगी। कल जो मैं सड़क पर निकला तो देखा कि एक आम का फल पड़ा हुआ है, किसी मूर्ख ने उसे अधचूसा ही फैंक दिया था। मैंने उसे उठा लिया, वाहवा मैंने इस साल आम नया भी नहीं किया था। मैंने शेष को चूस लिया और अपनी साध पूरी की। सो भाई या तो धनवान् ही बन जाओ या शहखर्ची ही करलो।

ती० मनुष्य—क्या तुम्हें रात को सर्दी नहीं मालूम देती? क्योंकि तुम्हारे पास ओढ़ने को कुछ वस्त्र भी तो नहीं है।

लोभा०—क्या रुपये की गर्मी कुछ कम होती है, सदा गरम रहता हूँ, सर्दी कोसों दूर रहती है। भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी सब वश में होगई है। मुझे तो धन चाहिये। खूब बढ़ाता हूँ। वही मेरा इष्ट देव है। मेरा स्वयं यह हाल है, यदि मैं किसी दूसरे के पास पहुँच जाऊँ तो उसे भी अपने जैसा ही बना लेता हूँ, यह मुझ में शक्ति है। वह मेरा बड़ा आदर करने लगता है। कहाँ तो वह

जी खोल कर खर्च करता था कहीं फिर ९९ के फेर में पड़ जाता है। देखो मुझे अविवेकासुर ने सूचना दी है कि यात्री ने परहित-मार्ग खोल कर स्वार्थ-मार्ग बन्द करा दिया है, और खूब जी खोल कर दान कर रहा है। मारा मार रुपया फेंक रहा है। मेरा इतना अनादर मुझ से नहीं देखा गया। मैंने अपने दो गुप्तचर वहाँ भेजे हैं, वे अभी तक लौट कर नहीं आये, उन्हीं के आसरे बैठा हूँ। वह देखो वे आ गये। सहसा वहाँ पर एक स्त्री व एक पुरुष ने प्रवेश किया और आकर उसके सम्मुख बैठ गए।

लोभासुर ने पूछा-कहो जी निंदासुरी व चुगलासुर तुम दोनों जिस कार्य के लिये भेजे गए थे क्या उसको पूरा कर आए? मनीराम का क्या हाल है? क्या सचमुच जैसा सुना था वह बहक गया है? क्या वह अब मेरा स्मरण नहीं करता? क्या उसने मुझे एक दम भुला दिया? सब वृतान्त ठीक-ठीक सुनाओ—

वे दोनों बोले—बात याथार्थ ही है, मनीराम अवश्य ही बहके हुए पाये गये, विवेकानन्द का उन पर प्रभाव पड़ा हुआ था; पर भला जहाँ हम लोग पहुँच जाते हैं बिना अपना काम पूरा किए कब लौटते हैं। हमने उनके दान की वह निंदा की, वह चुगली खाई कि वह एक दम विचलित हो गए; सहज ही फिसल गए। चेतनदास भी हमारे चक्कर में आगए। हमने अपना नाम ठीक नहीं बताया था। हम लोग सत्य के पुत्र-पुत्री

बनगए थे। मनीराम पर तो हमारा प्रभाव अच्छा पड़ा, पर बुद्धि-प्रकाश को हमारे ऊपर संदेह होगया। हमारे बनावटी सत्य में उसे असत्य की गंध आने लगी, क्योंकि वहाँ पर विवेकानन्द सदा उपस्थित रहते हैं। हमें भय हुआ कि कहीं हमारी कलई इसी समय न खुल जाय, परन्तु बात टलगई। हमसे कहा कि तुम लोग इस समय जाओ, हम विचार करके निर्णय करेंगे। मनी-राम तो सध ही चुके, उन्होंने हमको आदर पूर्वक फिर बुलाया है, हमारी की हुई निन्दा व चुगली इसलिये उनके जी में समा-गई कि उनको आपका स्मरण हो आया, आपका प्रेम जाग्रत हो उठा। हम लोग एकान्त में मिलकर उनको साधते रहेंगे तो आशा है कि परहितमार्ग बन्द हो जाय, जिस के लिए हमें आज्ञा मिली है।

लोभा०—मेरा प्रेम! अरे मेरा प्रेम, जिसे एक बार भी होजाय फिर क्या मुझे वह भूल सकता है। मैं उसके रोम-रोम में समा जाता हूँ। परन्तु यहाँ तो युद्ध है, यदि देवों का प्रभाव उस पर पड़ा था तो क्या हुआ, स्थायी थोड़े ही था। तुम्हारी सहायता से उसे मेरा स्मरण तो हुआ, इतना ही बहुत है। एक बार मुझे वहाँ स्थान मिल जाय फिर तो मैं समझ लूँगा। तुमने खूब चातुरी से मनीराम को डिगा दिया, अब मैं सब देख लूँगा। क्योंकि मुझ में वह शक्ति है कि यदि एक बार मैं योगी, यती या तपस्वी के पास भी क्षण भर के लिये स्थान पाजाऊँ तो धीरे-धीरे

वहाँ अपना आसन जमा लेता हूँ। ये मुझको छोड़ना ही नहीं चाहते। अभी तुम लोग अपना काम करते रहो, मैं और भी अपना अस्त्र छोड़ूँगा—कहाँ तक भाग के जायगा।

इस प्रकार बातें हो ही रही थीं कि मनीराम कहीं जाते हुए दिखाई पड़े। दौड़े चले जाते थे। कभी इधर जाते थे, तो कभी उधर। उनको देखकर वे दोनों चर बोले कि अहा हा, क्या मनीराम स्वयं ही हमें ढूँढ रहे हैं! वाह वा, हमारा जादू चल गया, अब उन्हें कल कहाँ! तभी जो कहते हैं कि ये पारे के समान ढरकते हैं। वह देखो वह यहाँ ही आगये।

उनको आदर पूर्वक प्रणाम करके लोभासुर ने कहा कि आइये मन्त्रीजी महाराज आइये। हम लोग आपका ही गुणगान कर रहे थे। हम तो आपकी प्रजा हैं, भला हमसे आप क्यों क्रुद्ध हो गए हैं। आप ही ने हमारी इज्जत की, आप ही के बसाए हम लोग इस गढ़ में बसे, यदि आप न पूछते तो हमें यहाँ कौन घुसने देता, कान पकड़ कर निकाल दिये गये होते। आपके नाराज होने से हमारा यहाँ क्षण भर भी गुजारा नहीं, क्योंकि आप ही हमारे क़दरदान हैं। और हमने तो यहाँ तक इरादा कर लिया है कि यदि आप नाराज भी हो जायँगे तो भी हम आपकी सेवा नहीं छोड़ेंगे। आप हमें दुत्कार देंगे, हम आपका चरण पकड़ लेंगे। क्या हमने आपकी सेवा में कोई कसर रक्खी है? फिर हम नहीं समझते कि आपके प्रधान आप

बुद्धिप्रकाश ने यात्री महाराज को कैसी सलाह दी है कि जो वह लँगोटी लगाये वैरागियों के बहकाने में आकर हमारा तिरस्कार कर रहे हैं। ये सब विवेकानन्द आदि वैरगना हैं। इनके पास धरा क्या है। ये भिखमंगे क्या किसी का सुख देख सकते हैं? हमारी बदौलत आप मालामाल हो गए, कुबेर का धन आपको प्राप्त हो गया, सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषणों से आप अलंकृत कर दिए गए, स्वादिष्ठ षट्रस भोजनों से आप तृप्त किए गए, अनेक भोगने योग्य भोग आपको भुगाए गए, फिर ये आँख के अन्धे वैरगना आपसे कहते है कि, सब का त्याग करो; लँगोटी लगाओ। बस और इनके पास क्या धरा है, बुद्धि प्रकाश इतना नहीं सोचता कि इस मायापुरी में रह कर बिना धन के कैसे काम चलेगा। इसमें सुखपूर्वक रहने की जो सच्ची शक्ति है उसी को बेतहाशा लुटवाना और फिर कहना कि हम बुद्धि के भण्डार हैं। इसी बुद्धि पर यात्री के प्रधान मंत्री बने हैं। मनीरामजी, उसके सुख के कारण केवल तुम्हीं हो, वह तो बातें मारने वाला है। चेतनदास व अहंकारी छछोरे हैं। अगर अमीरी की बू है तो तुम्हीं में है। बस इन्हीं सब बातों के समझाने के लिए मैंने अपने चारों को आपके पास भेजा था। वेश बदलवा दिया था, क्योंकि मैं जानता था कि इनको हमारी पार्टी का समझ कर कोई आपके पास जाने न देगा।

मनी०—क्या वास्तव में ये सत्य के पुत्र-पुत्री नहीं हैं?

लोभा०—यद्यपि ये वह नहीं हैं जैसा इन्होंने आपसे कहा था, परन्तु इन्होंने जो निन्दा की या चुगली खाई वह मिथ्या थोड़े है। इन्होंने बिल्कुल सच्ची सलाह को ही उजागर किया, तभी ये सत्य के पुत्र-पुत्री बने। इसमें बताइए क्या धोखा हुआ, जो बुद्धिप्रकाश इनकी बातों में धोखा समझने लगे। क्या आपका धन इसलिए है कि मुफ्तखोरे खाजायँ और फिर आप दूसरों का मुँह ताकते फिरें। आप बहकाने में अवश्य आ गए थे पर मेरे थोड़े से ही संकेत से सँभल गये। हम यह भी जानते हैं कि यात्री के सम्मुख जितनी आपकी चलेगी उतनी न तो चेतनदास की चलेगी न बुद्धिप्रकाश की। फिर अहंकारी को तो पूछता ही कौन है, वह तो हाँ में हाँ मिलाने वाला है। आप मचल जायँगे तो जैसे पिता अपने बच्चे की मचलाहट को पूरा करता है, उसके हठ को रखता है, उसी प्रकार यात्री विवश हो कर आपकी बात मानेगा। मानेगा कैसे नहीं उसको आप ही के द्वारा तो नाना प्रकार के सुख उपलब्ध हो सकते हैं। अतः अब आप ऐसा उपाय करें कि उनके मस्तिष्क से परहित-कीट निकल जाय। हम दावे के साथ कहते हैं कि बिना हमारी सहायता के इस मायापुरी में आपका एक दिन भी गुजारा नहीं। आप यहाँ रो रो देंगे, आपकी कोई भी साध पूरी न हो सकेगी। आप जायँगे कहाँ, करेंगे क्या, आपका कोई काम ही न रह जायगा। आप तो मनचले हैं, आपको नए-नऐ शग़ल चाहिए। बिना धन के वे सब कैसे मिलेंगे? अतः मैं आपसे बारम्बार अनुरोध करता हूँ कि आप

परहित का मिस कर के अपनी धन रूपी शक्ति नष्ट न करें। यदि आप दृढ़ बने रहे व मेरा आदर करते रहे तो मैं विश्वास दिलाता हूँ कि सब ठीक मार्ग पर आ जायँगे। आप मेरी ओर से इन वैरागियों से ललकार कर कह देना, कि मैं चिनौती देता हूँ कि वे सामने ठहर तो जायँ! स्वार्थ मार्ग रुकवा कर हम सबको निकलवा देना क्या हँसी ठट्ठा है। मैंने बड़े-बड़े त्यागी देख लिए, जो मेरे एक ही वार में फिसल पड़े और स्वार्थ मार्ग को न छोड़ सके।

मनीराम सिर खुजाते हुए बोले कि अच्छा हुआ जो आपसे भेंट हो गई। आज मैं आपके इन चरों की खोज में अकेला ही निकला था। इनकी बातें कुछ-कुछ मेरी समझ में आ गई थीं, और अब यहाँ आकर तो सब सन्देह दूर हो गया। अब मैं वहाँ जाकर रँग लाऊँगा, गढ़ में हलचल मचाऊँगा। बाप दादों की जन्म की कमाई मुफ्त लुटी जा रही है, फिर मैं क्या भीख माँगता फिरूँगा। चूल्हे में जायँ अन्धे, भाड़ में पड़े लँगड़े-लूले, भोगें अपने कर्मों का फल। जब तक इस मायापुरी में रहना है मैं भी तो अपने सुख की और शगलों की ओर देखूँगा। अच्छा प्रणाम, आपको मैं धन्यवाद देता हूँ जो आपने मुझे चेता दिया। आप तो हमारे हैं, मैं आपको कैसे छोड़ सकता हूँ। आप भी मुझे मत छोड़ना जिससे मैं फिर न बहक जाऊँ। भैया क्या करूँ, मेरा स्वभाव ही बहक जाने का है, मैं शीघ्र शीघ्र फिसल पड़ता हूँ, मुझ में दृढ़ता नहीं है। आप बल लगाते रहेंगे तो मैं सम्हला रहूँगा।

लोभासुर प्रणाम करता हुआ बोला कि, मित्र क्यों घबराते हो, मुझमें अपार शक्ति है, मैंने बड़ों-बड़ों के माजने ढीले कर दिए हैं। जो बड़े त्यागी बने थे, उन पर भी वह लकड़ी फेरी कि वे मेरा ही दम भरने लगे। उनके सहायक बगलें झाँकने लगे। आपने बड़ी कृपा की जो दर्शन दिए हम कृतार्थ हो गए 'सेवक-सदन स्वामि आगमनूं' वाली बात चरितार्थ हो गई।

मनीराम वहाँ से नौ दो ग्यारह हुए। लोभासुर मूछों पर ताव देता हुआ बोला कि यही तो जड़ है, जो हाथ में आ गई। युद्ध का श्रीगणेश शुभ हुआ है। चलो सब हाल मालकिन को सुनावें।

आलस्य

१०

"ठहरो ठहरो, उठता हूँ; थोड़ा और आराम कर लेने दो। हा दैव, सुबह ही सुबह यह बला कहाँ से आगई जो मेरे आराम में खलल डाल दिया। क्या ही सुख पूर्वक लेटा था, पाखाना पेशाब सबको रोक रहा था। अरे! अब मुझको उठना पड़ेगा, उठना ही नहीं पड़ेगा वरन् दूर तक जाना पड़ेगा। मैं तो बिन मारा मर गया। हे प्रभो, कितना कष्ट होगा। भाई यह तो बताओ तुम मेरे लिए कोई सवारी भी लाये हो, मैं पैदल नहीं चल सकूँगा।"

इस प्रश्न का कर्त्ता एक स्थूलोदर पुरुष है, जो एक स्थान पर चित्त लेटा हुआ है। उसके हाथ पाँव आदि सब अंग शिथिल पड़े है, उनमें कोई हरकत नहीं हो रही है। दर्शक को भ्रम हो सकता है कि वह कोई रोगी है। वैसे प्रत्यक्ष में कोई रोग के चिन्ह नहीं दिखाई देते। पास ही दीर्घ काय दो काले कलूटे पुरुष खड़े हैं, जिनके नेत्र रक्त वर्ण हो रहे हैं। हाथों में मोटे-मोटे सोटे लिये हुए हैं। उन्हीं से यह प्रश्न उस लेटे हुए पुरुष ने किया है। पूर्वोक्त प्रश्न को सुनकर अट्टहास हँसते हुए उनमें से एक ने कहा, कि हाँ-हाँ हम तुम्हारे लिए तामझाम लाये हैं। मालकिन को तो ज्ञात था कि तुम वहाँ तक पैदल नहीं पहुँच सकोगे। आज्ञा हो तो हम दोनों तुम्हें उठाकर उसमें लिटादें। जल्दी करो, उठ बैठो,

मालकिन ने तुम्हें शीघ्र बुलाया है, देर करने से वे क्रुद्ध हो जायँगी।

"अच्छा भैया तुमने ठीक किया जो सवारी ले आये, मैं तो एक महीने में भी वहाँ न पहुँच पाता। परन्तु थोड़ा ठहर जाओ, थोड़ा ही—जरा सा और आराम कर लेने दो। सवारी की हलचल में भी तो कष्ट होगा। यह सुख छोड़ा नहीं जाता। हाय, अभी एक दुख और भी है। यहाँ से उठकर टट्टी में जाना होगा। यह टट्टी की हाजत क्यों होती है। सब कुछ पेट ही में क्यों नहीं भस्म हो जाता। पड़े रहने में बड़ा मजा है। इसके सामने संसार के सब सुख तुच्छ हैं। देखो तुमसे बातचीत करने में भी तो मेरी जीभ को कष्ट होता है। अब मैं तुमसे इशारे ही इशारे में बातचीत करूँगा। आँखों ही आँखों में समझते जाना। बुरा मत मानना, तुम देखते हो, सामने चारपाई पड़ी है। मैं जो रात को भोजन करके उठा तो यहीं का यहीं पड़ा रह गया। चारपाई दो कदम हटके थी। विचार करता ही रह गया कि अब उठता हूँ, अब उठता हूँ। वहाँ तक जाने के कष्ट सहन का साहस ही नहीं हुआ। बाजे रोज तो भोजन रक्खा का रक्खा ही रह जाता है। भोजन तो कोई न कोई रख ही जाता है, कभी कोई इतनी भी कृपा कर देता है कि वह मेरे मुँह में भी डाल जाता है, मैं चबा जाता हूँ, चबाने के कष्ट के मारे कभी कभी निगल ही जाता हूँ। अगर कोई पानी मुँह में डालना भूल गया, तो सुराही लोटा

मुँह की ओर ताका ही करते हैं, कि देखें हम पर कब कृपा होती है। सारी रात इनको सुनाई नहीं होती। कल रात को मेरे मुँह में किसी ने रबड़ी डाल दी। रबड़ी बड़ी अच्छी वस्तु है, चबानी नहीं पड़ती, गटगट पेट में चली गई। कुछ मूँछों पर भी फैल गई। जहाँ तक जीभ से चाटा जासका चाटली। दुष्ट ने पानी नहीं पिलाया था, न मुँह ही धोया था। वैसे पानी पास ही रक्खा था, पर मेरा हाथ से उठा कर पीने का साहस नहीं हुआ। एक बार हाथ लोटे तक बढ़ाया भी, पर पहुँचा नहीं। इतने में यार क्या गजब हुआ कि कहीं से आफ़त का मारा एक कुत्ता चला आया और लगा मेरा मुँह चाटने। मैं बड़ी आफ़त में पड़ा, उसे हाथ उठाकर मारे कौन? अपना तो मजा जाता है। चाटले पट्ठे तू भी क्या कहेगा। उस बेचारे ने जरा सा ही चाटा था, कि एक दूसरा कुत्ता और भी आगया। उन दोनों में लड़ाई शुरू हो गई। कभी पहला दूसरे को भगा कर मुँह चाटने लगता, कभी दूसरा पहले को भगा कर चाटता। बड़ी छीछालेदर हुई। कभी-कभी वे लड़ते-लड़ते मेरे ऊपर भी चढ़ आते। पर वाहरे मैं! न तो मैंने उनके मारने को हाथ ही उठाया न मुँह ही फेरा। ऐसा पड़ा रहा जैसे कोई मुर्दा पड़ा हो। एक आदमी खड़ा तमाशा देखता रहा, पर उस बदमाश ने उन कुत्तों को नहीं मारा। उस पर मुझे बड़ी झूँझल आई, अगर उठ सकता तो उसे खूब मारता।

ऐसा कह कर वह पुरुष उन दोनों मनुष्यों की ओर देखकर

हाथ जोड़ कहने लगा—"मुझे थोड़ा और पड़ा रहने दो, इसमें मुझे बड़ा आनन्द आ रहा है।"

वे बोले कि नहीं, उठते हो तो उठो, नहीं तो हम दोनों तुम्हारी टाँगे पकड़ कर घसीटते हैं और तामझाम में डाल कर लिये चलते हैं। हमें देर हो रही है, तुम्हें बातें सूझी हैं। "अच्छा तो उठता हूँ, बिना उठे नहीं बनेगी, क्योंकि तुम भी तो हुक्म-हाकिम के पाबन्द हो। जरा सहारा तो लगा दो।"

"तुम क्या बीमार हो जो सहारा लगादें, हट्टे-कट्टे मुस्टंडे तो हो, उठो-उठो देर मत करो।"

राम राम कहता हुआ वह बड़ी कठिनाई से उठा और फिर लेट गया। आखिर उन दोनों ने उसे पकड़ कर उठाया, तब वह गिड़गिड़ा कर कहने लगा—"अरे तनक और लेटा रहने दो, चलना तो है ही।" पर वे न माने जबरदस्ती घसीट कर सवारी में डाल दिया और साथ-साथ चलने लगे। वहाँ से चलकर एक ऐसे स्थान पर पहुँच गये जहाँ अनेक असुर बैठे परस्पर बात-चीत कर रहे थे। तामझाम उनके सम्मुख रख दी गई, तब उस लेटे हुए मनुष्य ने लेटे ही लेटे असुरों के बीच में बैठी हुई कृष्ण-वर्णा को प्रणाम किया और कहा—"मालकिन क्षमा करना, बड़ा मजा आ रहा है, उठा नहीं जाता।" सब खिल-खिलाकर हँस पड़े। मालकिन बोली कि देखो आलस्यासुर, इस गढ़ में देवासुर-संग्राम होने वाला है। क्योंकि यात्री ने स्वार्थ-मार्ग रुकवा कर

परहित-मार्ग खुलवा दिया है। ऐसी दशा में हमारा सब का गढ़ से निकाला जाना निश्चित ही है। इस युद्ध में तुम्हारी भी आवश्यकता है, तुम बड़े काम के आदमी हो इसी लिए तुम्हें बुलाया है।

आलस्या०—अरे संग्राम ! संग्राम में मेरी जरूरत !! हथियार कौन उठावेगा ? मैं बेमौत मारा जाऊँगा। ना मालकिन मुझे तो लौट जाने की आज्ञा दीजिए।

माल०—नहीं तुम्हें हथियार नहीं उठाना पड़ेगा। तुम्हें लोभासुर के साथ जाकर उसकी सहायता करनी पड़ेगी। तुम वहाँ जाकर यात्री के मन्त्री मनीराम से चिपट जाना और उसे अपना जैसा बना लेना। तुम में यह शक्ति है, यही उद्योग तुम्हें करना पड़ेगा।

आल०—उद्योग ! उद्योग तो मेरा वैरी है, मैं वैरी के पास नहीं जाऊँगा। मुझे लौट जाने दीजिए। आपने मुझे बड़ा सुख दिया है, सदा मेरे खाने-पीने का प्रबन्ध करती रही हो, नहीं तो मैं कभी का भूखा-प्यासा मर गया होता। अब मुझे क्यों बेमौत मरवाती है।

माल०—इसी दिन के लिए तो तुम्हारी परवरिश की गई थी, बैठे-बैठे तुम्हें भोजन पानी दिया गया था, अब काम पड़ने पर जी चुराते हो। "सरसब खाइ भोग करि नाना, समर भूमि भा दुरलभ प्राना"। अरे तुम्हें तो कोई कष्ट नहीं करना पड़ेगा, आराम

से लेटे-लेटे सवारी में जाना और मनीराम से चिपक जाना, खूब कस कर चिपक जाना। उसे अपना जैसा कायर बना लेना, जिससे उद्योगदेव उसकी कुछ भी सहायता न कर सकें। उसी का तुम्हारा तो मुक़ाबला है, जहाँ तुम चिपके कि बस वह निर्जीव हुआ। अब तुम यहाँ ठहरो। यहाँ तुम्हें सब भाँति के सुख दिये जायँगे। पाखाने जाओगे तब चारपाई कटवा दी जायगी, पेशाब करोगे तब नली लगवा दी जायगी। भोजन-पानी तो तुम्हारे पेट में डाल ही दिया जायगा। उन दोनों भृत्यों की ओर देखकर मालकिन बोली, कि कहो और सब योद्धा आगये जो लोभासुर के साथ जायँगे? क्योंकि पहला मोर्चा लोभासुर से ही है। इन्होंने मनीराम को फोड़ तो लिया है, परन्तु उसका विश्वास नहीं। उस पर ज़ोर डालना होगा। वही तो गढ़ में एक ऐसा व्यक्ति है, जिस पर कि हमारी हार-जीत निर्भर है, अर्थात् युद्ध का केन्द्र वही है। जिसकी ओर वह अटलरूप से हो सका वही जीत गया। ये आलस्यासुर अपना प्रभाव डाल कर उसे निकम्मा कर देंगे, उद्योगहीन कर देंगे। वही काम प्रमादासुर भी करेंगे। बुलाओ मेरे सामने उन सब योद्धाओं को, जो लोभासुर के साथ जाने के लिए तैयार होकर आये हैं।

तुरन्त ही प्रधान-प्रधान योद्धागण उसके सम्मुख उपस्थित हो गए। उनको देखकर वह बोली—कहो जी प्रमादासुर, क्या तुम तैयार हो। अपनी पूर्णशक्ति लगाना। जो समय पर

विश्वासघात करता है वह दण्ड का अधिकारी होता है। तुम्हारा और आलस्यासुर का मुक़ाबला उद्योगदेव से होगा। तुम दोनों मिलकर मनीराम को निर्जीव-सा कर दो, जिससे वह देवों के काम का न रह जाय।

प्रमा०—मैं अपनी बड़ाई अपने मुँह से नहीं करना चाहता, मैं रण में ही अपना कौशल दिखाऊँगा। देखूँगा कि उद्योगदेव मेरे सामने कैसे ठहरते हैं।

"और तमासुर तुम्हारा काम है, जहाँ-जहाँ प्रकाश हो, जहाँ-जहाँ तुम्हें सत्देव दिखाई पड़ें, वहाँ-वहाँ अन्धकार करदो। मनीराम को देव दिखाई ही न पड़ें। तुम सब तो उसके समीप रहो पर देव छिपे रहें।"

" हाँ हाँ, सरकार मैं अपना काम बड़ी खूबी से करूँगा" तमासुर ने शीघ्रता से उत्तर दिया—"देवों को ऐसा छकाऊँगा, कि वे हैरान हो जायँ।"

शेष वीरों की ओर देखकर उसने कहा कि कहोजी भयासुर, शोकासुर, चिंतासुरी, ईर्ष्यासुरी, रागासुर, द्वेषासुर, मत्सरासुर, दंभासुर, क्रूरासुर, और निर्दयतासुरी। मैं समझती हूँ तुम सब बिल्कुल तैयार होकर आए हो। देखो हमारी हार-जीत तुम्हारे ही हाथ में है। तुम्हारा यह रणकौशल फिर किस दिन काम आवेगा। तमाशा दिखा दो अपने-अपने जौहरों का। तुम्हारे एक-एक के गुण ऐसे-ऐसे विकट हैं कि यदि तुम में से एक ही अपनी

पूर्ण शक्ति लगाकर मनीराम के पीछे पड़ जाय, तो सम्पूर्ण देवगण मिलकर भी उसकी रक्षा नहीं कर सकेंगे। खूब समझलो, कि तुम मनीराम को न साध सके तो अपना इस गढ़ से निकाला जाना निश्चित है। हे रणबाँकुरे लोभासुर, यद्यपि तुममें अपारशक्ति है तो भी मैं गुप्त रूपसे तुम्हारे पीछे-पीछे रहूँगी। तुमको खींच-खींच कर उसके सम्मुख करती रहूँगी। मनीराम लाख चाहे, पर इस दुर्दमनीय आलुरी को नहीं भगा सकता। अब तुम सब विश्राम करो, और कल प्रातःकाल ही कूच बोल दो।

११

यात्री के गढ़ में स्वार्थ-मार्ग पर शब्दसेन, स्पर्शसिंह, रूपराम, रसखान और गंधदास से घिरे हुए हमारे मनीराम आज विचले हुए खड़े हैं। वहाँ पर यात्री व उनके अन्य मंत्रीगण भी आ पहुँचे हैं। जैसे कोई अबोध बालक मचल जाता है, उसी भाँति मनीराम फैल मचा रहे हैं, फूट-फूट कर रो रहे हैं। समझाने वाले सब तरह समझा रहे हैं, साम, दाम, दण्ड, भेद सबका ही प्रयोग किया जा रहा है, पर किसी भाँति नहीं मानते। बड़ी बुरी दशा हो रही है।

अरे, क्या ये वेही मनीराम हैं, जिनके लिए कहा जाता है, कि ये बड़े शक्तिमान् हैं। ये केवल अपने बल से चाहें तो यात्री को राजाधिराज बना सकते हैं, चाहें उसे स्वर्ग-सुख भगा सकते हैं और चाहें तो उसे घोर नरक में ढकेल सकते हैं। ये उसे जो नाच चाहें नचा सकते हैं। यदि ये यात्री के वश में हो गए तो यात्री समझता है कि उसने सारा संसार जीत लिया। ये विचित्र शक्ति वाले इतने शीघ्र गामी हैं, इतने चंचल हैं कि इन के सम्मुख विद्युत-शक्ति तो कुछ भी नहीं हैं। फिर इतनी प्रबल शक्ति वाले के सामने इनके रात्रि-दिन के संगी रूपराम आदि इतने प्रलोभन उपस्थित कर दिया करते हैं, कि ये चंचल स्वभाव वाले बेचारे मनीराम कहाँ तक अपने को सम्हालें। आज वे ही

मनोराम महाराज पुकार-पुकार कर कह रहे हैं—"मानो हम तुम्हारे कोई हैं ही नहीं, तुम्हारे गढ़ में हमारा कोई स्थान ही नहीं रहा, हाय हम वृथा जन्मे। हमारे सब सुख छीने जा रहे हैं, हमारे लिए कोई कार्य ही शेष नहीं रह जाता। जैसे हम इस संसार में रहे वैसे न रहे, क्योंकि हमको मृतक बनाया जा रहा है। अच्छा हो हमें बिल्कुल ही मारडालो।" इत्यादि शब्द मनोराम एक ही साँस में बक गए। चेतनदास भी उनकी दर्द भरी बातें सुन कर सोच-सागर में डूब गए। यात्री भी कुछ-कुछ द्रवित होने लगा, परन्तु बुद्धिप्रकाश सावधान था। वैसे वह सदा मनोराम के चक्कर में आजाया करता था, पर अबके वह बात नहीं है। उसपर विवेकानन्द का पूर्ण प्रभाव पड़ चुका है। उसकी बुद्धि निर्मल हो चुकी है। यात्री की ओर देख कर वह बोला कि यह बाल-प्रलाप है, इसको कोई रोग लग गया है, विवेकानन्द की बताई हुई औषधि देनी चाहिए तब यह नीरोग हो कर चेत में आ जायगा। बालक की बात सुननी होती है, दुलार भी करना चाहिए, परन्तु रोगी बालक का हठ रखना सर्वथा अनुचित है।

उसी समय विषय-विराग औषधि मनोराम को सेवन करने के लिए दी गई। पहले तो उसने बहुत हिचर मिचर किया, परन्तु बहुत आग्रह करने पर औषधि के सेवन करने को तैयार होगया। क्यों कि उसे समझाया गया कि इसके सेवन से उसका विषय-ज्वर उतर जायगा।

ओषधि के मुँह से लगाते ही मनीराम चिल्ला उठा कि अरे यह तो बड़ी कड़वी है, मुझसे नहीं पीजाती। तब उसके मुँह में वह ओषधि बलपूर्वक डाल दी गई। उसने तुरन्त ही वमन कर दिया और ओषधि सब बाहर निकल गई। पेट में न ठहर सकी। मनीराम कहने लगा, कि हाय-हाय मर गया, मैं ऐसी कड़वी ओषधि नहीं पी सकूँगा। इसका पीना मेरी शक्ति से बाहर है। यहाँ पर यह सब चरित्र हो ही रहा था, कि सहसा मारू बाजे का शब्द सुन पड़ा। एक ओर बड़ा भारी कोलाहल हो रहा था। इतने में चरों ने आकर यात्री को सूचना दी कि लोभासुर की अध्यक्षता में असुरों की बहुत-सी सेना उमड़ी चली आ रही है।

यात्री ने कम्पित स्वर में पूछा कि किधर से आई? मैंने तो स्वार्थ-मार्ग बन्द करवा दिया था कि जिससे बहिष्कृत शत्रु बाहर ही रुक जायँ। हमारे मित्र देवलोग परहित-मार्ग पर आही गए हैं, अब यह स्वार्थ-मार्ग खोल कर किसने शत्रुओं को इधर आने का अवसर दिया। कहाँ हैं हमारे गढ़-रक्षक सत् देव जो गढ़ की रक्षा कर रहे थे।

चर ने बड़ी घबराहट से कहा कि महाराज सत को दबा कर तम वहाँ गढ़-रक्षक बन बैठा है। वह हटाए से भी नहीं हटता। सत् वहाँ अचेत पड़े हैं।

यात्री चकित होकर बोला कि अरे यह क्या हुआ! मेरा प्रबन्ध किसने मिट्टी में मिला दिया। वह कौन आस्तीन का साँप

है, जिसकी सहायता से तम वहाँ पहुँच गया।

बुद्धिप्रकाश ने बड़े असमंजस में होकर कहा, कि यह करतूत इन्हीं मनीराम की मालूम होती है। इनको शत्रु ने धोखा दिया और इन पर अपना प्रभाव डाल कर इनसे यह विपरीत कार्य करा लिया।

यात्री क्रोधित होकर बोला कि अरे चांडाल, नराधम, तूने यह क्या किया ? क्या मैंने तुझे इसी दिन के लिए पाला-पोसा था, कि तू अपना होकर विराना हो जायगा ? तूने क्या-क्या प्रण किए थे, सब भूल गया। तूने मुझे भरोसा दिया था कि तू शत्रु के फंदे में नहीं फँसेगा, पर इतनी शीघ्र फँस गया। उनका विश्वास करने लगा। छिपे-छिपे उनसे सलाहें करने लगा, और उनको हमारे विरुद्ध उभाड़ कर हम पर चढ़ा लाया। हाय क्या तू हम को चौपट करके ही छोड़ेगा ? क्या तुझको हमारे कष्टों में ही सुख मिलता है ? हाय ! जिसको मैं इतना प्यार करता था, जिसके हठ को सदा रखता था तथा जिसको मैंने अपने गले का हार बनाया था, आज वही मेरे गले का साँप बन गया। वही मेरे सारे प्रयत्नों पर पानी फेर रहा है। अब मैं कहाँ तक इसका मुलाहिज़ा करूँ। इसको अब अपने पास रखने की आवश्यकता नहीं है। जैसे शरीर के किसी सड़े हुए भाग को काट कर फेंक देने ही में कल्याण है, उसी प्रकार इस दुष्ट को मार डालना ही श्रेयस्कर है। बुद्धिप्रकाश, चेतनदास और अहंकारी तुम सब मिल कर इसका

वध करदो, इसको मृतक बना दो, तभी हमारा भला होगा नहीं तो नहीं।

विवेकानन्द ने देखा कि स्वार्थ-मार्ग खुल गया है, उसी मार्ग पर मनीराम के समीप रूपराम आदि डटे खड़े हैं, जिससे मनीराम स्वार्थ-मार्ग से हटना नहीं चाहता। मनीराम के खिंचने से यात्री भी उसी मार्ग की ओर फिसलने लगा है। वे यात्री को सावधान करके बोले, कि आज तुमको क्या हो गया है जो ऐसा अनर्थ करने को तैयार हो गए। मनीराम को मार डालने से फिर तुम्हारी क्या दशा होगी? फिर तुम किस कामके रह जाओगे? यह वैसा अंग नहीं है, जिसको काट कर फेंक देने से तुम स्वयं अपना अस्तित्व इस मायापुरी में स्थिर रख सको। इसका तुम्हारा यहाँ चोली-दामन का साथ है। इसको मार डालना बुद्धिमानी नहीं है, किन्तु इसके रोग को दूर करने का यत्न करना चाहिए। इसके स्वभाव को बदलना पड़ेगा; यह तुम्हारे बड़े काम का है। यह तुम्हारा सर्वस्व है, इसी के द्वारा तुमको अपनी यह दीर्घ यात्रा पूर्ण करनी पड़ेगी। क्या कोई अपने रोगी बालक को मार डालता है? नहीं वह उसको नीरोग करने का पूर्ण यत्न करता है। मनीराम को शत्रु ने निज आकर्षण द्वारा स्वार्थ-मार्ग पर खींच लिया है, वह खिंच गया है। उसकी शक्ति को क्षीण करके निज प्रभाव से उसको परहित-मार्ग पर लाना होगा। मुझको संदेह होता है कि मनीराम को अपनी ओर खींच कर शत्रु ने तुमको भी स्वार्थ-

मार्ग पर खींचना आरम्भ कर दिया है। क्योंकि क्रोधासुर तुम्हारा शत्रु है, उसका प्रभाव तुम पर कैसे पड़ा जो तुम क्रोधित हो गए। हिंसासुरी तुम्हारी वैरिन है, मैं देखता हूँ कि वह भी छिपी-छिपी तुम्हारे पास तक आ पहुँची है, तभी तो तुम मनीराम की हत्या करने को तैयार होगए। शत्रु छिप-छिप कर वार करने लग गए हैं, उन्होंने युद्ध आरम्भ कर दिया है। हमारा युद्ध अहिंसात्मक है, तुम शत्रु की भी हिंसा नहीं कर सकते। मनीराम तो तुम्हारा अंग है, उसके मारने का तो तुम विचार भी नहीं सर सकते।

क्या तुम अपनी परम हितैषिणी अहिंसादेवी का अनादर करोगे? कदापि नहीं! शोक है तुम मनीराम को दोष दे रहो हो, परन्तु स्वयं ही तुम शत्रु के चक्कर में पड़ गए। शत्रु छिपे हुए तुम्हारे आगे-पीछे लग रहे हैं, सावधान रहो। युद्ध आरम्भ हो गया है, अपने-विराने, शत्रु-मित्र की पहचान में धोखा मत खाओ। शत्रु छिप-छिप कर, वेश बदल-बदल कर तुम्हारे मित्रों का रूप धारण करके तुम्हारे पास आवेंगे, तुमको धोखा देंगे।

उस दिन की हमें खूब याद है जब निंदासुरी व चुगलासुर सत् के पुत्र-पुत्री बन कर आए थे। उन्होंने ही तो मनीराम को धोखा दिया। चेतनदास भी चक्कर में पड़ गए थे, परन्तु मेरे सहारे से बुद्धिप्रकाश सावधान रहा। उसने मुझे नहीं छोड़ा। पर मनीराम उसकी चाल को न समझ सका और फँस गया।

यात्री लज्जित होकर बोला कि आपको धन्यवाद है, आपने मुझे सावधान कर दिया सचमुच मैं भी खिंचा जाता था। मनोराम तो स्वार्थ-मार्ग पर खिंच गया, अब क्या करना चाहिए।

विवे०—सब प्रबन्ध ठीक है संतोपदेव आ पहुँचे हैं, वे मनोराम को परहित-मार्ग पर ले आवेंगे। शत्रु देखते के देखते ही रह जायँगे।

अहिंसा

१२

यात्री के हृदय-गढ़ में देवासुर-संग्राम छिड़ गया है, उभय पक्ष की सेना डटी खड़ी हैं। असुरों का सेनापति लोभासुर है और देवों का संतोषदेव। संतोषदेव यात्री और उसके मंत्रीगण समेत परहित-मार्ग पर खड़े हैं। लोभासुर आदि स्वार्थ-मार्ग पर खड़े है। उसी मार्ग पर मनीराम भी उपस्थित हैं। देव उसे परहित मार्ग पर ले जाना चाहते हैं और असुर चाहते हैं कि वे यात्री समेत अन्य मंत्रीगण को भी स्वार्थ-मार्ग पर ले आवें। यही लड़ाई है। यह सब देखकर अहंकारी जो मनीराम के असुर-पक्ष में खिंच जाने से विचलित हो उठा था, विवेकानन्द से पूछने लगा, कि श्री महाराज यह कैसी लड़ाई है। यहाँ न तो शस्त्रों की झनकार ही सुन पड़ रही है, न कहीं लोहू की नदियाँ बहती देख पड़ रही हैं और न कहीं 'हाय मरे, हाय मार डाला' इत्यादि शब्दों का कोलाहल ही सुन पड़ रहा है। यहाँ युद्ध का कोई भी चिन्ह न देख पड़ने पर भी कहा यही जा रहा है कि यहाँ युद्ध हो रहा है।

विवे०—यह अहिंसात्मक युद्ध हो रहा है।

अहं०—महाराज, आपकी ओर अहिंसा देवी हैं, उनकी ओर हिंसासुरा, इन दोनों का युद्ध कैसा? मैं नहीं समझता कि घातक के सम्मुख बिना प्रतिघात किये युद्ध में जीत कैसे होगी।

विवे०—यह बताओ कि युद्ध किसलिये होता है।

अहं०—मेरी समझ में युद्ध का कारण स्वार्थ-परता है, अर्थात् जहाँ एक पक्ष दूसरे के स्वत्व को हड़पने के लिये तैयार हुआ, वहाँ दूसरा पक्ष अपना स्वत्व सुरक्षित रखने के लिये विवश होकर युद्ध करता है, और आवश्यकतानुसार उस स्वार्थी का प्राणघात भी कर देता है। रण में की हुई हिंसा हिंसा नहीं कही जाती, क्योंकि वहाँ धर्म ही की तो रक्षा की गई है।

विवे०—परन्तु जो अपना स्वत्व स्थिर रखने को युद्ध करके अन्य का प्राणघात करते हैं, वे भी तो स्वार्थी ही हैं। तुम उनको स्वार्थी नहीं कहते अतः अब हम तुमको समझाते हैं कि स्वार्थी किसे कहते हैं। तुम यह तो जान ही चुके हो कि तुमको स्वार्थ-मार्ग छोड़कर परहित-मार्ग पर चलना है। सो अब तुमको स्वार्थ व परहित का भेद भी ठीक-ठीक समझना पड़ेगा।

मायारानी ने अपनी मायापुरी में नाना प्रकार के प्रलोभक पदार्थ उत्पन्न कर दिये हैं। वे सब ही यात्री को फँसाने वाले हैं, अर्थात् उसका यह प्रबन्ध है, कि उन सब प्रलोभनों के ही द्वारा यात्री उसी की नगरी में सदा चक्कर काटा करे, जिससे उसकी यात्रा कभी पूरी न हो। उन्हीं सब पदार्थों को रूपराम आदि सदा यात्री के गढ़ में पहुँचाया करते हैं, और मनीराम को लुभा कर जाल में फाँस लेते हैं। परन्तु इनके बिना भी यात्री का काम नहीं चल सकता। उसकी यात्रा उसके निर्वाह की सामग्री प्राप्त

हुए बिना कैसे हो सकेगी ? तब हम लोग उसको परहित-मार्ग पर चलाते हैं और यह ध्यान बँधाते हैं, कि यह सब सामग्री तुम्हारी निजी नहीं हैं, सब माया विनिर्मित है। तुम्हारी यात्रा के निर्वाह के लिये काम की वस्तु होते हुए भी तुम इसको अपना निजी मत समझो, इसको केवल अपने ही लिये मत समझो, वरन् इससे अपनी यात्रा में दूसरों का दुख भी दूर करते चलो। जब यात्री को ऐसा ध्यान बँध जाता है, तब उसके हृदय से कंजूसी चली जाती है और उन वस्तुओं को अपना निजी न समझने से वह उनमें फँसता नहीं, वरन् उनसे काम लेता हुआ भी अपने ध्येय को नहीं भूलता। परन्तु स्वार्थ-मार्ग पर चले जाने से वह उनको अपना निजी समझ कर कंजूस बन जाता है और उन्हें ही अपना सर्वस्व समझ यात्रा के उद्देश्य को भूल कर सदा भटकता रहता है।

अहं०—वह न्याय पक्ष वाला इस कारण स्वार्थी नहीं कहा जा सकता कि उसने अन्यायी को मार कर अपना अर्थ साध लिया और समाज को भी हानि से बचा कर परहित किया।

विवे०—तुम प्रतिकूल बात करते हो, उस न्याय पक्ष वाले ने केवल अपने स्वार्थ के लिये दोनों पक्ष को हानि पहुँचाई—इधर तो उसने अपना स्वभाव हिंसात्मक बनाया और उधर उस अन्यायी को मार कर उसके दुष्ट स्वभाव की और भी अधिक वृद्धि की। वह मर कर गया कहाँ है, वह तो प्राण छोड़ते

समाय बदला लेने की प्रबल इच्छा से हिंसात्मक स्वभाव को संस्कार रूप से अपने साथ लिये हुए समाज ही में उत्पन्न हो गया है। इस प्रकार इस तत्कालीन समाज-हित ने अधिक भयंकर अहित का रूप धारण किया है।

अहं०—तो महाराज ठीक-ठीक समझाइए कि हिंसात्मक और अहिंसात्मक युद्ध में क्या भेद है। किस प्रकार अहिंसात्मक योद्धा हिंसात्मक पर विजय प्राप्त कर सकता है।

विवे०—जैसे हिंसात्मक युद्ध दोनों ओर स्वार्थ लिए हुए होता है, वैसे अहिंसात्मक युद्ध नहीं होता। इसके योद्धा को दोनों ओर का शुभचिंतक बनना होता है। हिंसात्मक योद्धा अपना पाशविक बल बढ़ाने का प्रयत्न करता है, परन्तु अहिंसात्मक योद्धा अपनी अंतरंग शक्ति बढ़ाने का उद्योग करता है। पहला अस्त्र-शस्त्र चलाने में कुशलता प्राप्त कर दूसरों को मार के धराशायी करता है, दूसरा अपने आत्मिक बल से, अपनी प्रबल विचार शक्ति से, दूसरे पर अपना प्रभाव डाल कर उसको अपना जैसा सुविचार वाला बना लेता है। उसके हृदय से स्वार्थी विचार निकाल कर उसपर अपना अधिकार जमा लेता है। परन्तु जैसे बिना अभ्यास के हिंसात्मक युद्ध में विजय प्राप्त करने की क्षमता नहीं होती, उसी प्रकार इस युद्ध में भी बिना पूर्ण अभ्यास किये अपने विचारों में आकर्षणशक्ति उत्पन्न करने की—जिससे दूसरा निर्बल विचार वाला खिंचकर चला आवे—योग्यता प्राप्त नहीं हो सकती।

प्रयत्न दोनों प्रकार के युद्ध में करना होता है। हिंसात्मक योद्धा अपनी पाशविक शक्ति बढ़ाकर विजय के लिए साहस कर लेता है, परन्तु उसे विजय का पूर्ण विश्वास नहीं होता। उसकी दृष्टि आकास्मिक घटनाओं की ओर रहती है। अहिंसात्मक योद्धा जिस समय अपने विचारों की आकर्षण शक्ति का पूर्ण अनुभव कर लेता है, वह अपनी विजय के लिए निस्संदेह हो जाता है। विजय-लक्ष्मी उसको सम्मुख खड़ी दिखाई देती है। वह घटनाओं का दास नहीं रहता और अकेला ही असंख्य पाशविक शक्ति वालों पर विजय प्राप्त करता है। उसके सामने वन के हिंसक जन्तु सिंह आदि भी बकरी बन जाते हैं। इस विश्वव्यापी नियम को कोई झूठा सिद्ध नहीं कर सकता।

मैंने मनीराम की हत्या का विचार करते समय यात्री से यही तो कहा था कि तुम शत्रु की भी हत्या नहीं कर सकते, क्योंकि तुम अहिंसादेवी के पक्षपाती हो। तुम उनका अनादर नहीं कर सकते। मनीराम तो तुम्हारा ही है, तुम हिंसासुरी का सहारा लेकर देवों को यह बात जँचा देना चाहते हो कि उन में शक्ति नहीं है। इससे तुम्हें असुरों का सहारा लेना पड़ा और उनको निमंत्रण देकर स्वार्थ-मार्ग खोल देना पड़ा। यदि मनी-राम के सहारे वे यहाँ तक आ पहुँचे हैं, तो हमारा कर्त्तव्य है कि हम उनकी एक भी बात न सुनें, जिससे वे स्वतः ही यहाँ से भागने लगें। मनीराम को उन्होंने बहकाकर स्वार्थ-मार्ग की ओर

खींच लिया है। हमारा काम है हम अपना बलिष्ठ प्रभाव मनीराम पर डालकर उसे परहित-मार्ग पर लौटा लावें। बस यही हमारी लड़ाई है।

अहं०—महाराज सत्‌देव के उपस्थित रहते मनीराम को अविवेकासुर किस प्रकार खींच ले गया।

विवे०—सत् का इसमें दोष नहीं है, निंदासुरी व चुगलासुर की कुसंगति ने वहाँ पर तम को पहुँच जाने का अवसर दे दिया। फिर तम ने वहाँ पहुँच कर उनके नेत्रों के सामने ऐसा अंधकार कर दिया, जिस से सत् का प्रकाश विलीन हो गया। तुरन्त ही अविवेकासुर व लोभासुर वहाँ जा पहुँचे और मनीराम को अपनी प्रबल शक्ति से घसीट कर स्वार्थ-मार्ग पर ले आए। परन्तु यात्री के सत्याग्रह से परहित-मार्ग सुरक्षित रहा, जिससे हम लोग तुम्हारी सहायता पर आरूढ़ रह सके।

सन्तोष

१३

अहंकारी ने देखा कि देव-सेना और असुर-सेना में खूब घमासान युद्ध होने लगा है। सत, रज और तम को इन दोनों ने मानो अपना अस्त्र बना लिया है। देवों द्वारा प्रेरित सत अपना प्रकाश फैलाता हुआ मनीराम के पास उसे खींचने को जाता है, तो रज और तम दोनों छिप जाते हैं। मनीराम ज्योंही इधर परहित-मार्ग की ओर खिचता है, त्योंही असुर-प्रेरित तम प्रबल हो उठता है और वह सत व रज को दबा कर अन्धकार फैला देता है। मनीराम फिर स्वार्थ-माग पर खिच आते हैं। कभी-कभी रज उन दोनों को धर दबाता है, वे प्रकाश और अन्धकार दोनों के बीच में आ जाते हैं और चंचल होने लगते हैं।

उसी समय यात्री की ओर से अहंकारी ने लोभासुर से कहा, कि हे राक्षस, तूँने हमारे मनीराम को बलात् खींच कर हमारे मार्ग में बाधा डाल दी है। क्या तुझे देवों का भय नहीं है। तू हमारे ही गढ़ में रहता हुआ हमारे ऊपर अत्याचार कर रहा है। तू निश्चय रख कि यात्री को अब तेरा भय नहीं रहा। वह विवेकानन्द की दया से अब अपनी शक्ति से परिचित हो गया है और तेरी सारी धोखे की करतूतों को जान गया है। काठ का पात्र अग्नि पर दो बार नहीं चढ़ सकता। अब सन्तोषदेव तेरा

सामना करने को उपस्थित हैं। यदि देव आज दिन हमारे सहायक न होते तो संभव था कि अब भी तेरा जादू मनीराम की भाँति हमारे ऊपर भी चल जाता; पर धन्यवाद है देवों को जो हमारी सहायता के लिए जी-जान से डटे खड़े हैं। अब पहले तू अपना वार कर, पीछे मित्र उसका काट करेंगे। तू एक-एक सैनिक को सामने ला, अपने दुर्गुणों को अपने मुख से बखान और अपनी वीरता दिखा। देखना तू कितनी जल्दी निस्सार सिद्ध करके यहाँ से भगाया जाता है।

लोभासुर बोला, कि अहंकारी, तुमने अच्छे लँगोटिये बाबाजी संतोषदेव से मेरा सामना कराया। मन्त्री मनीराम अमीर है, शौक़ीन है, इस मायापुरी में रहने के योग्य है। वह मेरी क़दर करता है, क्योंकि बिना मेरी सहायता के वह यहाँ किसी काम का नहीं रह जाता। तुम सब के सब घोर मूर्ख हो, जो पाखंडी वैरागियों के बहकाने में आकर अपना व अपने स्वामी का अहित करना चाहते हो। मनीराम का तो मानो अस्तित्व ही मिटाना चाहते हो। वाहवा, संतोषदेव ने क्या पट्टी पढ़ाई है, कि जो कुछ मिल जाय उसीपर संतोष करलो। ठीक, बहुत ठीक, चोर आवे चोरी कर ले जाय, लेजा बाबा तेरा ही भला हो, हमें संतोष है। रोटी बनाओ, कुत्ता खा जाय, खाले बाबा, हम भूखे ही सही, हमें पर तो संतोषदेव की कृपा है। इतना ही नहीं, हम दान करते हैं, लो भाई दान में धन, चले आओ सदाव्रत जारी है।

तुम कोई क्यों न हो, चोर हो, जार हो, बटमार हो, हत्यारे हो, तुमने हमारे सगे भाई ही की हत्या क्यों न की हो, हमें इससे क्या; हमारे यहाँ सबके लिए दान का दरवाजा खुला है। हम पर उदार-देव की कृपा है, क्या हमारा भंडार कभी खाली हो सकता है। हमारे दान से चाहे जूआ खेलो, वेश्यागामी बनो, मद्य पियो या घोर कुकर्म करो, तुम्हारा हमारे यहाँ आदर है। हम दाम देकर तुम्हारी खातिर करेंगे। हमारे धन कमाने का प्रयोजन ही यही है कि जिससे तुम्हारा सब का आदर सत्कार होता रहे। फिर चाहे हम ऋणी होकर ब्यौहरे के कोप-भाजन ही क्यों न बने रहें।

यदि बेटा दूध पीने को पैसा माँगे तो मने कर देंगे, क्योंकि आज हमको ब्राह्मण जिमाना है। कैसा पेटू ब्राह्मण, जो चार जगह भोजन कर आया हो। पेट में चाहे जगह न हो परन्तु तुम्हारा भोजन छोड़ने वाला नहीं। ठूँस-ठूँस कर जगह निकाल ही लेगा। बेटा भूखा रह गया तो क्या हुआ, ब्राह्मण तो भोजन कर गया। हमारा नाम दानी विख्यात है, सब समाचार-पत्र एक स्वर से चिल्ला रहे हैं, कि ऐसा दानी नहीं देखा जो निज स्वार्थ को परार्थ के लिये एक दम तिलाञ्जलि दे देता है। कुछ चिंता नहीं, यदि दूध न मिलने से बेटे का स्वास्थ बिगड़ गया है, वह रोगी हो गया है, उसके प्राणों पर आ बनी है। दान में कसर न रह जावे, कोई भी यह न कहने पावे कि एक भी भिखमंगा हमारे यहाँ से निराश होकर चला गया। जो कुछ आपत्ति-विपत्ति आ

पड़ेगी सब झेल लेंगे, वह तो हमारे कर्मों का फल है, हमें इसी में संतोष है। संतोषदेव हमारे पूज्य हैं, क्या हम उनका निरादर कर सकते हैं।

यद्यपि इस सत्यानाशी संतोषदेव ने इनको चौपट कर रक्खा है, तोभी इनकी समझ में नहीं आता। और मैं जो इनका परम हितैषी हूँ, इनका बुरा दीखता हूँ। पर मनीराम बुद्धिमान् है, वह मेरे एक ही संकेत से इनके पाखंड को समझ गया। बुद्धिमानी इसी को कहते हैं। तुम लोग उसको तंग कर रहे हो, नादान बालक बना रहे हो, रोगी बनाकर निरर्थक औषधि पिला रहे हो। परन्तु वह इतना धीर वीर है कि उन वैरागियों के चकमे में नहीं आता। वह ख़ूब समझ गया है कि मेरा सहारा लेने वाला इतना सम्पत्तिशाली हो जाता है, कि कंगले उसको देखकर जला करते हैं। आज इस रण में तुम लोग संतोषदेव को मेरे सामने लाए हो। मैं चिनौती देता हूँ कि उनके पास मेरे वार की काट नहीं है।

न्यायदेव रण में कूद कर कहने लगे कि सेनापतिजी, शत्रु लोभासुर का वार पूर्ण रूपेण हो चुका है, अब आप भी उसका काट करें। उसने मनीराम पर अपना ऐसा विकट प्रभाव डाल दिया है, कि हम सब देव उसे निरर्थक प्रतीत होने लगे हैं। अब आप अपना पराक्रम दिखाइए। कहा भी है कि "वीर पराक्रम ना करे तासों डरत न कोइ। बालक हू कों चित्र कौ बाघ खिलौना होइ।"

संतोषदेव ने मनीराम को लक्ष्य करके कहा, कि मनीराम तुम मेरे सन्मुख देखो और मुझे पहचानो। लोभासुर ने अविवेकासुर द्वारा तुम्हारे नेत्रों पर एक प्रकार का आवरण डाल दिया है, और मेरे वास्तविक रूप को छिपाने का प्रयत्न किया है। मैं तुम्हें ठीक वैसा ही नहीं दीख रहा हूँ, जैसा कि वास्तव में हूँ। उसने इस समय धोखे के अस्त्र का प्रयोग किया है, क्योंकि धोखा देना ही उसकी कूट नीति तथा रण कुशलता है। वे लोग अविवेकासुर के ही भरोसे उछलते-कूदते रहते हैं; परन्तु धोखे के अस्त्र सब निस्सार और शक्ति हीन होते हैं। वे बहुत देर तक काम नहीं कर सकते।

अब हमारा कर्तव्य है कि हम तुम्हारे नेत्रों पर पड़े हुए उस आवरण को अपने सच्चे अस्त्र से हटा दें, जिससे तुमको हमारा यथार्थ रूप दीखने लगे। देखो सत्यदेव आ पहुँचे हैं, प्रकाश हो गया है, अब उसी प्रकाश में लोभासुर की करतूतें ध्यान पूर्वक देखो।

मनीराम ने सत्य के उज्ज्वल प्रकाश में देखा, कि लोभासुर अपना तामस् अस्त्र बारम्बार छोड़ रहा है। कभी-कभी राजस् से भी काम लेता है, परन्तु उसका प्रधान अस्त्र तामस् ही है। देव लोग सात्विक अस्त्र छोड़ कर तामस् की काट कर रहे हैं। सात्विक अस्त्र ने राजस् और तामस् को नीचे दबा लिया है। वे दोनों दब गये हैं। उनके दबते ही मनीराम सत् अस्त्र से प्रभा-

वित हो गया और सावधानतापूर्वक सिर उठा कर संतोष देव की ओर देखने लगा।

तब संतोषदेव उच्चस्वर में बोले कि मनीराम तुम लोभासुर के तामस अस्त्र द्वारा प्रभावित होगए थे। उसने तुमको अपना लिया था इसमें तुम्हारा दोष नहीं है। मैंने उस दुष्ट अस्त्र को सत् द्वारा दबा दिया है। अब तुम प्रकाश में देखो और समझो कि यात्री के दान की व्यवस्था तम की मिलावट से कैसी बिगाड़ दी गई है, और वह दान निंदित व हानिकारक सिद्ध कर दिया गया है। क्योंकि तामसी दान देश, काल व पात्र का कुछ भी विचार नहीं कराता, अंधाधुंध दिया जाता है। उस में अनादर व तिरस्कार भरा रहता है। ऐसा तामसी दान वास्तव में हानिकारक व निरर्थक है। इसमें धन को केवल नष्ट करना है। परन्तु इसमें दान की स्वयं कुछ भी निंदा नहीं हुई वह तमोगुण की मिलावट से निंद-नीय होगया। राजस् दान बदले की इच्छा से, फल को लक्ष्य करके दुख के साथ दिया जाता है। तामस् दान से कुछ अच्छा होने पर भी वह दान का अभिप्राय सिद्ध नहीं करता। हमारा सात्विक दान इन दोनों से भिन्न है। इसमें बदले की इच्छा नहीं होती। देश, काल तथा पात्र का विवेक पूर्ण विचार करना होता है। तुम समझो, खूब समझो, सत् के रूप को देखो, स्वच्छ प्रकाश में देखो। तुम्हारी कठिन परिश्रम की कमाई का धन इसमें नष्ट नहीं किया जा रहा है। इसका वास्तविक रूप यह है कि—

जो कोई वास्तव में पीड़ित हो, दुखी हो, असहाय हो उसको उसकी आवश्यकतानुसार सहायता करना। यह सहायता चाहे धन की हो, शरीर की हो, या केवल वाणी की। इनमें तुम अपनी धन रूपी शक्ति नष्ट नहीं कर रहे हो, किन्तु उस शक्ति-व्यय द्वारा दूरदर्शिता से अपना ही भला कर रहे हो। क्योंकि संभव हो सकता है कि घटना-चक्र में पड़ कर तुम भी पीड़ित हो जाओ। और यदि दान-निन्दकों ने धन आदि में किसी को भी सहायता न करने का रोग समाज में फैला दिया हो, तो तुम भी किसी प्रकार की सहायता की आशा नहीं कर सकते। परन्तु तुम निश्चय ही ऐसी सहायता के, जो उस समय तुम्हें कष्ट-मुक्त कर सके—अभिलाषी होते हो। फिर अन्य पीड़ित भी तुमसे सहायता पाने की आशा क्यों न करें। और तब तुम्हारा भी यह कर्त्तव्य क्यों न बन जाय कि तुमको ऐसी सहायता करना नितान्त ही आवश्यक है।

इस प्रकार तुम खूब समझ गए होगे कि तुम दूरदर्शिता से अपनी धन रूपी शक्ति नष्ट नहीं कर रहे हो, वरन देश, काल और पात्र का विचार रखते हुए परोपकार करके अपनी भावी विपत्तियों का एक प्रकार से प्रबन्ध कर रहे हो; जिनका कि घटना-चक्र में पड़ कर आ जाना असम्भव नहीं है। ऐसी दशा में जो शक्ति रखता हुआ भी दूसरे पीड़ित की सहायता करने से जी चुराता है वह घृणित दृष्टि से ही देखने योग्य है।

इस युक्ति पर कि पूर्व कर्मानुसार यदि कोई व्याधि-ग्रसित या किसी अभाव से पीड़ित कर दिया गया है, उस दंडित को सहायता पहुँचाना मानो दंडविधान में बाधा डालना है। मैं तुम से पूछता हूँ कि तुम्हारा ही पुत्र रोगशैया पर पड़ा है, तुम उसकी पूर्ण प्रयत्न के साथ चिकित्सा कराके सेवा-शुश्रूषा करते हो, क्यों करते हो? क्या वहाँ भी यह नहीं कहा जा सकता कि तुम्हारे पुत्र को दंड स्वरूप व्याधि ग्रसित कर दिया गया है। तुम कौन हो जो न्यायविधान में हस्तक्षेप करते हो और दोषी बनते हो। इतना ही नहीं, कभी तुम स्वयं रोगी होते हो, रोग से अत्यन्त व्यथित होकर अपनी चिकित्सा कराते हो, दूसरोंसे सेवा कराते हो, यह सब क्यों? क्या तुम भी अपने किसी पूर्व अपराध पर दंडित नहीं किए गए? न्याय कहता है कि तुम अपने शरीर को—मन को दंड भोगने दो, अपनी चिकित्सा या सेवा कराना तुम्हारे लिए उसी भाँति अपराध होगा, जिस भाँति तुम उस अन्य पीड़ित के लिए समझ रहे हो। तुम समझ सकते हो कि तुम अपने पुत्र से प्रेम करते हो, इसलिए उसको नीरोग करना चाहते हो, पर इसमें तुम्हारा न्यायपक्ष गिर गया। न्यायदेव अपना-बिराना देखना नहीं चाहते।

तुम कहोगे कि मैं अपने शरीर को, निज पुत्र को नीरोग कर के अपना कल्याण करूँगा, तो क्या तुम्हारा कल्याण दूसरों की सहायता करने में नहीं है? यदि दूरदर्शिता की दृष्टि से इस पर ध्यान दोगे तो समझ में आ जायगा कि अवश्य है। क्योंकि

तुम्हारे सुख का गठबंधन केवल तुम्हारे कुटुम्ब के ही संग नहीं है, वरन् वह समाज, देश, एवम् प्राणी मात्र से है। यदि तुम केवल अपने या अपने कुटुम्ब के सुख का ही ध्यान रक्खोगे, तो कदापि सुखी नहीं रह सकते। इस गठबंधन का कोई तोड़ नहीं है। इसका नियम अटूट है। उन सब के सुख के साथ तुम्हारा सुख ऐसे मिला हुआ है, जैसे शरीर के एक अंग के पीड़ित होने पर शेष अंग स्वयं ही विकल हो उठते हैं। इस बात को तुम अपने तत्कालीन सुख के सामने समझ नहीं पाते, इसी कारण दूसरों की ओर देखते तक नहीं। यह गठबंधन समाज या देश तक के साथ ही नहीं है वरन् प्राणी मात्र के साथ है। फिर चाहे वह प्राणी किसी समाज या देश का क्यों न हो।

अकस्मात् मनीराम ने वहाँ पर एक दृश्य देखा, कि एक श्वपच-वधू खड़ी रो रही है। उसके समीप ही एक अनपढ़ जनेऊ धारी पाखंडी ब्राह्मण खड़ा है। वह स्त्री हाथ जोड़ कर उस ब्राह्मण से प्रार्थना कर रही है, कि महाराज मेरे मुख में दूर से थोड़ा सा जल डाल दो। इधर तो मैं कठिन शारीरिक पीड़ा से विकल हो रही हूँ, उधर मध्यान्ह काल की घोर उष्णता ने मेरे कण्ठ व तालु को ऐसा सुखा दिया है कि जिह्वा बाहर को निकली आती है। कृपा कर इस कुएँ से खींच कर दो घूँट जल मेरे मुख में डाल दो तो मेरे प्राण बच जायँ। मैं यहाँ पर असहाय हूँ। ईश्वर ने तुम्हीं को इस समय मेरी रक्षा के लिए भेजा

है। वह पाखंडी ब्राह्मण कर्कश स्वर में बोला, कि तैंने मुझे रोक कर मेरे समय और मार्ग को व्यर्थ खोटा किया। तू अस्पृश्य है। न तो मैं तुझे छू ही सकता हूँ और न अपने लोटे से तेरे मुख में जल ही डाल सकता हूँ। क्योंकि लोटे से तेरे मुख तक पानी का तार बँध जायगा, इस प्रकार मेरा लोटा, साथ ही हाथ भी तेरे मुख से छू जायगा।

उसी समय एक वेदपाठी ब्राह्मण जो कहीं को जा रहा था, यह रोमांचकारी दृश्य देख कर वहीं ठहर गया और उस पाखंडी के हाथ से डोर व लोटा छीन कर कुए से जल खींच लाया। ज्योंही वह जल उस स्त्री के पास ले जाने लगा, त्योंही वह पाखंडी ब्राह्मण क्रोधित हो उस वेदपाठी से बोला—"खबरदार, मेरे लोटे से इसे जल मत पिलाना, लोटा अशुद्ध होकर मेरे काम का न रह जायगा। मेरे पास दूसरा लोटा भी नहीं है।"

वेदपाठी ने उसकी एक न सुनी और शीघ्रता से उस स्त्री को लोटे से ही जल पिला दिया, तथा उसी जल से उसके व्रणों को भी साफ़ कर उनमें दवा लगा दी।

पाखंडी—हाय तेने मेरा लोटा अशुद्ध कर दिया और स्वयं भी अशुद्ध हो गया। अरे मूर्ख, तेरी यह कौन थी; तुझे क्या पड़ी थी जो एक अनजान स्त्री की ऐसी सेवा कर रहा है, जैसी कदाचित् अपनी सगी माता की भी न कर सके। तेरा इससे कोई सम्बन्ध भी तो नहीं है। फिर क्यों तू इस घृणित, दुर्गन्धयुक्त

रोगिणी की सेवा करके अपने को अशुद्ध कर रहा है।

वेदपाठी—इसकी सेवा करके मेरा हृदय पवित्र हो गया। और तैंने घोर अमानुषिक कर्म करके अपने हृदय को कलुषित कर लिया। जा अपना रास्ता देख, मुझे इसकी सेवा करने दे।

मनीराम ने देखा कि वही पाखंडी समीप ही एक नदी में स्नान करनें को उतरा और पग फिसल जाने से उस में डूबने लगा। तीर पर एक विदेशी चांडाल-पत्नी खड़ी थी। वह इसको डूबता देख कर जल में से उसे निकालने के लिए कूदना ही चाहती थी, कि उस वेदपाठी ने विनोद में उस चांडाल-पत्नी से कहा, कि नहीं इसको मत निकालो, इसको यदि तुम छू लोगी तो यह अपवित्र हो जायगा।

पाखंडी घबरा कर प्रार्थना करने लगा, कि नहीं मुझ को बचाओ, मैं मन्त्र पढ़ कर पवित्र हो जाऊँगा।

वे० पा०—नहीं इसको मत निकालो, यह तुम्हारे समाज या देश का कोई नहीं है, न इससे तुम्हारा कोई सम्बन्ध ही है।

पाखंडी गिड़-गिड़ा कर कहने लगा, कि दया करो, मेरे प्राण बचाओ, मैं कोई भी क्यों न होऊँ तुम्हें पुण्य होगा।

तुरन्त ही उस चांडाल-पत्नी ने जल में कूद कर उसको निकाल बाहर कर दिया। तब उस वेदपाठी ने पाखंडी को धिक्कारते हुए कहा, कि देख, निज देश की एक अछूत स्त्री की विपत्ति में सहायक होने को तू अधर्म समझता था, अब अपने प्राण संकट में

पड़ने पर एक विदेशी अछूत स्त्री द्वारा उद्धार पाने में, उसे स्पर्श करने में किंचित् भी अधर्म नहीं समझता।

मनीराम की ओर देखकर संतोपदेव ने कहा कि मनीराम तुमने यह दृश्य देखा, और समझा कि संकट के समय जैसे तुम सहायता के इच्छुक हो जाते हो, उसी प्रकार घटना चक्र में पड़ सब कोई तुम से भी सहायता प्राप्त करना चाहते हैं। फिर यही हमारा सात्विक दान है कि अभाव से पीड़ित कोई क्यों न हो, वह हमसे सहायता पाने का अधिकारी है। और शक्ति रखते हुए जो अपने मार्ग में आए हुए किसी असहाय की सहायता नहीं करता वह मनुष्यत्व से रहित हो जाता है।

कर्मों के फल वाली बात भी नितांत ही ढीली है, क्योंकि संभव है उस पीड़ित के भोग का समय पूरा हो चुका हो, और उसका उद्धार तुम्हारे ही द्वारा होने वाला हो। यदि भोग का समय पूरा नहीं हो चुका है, तो तुम्हारी लाख सहायता मिलने पर भी वह कष्ट-मुक्त नहीं हो सकता। क्योंकि दंड रूपी नियम में तुमसे अधिक शक्ति है। तुम नहीं जान सकते कि कर्मों का फल किस प्रकार भुगाया जाता है। अब तुमने खूब समझ लिया होगा कि हमारा सात्विक दान कितने ऊँचे दरजे का है। वह कदापि निंदनीय नहीं हो सकता।

घृणा

१४

तम के दब जाने से सत्य के उज्ज्वल प्रकाश में मनीराम की आँखें खुल गई थीं और उन में परिवर्तन होने लग गया था। वह अपनी भूल को स्पष्ट देखने लग गए थे, कि सहसा उनके सम्मुख एक स्त्री व एक पुरुष आकर खड़े हो गए। संतोषदेव ने उनको देखकर पूछा कि तुम दोनों कौन हो, हमारे व्यूह में किस प्रकार घुस आए।

वह पुरुष बोला, कि महाराज मैं एक दीन ब्राह्मण हूँ और यह मेरी विधवा बहन है। आपके यहाँ ब्राह्मणों के आने की रोक-टोक नहीं है, हम लोग शत्रु-दल से भाग कर चले आ रहे हैं। हम वहाँ अकस्मात् फँस गए थे। वहाँ हमारी बड़ी दुर्दशा हुई, क्योंकि वहाँ गो-ब्राह्मण का बड़ा अपमान किया जाता है। हमारी बहन पर अत्याचार करने की चेष्टा हो रही थी, परन्तु हम किसी प्रकार वहाँ से भागकर चले आए हैं। यहाँ हम आपको बधाई देने आए हैं, शत्रु बड़ी घबराहट में हैं, किंकर्तव्य विमूढ़ हो रहे हैं। उनको अपनी हार प्रत्यक्ष दीख रही है। आपका निशाना अचूक लगा है। मनीराम पर सत् का प्रभाव होते देख तम दुम दबाकर भाग गया है। इससे वे विकल हो उठे हैं।

संतोषदेव ने कहा कि गो-ब्राह्मण तो देवताओं के बल हैं,

हमारे बल को क्षीण करने के लिए ही तो वे उन पर अत्याचार करते हैं। खैर कुछ चिंता नहीं, मनीराम अब चेत में है। मैंने दृढ़ता से तमाख को सताख द्वारा दबा लिया है। प्रकाश ही प्रकाश हो गया है। मनीराम को शत्रु की धोखे की करतूतें सब प्रत्यक्ष हो रही हैं, इससे वे स्वार्थ-मार्ग से परहित-मार्ग पर खिंच आए हैं।

वे दोनों बोले, कि बधाई है आपको, आप हम दीनों के रक्षक हैं। आपकी जय हो, इसी में हमारा कल्याण है। अब आप चिंता न करें, हम ब्राह्मण हैं हमारा सत् ही बल है, हम भी आपकी सहायता करेंगे। आप जाकर यात्री को इस विजय की सूचना दें। मन्त्री बुद्धिप्रकाश को भी यह सुसमाचार सुनावें। हमारे रहते तम सत् का कुछ भी नहीं कर सकेगा।

संतोषदेव उनका विश्वास करके यात्री के पास चले गए कि इतने में छद्म वेशधारी ब्राह्मण ने, जो शत्रु का गुप्त सैनिक था, अपना कपट-वेश बदल दिया और सत् को एक लात मारकर नीचे गिरा दिया। उसके गिरते ही पहले रज उठा, प्रकाश छिपने लगा। तदनन्तर तम उन दोनों को दबा कर उनके ऊपर चढ़ बैठा और उसने घोर अंधकार कर दिया। इतना कर चुकने पर वह पुरुष अपनी संगिनी से बोला कि कपटासुर तो अपना काम कर चुका, अब तुम अपना काम प्रारम्भ कर दो। वह स्त्री जिसने अपना वेश बदल लिया था, बोली कि तुमने ख़ूब काम किया जो

तम को प्रबल कर दिया। अब मैं अपना काम करती हूँ। अब हमारे सरदार लोभासुर का काम बन जायगा। दुष्ट संतोपदेव ने बना बनाया काम चौपट कर दिया था। सरदार के होश उड़ गये थे। मैंने उन्हें ढाढस दिया था कि मैं रणक्षेत्र में जाकर अपना कौशल दिखाऊँगी, परन्तु तुम्हारी सहायता बिना मैं यह काम पूरा नहीं कर सकती थी। अब देखें संतोपदेव मुझ घृणासुरी का कौतुक, कि मैं उनको कैसा छकाती हूँ। सत् तो छिप ही गया अब मनीराम कहाँ जा सकता है।

इतना कहकर वह मनीराम के पास पहुँची और बोली, कि वाह मनीराम वाह, तुम तो बड़ी जल्दी फिसल पड़ते हो। तुमने संतोपदेव की बातों पर भली भाँति विचार भी नहीं किया और उनकी चिकनी-चुपड़ी बातों में आ गए। हाय-हाय संतोपदेव तुमको क्या सिखा रहे थे कि कोई कैसा ही घृणित, सड़ा हुआ, सारा शरीर लोहू-पीब से सना हुआ, दुर्गन्धयुक्त क्यों न हो, अपनपे को भूलकर तुम्हें उसकी सेवा में लग ही जाना चाहिए। वाह रे परहित ! जोर का महामारी विसूचिका रोग फैल रहा हो, मनुष्य बुरी तरह से उसके आखेट बन रहे हों, कि जिन के संसर्ग से हम भी उन्हीं व्याधियों में ग्रसित होकर अपना जीवन खो सकते हैं, पर कुछ चिंता नहीं अपनपे को भूलकर उनकी सेवा में लग जाओ ! उनके रुधिर-पीब भरे व्रणों को धोओ, उनके मूत्र-पुरीप को हाथ से साफ़ करो। हाय तुम्हारा कंचन-सा शरीर,

जिसपर कि चंदन आदि सुगंधित द्रव्यों का लेपन हो रहा है, जो नाना प्रकार की सुगंधों से बस रहा है, जिससे निकल कर सुगंध कोसों तक अपनी सुवास फैला रही है, वही शरीर, वे ही कोमल-कोमल कमल-कर जाकर उन दुर्गन्ध से भरे शरीरों की, जो जन्म जन्मांतरों की कुवासों से घृणित हो रहे हैं, जिनके पास खड़े होने से नाक सड़ी जाती है, जी मिचलाता है, वमन हुई जाती है, जिनके वस्त्रों से ऐसी बुरी भभक उठ रही है, कि उससे विसूचिका रोग हो जाना कुछ भी आश्चर्य जनक नहीं है—सफाई करे और उनको प्यार करे।

क्या मतीराम तुम उनकी सेवा कर सकोगे, उनके व्रणों को साफ़ कर सकोगे। नहीं-नहीं ऐसे पुरुषों को प्यार करना, गले से लगाना तुम्हारा कर्त्तव्य होगा। सम्हलो, मतीराम सम्हलो, यह मायापुरी विचित्र नगरी है। यहाँ तुमको ऐसे-ऐसे जघन्य-जीव मिलेंगे, जिनकी सेवा करना तो दूर उनके पास खड़े होना भी तुम सरीखे कोमलाङ्ग अमीरों के लिए मेरी समझ में कठिन ही नहीं नितांत असंभव है। तुम्हारी शक्ति से बाहर है। फिर जो बात तुम्हारी शक्ति के बाहर है, उसके चक्कर में तुम क्यों पड़ते हो। जो घृणा के योग्य हैं, उनसे घृणा करनी ही पड़ेगी, सचमुच वह पापी हैं जिनकी ऐसो घृणित दशा है। वे घृणा के पात्र हैं।

तुम ठाकुरजी के मंदिरमें बैठे हो, पुजारी हो, पूजा कररहे हो, अपने ठाकुरजी को पवित्र गंगाजल से स्नान करा रहे हो, चदंन

से सुवासित कर रहे हो, थाल भोग के लिये दिव्य-दिव्य षट्रस भोजन उनके सम्मुख धर रहे हो, नाना प्रकार के वस्त्राभूषणों से उनको अलंकृत कर रहे हो, उनके स्थान में अनेक सुरीले वाद्यों से राग-रागिनी अलाप कर प्रेम-रस उमड़ा रहे हो, ध्यान मग्न होकर स्तुति कर रहे हो, कि इतने में अचानक कहीं से एक अछूत चांडाल, लोहू, पीव, मल-मूत्र से सने हुए शरीर से दुर्गंध उड़ाता हुआ वहाँ घुस आया और चिल्लाने लगा कि मुझे बचाओ, मेरे बड़ी पीड़ा हो रही है, तो बताओ कि संतोषदेव के उपदेशानुसार उसको वहाँ आश्रय देकर उसकी सेवा करने लगोगे ? उस आनन्द को त्याग दोगे । मंदिर को अपवित्र करके ठाकुरजी को अप्रसन्न कर लोगे या उस अनधिकारी घृणित अछूत को दंड प्रहार करके निकाल दोगे । सेवा करना काम शूद्रों का है । अपना-अपना धर्म सबको पालना चाहिये । ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य सेवक नहीं हो सकते । सेवा करने से वे नीचे गिर जाते हैं । शूद्र अंत्यज आदि नीच हैं, वे घृणित दृष्टि से देखे ही जाने चाहियें । सो मनीराम तुम इन ढकोसलों में मत पड़ो, ये देव तुमको चौपट कर देंगे । खूब समझ लो, बुद्धिमान् को इशारा काफ़ी है, ज़ियादा क्या कहूँ ।

मनीराम की उस समय शोचनीय दशा हो गई । विवेकानन्द की सत्संगति पाकर जो मनीराम यात्री के सम्मुख प्रण कर चुके थे, कि वे सन्मार्ग पर चल कर शत्रु के बहकाने में कभी नहीं

आवेंगे, वे ही निंदासुरी व चुगलासुर की चाल भरी युक्तियाँ, नहीं-नहीं—उनके तमोगुणी वायुमंडल में स्नान करने से एक दम प्रभावित होकर फिसल पड़े, यहाँ तक कि लोभासुर के पास स्वतः ही पहुँच गये। फिर क्या कहना, तमोगुणी समुद्र में खूब डुबकियाँ लगाईं। सारे शरीर में उसका दूषित विष फैल गया। उनकी वह पतित दशा देख कर संतोषदेव आदि देवों ने उनको दर्शन दिये, दबे हुए सत् को उठाया, प्रकाश कर दिया जिससे मनीराम की आँखें खुल गईं। यहाँ पर सत् वहाँ से कहीं चला नहीं गया था। वह बेचारा दबा पड़ा था। सत्संगति के प्रभाव से बलवान् होकर उछल पड़ा और उसने तम को दबा लिया। बस फिर क्या था, स्थिति बदलते देर नहीं लगी। पवित्र सतोगुणी गंगा-सागर में स्नान करने से मनीराम का सारा तामस-विष बह गया। हृदय में सद्-भावों की लहरें उठने लगीं। शत्रु निरर्थक व निकम्मे जचने लगे। परन्तु विश्वासघात करके कुचक्रियों ने पुनः उनको साधु-संगति से वंचित कर दिया। उसे पवित्र भागीरथी के स्नान से दूर खींच कर मैले-कुचैले, कीचड़ भरे जल में पटक दिया। वे फिर लगे उसी मैले जल में स्नान करने। बहुरूपिया कपटासुर व घृणासुरी की कुसंगति ने तामस-विषैला वायुमंडल पुनः उपस्थित कर दिया। फल यह हुआ कि फिर तामस रंग में रँगे जाने लगे। नेत्रों पर तामस-चश्मा लगा दिया गया, उसी रूप को निज

रूप देखने लगे, गिरगिट की भाँति रंग बदलने लगे। कठपुतली की भाँति स्व स्व गुणानुरूप नाच नचाये जाने लगे। घड़ी-घड़ी में परिवर्तन होने लगा। कभी इधर तो कभी उधर, यह दशा होने लगी। लड़ाई की भीषणता भयंकर रूप धारण करने लगी। खूब खींचातानी होने लगी। बुद्धिप्रकाश ने मनीराम की जब यह दुर्दशा देखी तो सेनापति संतोषदेव से प्रार्थना की, कि महाराज हमारे मनीराम की शोचनीय दशा हो रही है, कृपया उनका शीघ्र उद्धार कीजिये; नहीं तो अनर्थ हो जायगा।

संतोषदेव बोले कि चिंता मत करो, शत्रु को नष्ट करने के लिये अधर्म व विश्वासघात ही यथेष्ट हैं। वे उनके ही चलाए हुए अस्त्र उनका ही प्रतिघात करेंगे। मैं अभी सत्‌देव के साथ वहाँ पहुँचता हूँ। धर्मदेव भी साथ में हैं, न्यायदेव तो हमारे आगे ही आगे चलते हैं। असुरों में इतनी शक्ति नहीं है कि वे हमारे सम्मुख ठहर सकें।

सेनापति समेत यह दल स्वार्थ-मार्ग के समीप मनीराम के निकट पहुँचा, तो उन्हें शोच-सागर में डूबा हुआ पाया। तुरन्त ही उन पर निश्चितता रूपी पुष्पों की वर्षा की। वे सचेत होकर सम्मुख देखने लगे। देखा कि देव खड़े हैं, सत् का प्रकाश होने लगा है और तम भयभीत हो रहा है।

संतोषदेव ने कहा कि मनीराम, हमारी अनुपस्थिति में शत्रु का प्रभाव तुम पर फिर पड़ गया। तुम इतने ढीले क्यों रहते हो?

क्या चेतनदास तुमको चेताते नहीं रहते? क्या बुद्धिप्रकाश अपना निर्णय नहीं बताते रहते हैं, कि शत्रु के धोखे में मत आओ? इसमें तुम्हारा भला नहीं है, परन्तु तुम गोता खा ही जाते हो। घृणासुरी ने घृणा का ऐसा चित्र तुम्हारे नेत्रों के सामने खींचा कि तुम चक्कर में आ ही तो गए। सोचो, फिर सोचो। जो अपना हित नहीं चाहते उनकी मीठी-मीठी बातों में केवल धोखा नहीं तो क्या है? तुमको जिन वस्तुओं से वह घृणा करना सिखाती है, मैं बलपूर्वक कहता हूँ कि उनसे तुमको घृणा नहीं है। क्या तुमको मल-मूत्र से घृणा है? क्या तुमको रुधिर-पीव से घृणा है? मैं कहता हूँ, नहीं है। क्योंकि वे ही जिस समय तुम्हारे स्वयं में उत्पन्न होकर प्रकट होते हैं, तुम उनसे घृणा नहीं करते। क्या नित्य-प्रति तुम अपना मल-मूत्र धोकर साफ़ नहीं करते? क्या उसको नहीं छूते? क्या रोगी होने पर रुधिर पीव से सने व्रणों को अपने हाथों से, निज नेत्रों से देखते हुए भी साफ़ करके ओषधि लेपन नहीं करते? क्या अपने किसी अंग के सड़ जाने पर उसे काट कर फेंक देते हो? उसको नीरोग करने का यत्न नहीं करते? नहीं, उसमें कितनी ही दुर्गंध क्यों न आती हो, तुम उसकी सफ़ाई या तो अपने हाथों से करते हो, या स्वजनों अथवा सेवकों से कराते हो। अकस्मात् मरुभूमि में पहुँच जाने पर, जलाभाव के कारण, जहाँ पीने को भी जल कठिनाई से मिलता है, स्नान न करने पर, वस्त्र न धुलने पर,

शरीर तथा वस्त्रों में दुर्गंध आने लगने पर क्या तुम अपने को घृणा की दृष्टि से देखने लगते हो? अपने को नीच व जघन्य समझने लगते हो। कदापि नहीं, अपने को ज्यों का त्यों समझते हो। यदि रोग-शैया पर पड़ जाने पर अपना मल-मूत्र व दुर्गंध-युक्त व्रणों की सफाई स्वजनों से या सेवकों से कराते हो तो क्या कभी उनको घृणित व अछूत समझने लगते हो। क्या अपनी प्यारी माता को, जो शिशु अवस्था में तुम्हारे मल-मूत्र से सनी रहती है, घृणा की दृष्टि से देखते हो, उसको स्पर्श करने से नाहीं करते हो? कदापि नहीं, कदापि नहीं, वरन् उसके अहसानों से दब कर उसकी देवता तुल्य पूजा व भक्ति करते हो, उसका चरणामृत लेते हो।

कदाचित् तुम यह कहने लगो, कि वे तो अपने हैं, अपने हितू हैं, शरीर भी अपना है। तो क्या अपनों के हाथों से छुए जाने पर घृणित पदार्थों का रूप बदल जाता है? क्या उनमें दुर्गंध के स्थान में सुगंध आ जाती है? यदि नहीं, तो कहना पड़ेगा कि घृणा पदार्थों से नहीं है, किन्तु बिरानों से है। घृणित वस्तुएँ यदि अपने, स्वजन, या अपने सेवकों के हाथों में हैं, तो घृणित नहीं हैं, और वे ही यदि बिरानों के हाथों में हैं तो उनके संसर्ग से वे बिराने घृणित हो गए! क्या यही न्याय है? एक ही वस्तु एक के हाथ में होने से घृणित नहीं कही जा सकती, वह स्पृश्य है, और यदि दूसरे के हाथ में है तो वह घृणित होगई और वह

दूसरा अछूत हो गया। यह अपना-विराना लोभासुर का एक पैना चक्र है, जिस में पड़ कर मनुष्य अपने को चौपट कर लेता है।

तुम्हारा यह कहना कि वे तुम्हारा हित चाहते हैं, इसीलिए वे अपने हैं, व छूने के योग्य हैं पूर्व ही निरर्थक सिद्ध हो चुका है। क्योंकि अन्य भी कभी न कभी तुम्हारा हित कर सकते हैं और तुम्हारे हितू बन सकते हैं।

तुम कहते हो कि ऐसे दुर्गंधयुक्त मनुष्य के पास खड़े होने की, उसकी सेवा करने की तुम में शक्ति नहीं है, तुमसे सेवा हो नहीं सकेगी। मित्र मनीराम, स्वयं पीड़ित होने पर भी क्या अपने के पास खड़े नहीं हो सकोगे? क्या उस दूषित अंग को काट कर फेंक दोगे। जब तुमने अपनी दुर्गन्ध को सह लिया, तो तुम में सहन-शक्ति आगई; फिर क्यों नहीं अन्यों की दुर्गन्ध सहने का अभ्यास डालते हो, जिससे तुम पीड़ितों की सहायता के योग्य बन सको। और तुम्हारा यह कहना कि विसूचिका आदि के रोगी के पास जाने से तुम पर भी उस रोग का आक्रमण हो सकता है, भारी भीरुता सूचक है। क्योंकि जिस समय स्वयं तुम्हीं उन रोगों के आखेट बनते हो उस समय क्या अपनी स्त्री, माता आदि को अपनी सेवा करने को मनै कर दोगे? सेवक या वैद्य को भी अपने पास नहीं आने दोगे? और क्या बिना सेवा या चिकित्सा कराए तड़प-तड़प कर मर जाना स्वीकार कर लोगे? न्यायदेव व धर्मदेव तुम्हारे सामने खड़े हैं, बोलो क्या कहते हो।

सन्तोपदेश को सारगर्भित काट का ऐसा प्रभाव पड़ा कि मनो-राम दौड़ कर उनके चरणों में गिरने लगे। परन्तु इतने ही में न जाने कहाँ से आकर दो पुरुष उनसे बलपूर्वक चिपट गये और कहने लगे, कि भैया ठहरो, हम तुम्हारे लिए बड़ी देर से खड़े हैं। इस पागल की बक-बक तो खतम ही नहीं होती। यह हमें भूल गया है, यह हमारा पुराना यार है। छोड़ो इसकी पुरानी व निकम्मी बातों को। हमें ख़ूब गले लगाने दो बड़ा मजा आवेगा, तीनों लोक के सुख यहीं घर बैठे दिखाई पड़ने लगेंगे। छोड़ो सब झंझटों को, कहाँ की सेवा, कहाँ की टहल। न किसी की करें न किसी से करावें। हमसे ख़ूब चिपक जाओ, अपने शरीर में हमें घुस जाने दो, देखो क्या मस्ती आती है। देव लाख बकें तुम उनकी एक न सुनो।

मनीराम ने देखा कि इन दोनों के आते ही तम अपना बल लगा रहा है, निकलने की कोशिश कर रहा है। सत् ढीला पड़ने लगा है, प्रकाश छिपने लगा है: पर देव अटल खड़े हैं। उनके माथे पर चिन्ता की रेखा भी नहीं दिखलाई पड़ती। इन दोनों के चिपट जाने से मनीराम खड़े के खड़े रह गए। उनसे खड़ा भी नहीं रहा गया, बैठ गए। निद्रा-तन्द्रा सताने लगी, तम बढ़ने लगा। देव लोग बोले—मनीराम उठ कर यहाँ हमारे पास आओ, तुम्हारी क्या दशा हो रही है?

मनी०—तुम तो हमें दिखाई भी नहीं देते, और हमसे उठा

भी नहीं जाता, हमारे हाथ-पाँव सब शिथिल हो गए हैं, बड़ा आनन्द आ रहा है। ऐसा मालूम देता है मानो संसार के सारे सुख यहीं हमारे पास इकट्ठे होकर आ गए हैं। हमें पड़ा रहने दो, हम अब उठ नहीं सकते। अरे, अब तो बोलने को भी जी नहीं चाहता। तुम युद्ध में लड़ो, हमें क्या मतलब। हमें तो हाथ-पाँव हिलाने में भी कष्ट होता है। खाने को दे दोगे, खा लेंगे; पानी दे दोगे, पी लेंगे। तुम्हारी इच्छा, उठे कौन, तुम कुछ कहना चाहते हो तो तुम ही यहाँ चले आओ। जाने लोग कैसे चलते-फिरते हैं। यहाँ तो जीभ का हिलाना भी बुरा लगता है। सच कहा है—

"सिर भारी चीज़ है, इसे तकलीफ़ हो तो हो,
पर जीभ विचारी को सताना नहीं अच्छा।
मिल जाय हिन्द ख़ाक में हम काहिलों को क्या,
दुनिया नहीं अच्छी है ज़माना नहीं अच्छा।
धोती भी न पहने गर कोई ग़ैर पिन्हा दे,
उमरा को हाथ पैर हिलाना नहीं अच्छा।"

हम अमीर हैं, अमीर! वाह वा, अमीर कहीं महनत करते हैं? पाखाना जाने पर नौकरों का काम है आवदस्त लिवाना। ख़ूब कही, सेवा करो दूसरों की! क्या अमीर कहीं किसी की सेवा करते हैं? हम तो वे मुफ़्त नवाब हैं, हमारे सामने बादशाह क्या चीज़ है? हमें किसी चीज़ की इच्छा ही नहीं।

"चाह गई चिन्ता घटी मनुआँ बे परवाह।
जिनको कुछ नहीं चाहिए ते शाहन पति शाह॥"

हमें तो सन्तोष चाहिए, 'संतोषं परमं धनम्'। तुम तो सन्तोष-देव हो, सन्तोष के भण्डार हो। हमें इसी में सन्तोष है, हमें पड़ा रहने दो कष्ट मत दो। क्यों वृथा लड़ रहे हो, हमें किस बात की आवश्यकता है। लड़े वह जिसे कुछ चाहिए। तुम अपना नाम सार्थक करो, जब सन्तोषदेव हमारे पास हैं तब हमें क्या चाहिए। बदन पर कपड़े नहीं तो नंगे ही सही। खाने को जो कुछ रूखा-सूखा पेट में पड़ जाय, हमें सन्तोष है। हमें मत छेड़ो। जिसके जी में आवे सो करे। हमें दवा क्यों पिलाते हो। क्या हम रोगी हैं? जाने तुम इधर से उधर कैसे दौड़ रहे हो, क्या तुम्हें कष्ट नहीं होता? आओ तुम भी पड़ रहो, हमारे संग आनन्द लूटो, देखो आनन्द की बहार। जब संसार आनन्द ही के लिए है, और वह आनन्द बिना श्रम किए मुफ्त ही में मिल रहा है, तब उसे क्यों छोड़ते हो। यह बुद्धिमानी नहीं है। जाओ सब यहाँ से हमें पड़ा रहने दो, हमें मत छेड़ो।"

उद्योग

१५

संतोषदेव ने बुद्धिप्रकाश से कहा कि लोभासुर का यह निशाना अचूक लगा है। मनीराम की नस-नस में आलस्य तथा प्रमाद भर गया है। अब वह किसी काम का नहीं रहगया, उसमें नपुंसकता तथा अकर्मण्यता आगई है। उसके जीवन का सार जो पुँस्त्व था, वह न जाने किधर उड़ गया। वह चैतन्य युक्त शरीरधारी होने पर भी मृतक के समान पड़ा है। बड़ी विकट लड़ाई हो रही है। प्रत्येक असुर अपना पूर्ण बल लगा कर लड़ रहा है। मनीराम इधर परहित मार्ग पर खींचे जाते हैं, उधर स्वार्थ-मार्ग से तुरन्त ही पैना आँकड़ेदार फंदा फैंका जाता है, जिसमें फँस विवश होकर उधर खिंचे चले जाते हैं। वायुमंडल सतोगुणी बनाया जाता है, उसमें स्नान करने से ज्योंही उनपर ज्ञान व प्रकाश का प्रभाव पड़ने लगता है, तुरन्त ही किसी असुर प्रेरित तमोगुण का ऐसा झोंका आता है, कि मनीराम उड़े चले जाते हैं। पता नहीं चलता किधर उड़ गये।

बुद्धि०—तो क्या महाराज इससे यह समझ लिया जाय, कि मनीराम को उधर से बचाने की हमारे पास कोई रोक ही नहीं है। क्या देव-बल असुर-बल के सामने गिरा हुआ है।

संतोष०—नहीं यह बात नहीं है। स्थाई बल तो हमारा ही है.

परन्तु बात यह है कि मनीराम एक दीर्घ काल से तमोगुणी रँग में रँग रहे हैं। यात्री को दीर्घकाल से कोई ऐसा सत्संग प्राप्त नहीं हो सका था, जिससे दबा हुआ सत् उभर पाता। तम की प्रबलता से रूपराम आदि के उपस्थित किए हुए पदार्थों में मिथ्या सुख ढूँढते रहे, परन्तु वे सब पदार्थ उनको दुख ही देते रहे। अनेक दुख भोगने पर उनको तीव्र जिज्ञासा उत्पन्न हुई, जिसका फल ध्यानानंद द्वारा विवेकानन्द का सत्संग हुआ। उस सत्संगके प्रभावसे सत् को उभरने का अवकाश मिला, जिससे यात्री सम्हल गए। तुम्हारी बुद्धि भी सतोगुणी बन गई, परन्तु मनीराम पर सत् अपना विशेष प्रभाव नहीं डाल सका। उसको उनपर अधिक बल लगाना पड़ता था, क्योंकि उनपर तम का गहरा रंग चढ़ रहा था। उधर तम को अधिक बल नहीं लगाना पड़ा, क्योंकि वह तो उनमें पहले ही से अधिकता से था। यही कारण है कि तुमको तम की प्रबलता से असुर बलवान् दीख रहे हैं। पर वास्तव में असुरों का बल अस्थाई है। वह एक दम जोश में आकर नदी के वेग के समान शीघ्र निकल जाता है। हमारा बल स्थायी है, वह धीरे-धीरे स्थिरता लाता हुआ काम करता है और दीर्घ काल तक ठहरता है। हम लोग निर्बल नहीं हैं; पर हमें मनीराम को उचित मार्ग पर लाने के लिए अधिक श्रम करना पड़ रहा है। हमको विश्वास है कि जब तक यात्री व तुम विवेकानन्द का सत्संग नहीं छोड़ते तब तक हम कभी पराजित नहीं होंगे।

समय चाहे कितना ही लग जाय, एक न एक दिन स्थायी रूप से हम मनीराम को परहित-मार्ग पर ले ही आवेंगे। तुम भविष्य-दर्शी नहीं हो, इस कारण घबराते हो। हम लोग दूरदर्शिता से भविष्य का ज्ञान रखते हैं और समझते हैं कि विश्वव्यापी नियम कभी मिथ्या नहीं हो सकते। जैसे एक ज्योतिषी गणित द्वारा भविष्य को प्रत्यक्ष कर लेता है, उसी प्रकार संसार की प्रत्येक वस्तु के स्वभाव को मनन करने वाला भी घटनाओं पर दृष्टि रख कर किसी भी वस्तु के भविष्य को प्रत्यक्ष कर सकता है।

बुद्धि०—कृपा करके स्पष्ट समझाइए कि किस प्रकार मनीराम उचित मार्ग पर आजायगा। क्योंकि इधर तो उसका स्वभाव ही हठीला है, उधर उस पर असुर-प्रभाव पूर्ण रूपेण पड़ रहा है।

संतो०—हमने अनुभव किया है कि मनीराम में जिस भाँति के भाव भरे जायँगे, वह तदनुरूप होता चला जायगा। एक समय था कि यात्री की असावधानी से दीर्घ काल तक उसमें तामस भाव भरते गए, वह वैसे ही भावों वाला होता गया। सात्विक भावों का उसमें अभाव रहा। अब एक बार भी उसमें सात्विक भाव भरा देख कर हमको विश्वास हुआ कि उस तामस-समुद्र में से एक बूँद तो न्यून हुई। कुछ न्यून से न्यून तो हल चल हुई। यहीं से सफलता का सूत्र पात्र हुआ। इस युद्ध में कई बार हमने देखा है कि मनीराम में सत् प्रबल हुआ है, उसमें सात्विक भाव भरे गए हैं। जहाँ पर सात्विक

भावों का एक दम अभाव था, वहाँ इतनी बार उनका भरा जाना तामस भावों को न्यून करता चला जा रहा है।-यद्यपि उनकी प्रबलता से सात्विक भाव दब जाते हैं, तथापि वे मनीराम में क्रमशः स्थान तो पाते चले जा रहे हैं। और निज स्वभानुकूल वह उनको अपनाता तो जारहा है। यही सफलता की कुञ्जी है, यही सफलता का रहस्य है, कि हम देव बारम्बार उसमें सात्विक भावों को भरते रह कर एक दिन प्रतिकूल भावों को बिल्कुल निर्बल कर देंगे। फिर जैसे अब तामस भावों की प्रबलता से सात्विक भाव शीघ्र हट जाते हैं, उसी प्रकार जब सात्विक भाव उसमें प्रबल हो जायँगे वे भी तामस भावों को शीघ्र हटा सकेंगे। और लगातार प्रयत्न करते रहने से एक दिन उसमें सात्विक भावों का समुद्र भर जायगा। फिर तामस भावों का पता भी न चलेगा। मनीराम के इस प्रकार के स्वभाव को मनन कर लेने से ही हमको दृढ़ विश्वास हो गया है, कि मनीराम धीरे-धीरे हमारे वश में आते जारहे हैं। उनका यह आशाजनक भविष्य हमारी दृष्टि के सम्मुख है। उनके ऊपर इस समय आलस्यासुर व प्रमादासुर का आक्रमण हो रहा है सही, पर हमारे पूर्व के भरे हुए भाव कहीं चले नहीं गये हैं। वे यथा समय सामने आ जायँगे। चलो मनीराम के पास, उन असुरों का सामना हमारे मित्र उद्योगदेव करेंगे। हमें किंचित् भी निराशा नहीं है, वरन् छिपी हुई सफलता देखकर परम प्रसन्नता है।

भूला यात्री

उसी समय वह मित्रों सहित वहाँ पहुँचे, जहाँ मनीराम सब अंगों को ढीला किये हुए शिथिल पड़े थे। तम प्रबल हो रहा था, सत्व रज दबे थे। जम्हाई पर जम्हाई ले रहे थे और निद्रा-तंद्रा सता रही थीं। वह उसी में आनंद अनुभव कर रहे थे। यह दशा देख कर संतोषदेव ने एक विषैला कीट उनके ऊपर छोड़ दिया। उस कीट ने उनको काट लिया जिससे उनके घोर पीड़ा होने लगी। सारी निद्रा-तन्द्रा भाग खड़ी हुईं। आलस्यासुर भी प्रमादासुर सहित उसी समय नौ-दो ग्यारह हुआ। तम को दबा कर रज ऊपर आया, उसका प्रभाव होते ही वह उठ बैठे। हाय-हाय करने लगे। विषनाशक ओषधि खोजने लगे। उद्योग देव ने पूछा, कि क्या हुआ। बोले बड़ी पीड़ा हो रही है, कोई ओषधि दीजिये। उन्होंने कहा सामने जंगल में से अमुक रूखड़ी तोड़ लाओ। मनीराम तुरन्त ही दौड़े और उस रूखड़ी को ले आये। मनीराम ही से पिसवा कर उसको तैयार कराया गया, उन्हीं के हाथों से लेपन कराया गया, जिससे पीड़ा दूर होगई।

इस प्रकार आलस्यासुर को भगा कर उद्योगदेव ने उनको उद्योगशील बना लिया। तब सन्तोष देव ने पूछा कि मनीराम अब क्या हाल है?

मनी०—अच्छा हूँ।

संतो०—तुम किसकी कृपा से अच्छे हुए? देखा जब इन उद्योग देव ने कृपा की तब ही तुम अच्छे हुए। क्या आलस्यासुर

में शक्ति थी कि वह तुम्हारे दुख को दूर कर देता? तुमको जानना चाहिए, कि इस संसार में पग-पग पर उद्योगदेव की सहायता की आवश्यकता है। इनकी सहायता के बिना एक क्षण भी निर्वाह नहीं है। हम देख रहे थे, कि आलस्यासुर तुम्हारा मित्र बन रहा है, फिर संकट के समय तुम्हें छोड़ कर क्यों भाग गया। क्या मित्र का यही धर्म है? उद्योग देव ने दयापूर्वक तुम्हारा दुख दूर कर दिया, अब कहो, कि तुम्हारे हितू देव हैं कि असुर।

तुम जो कहते थे कि हमें पड़ा रहने दो, कोई भोजन पानी दे देगा तो खा-पी लेंगे, तुम्हारी यह बात झूँठी है। उद्योग-हीन को कोई कब तक भोजन-पानी देगा। जब तक मिल रहा है तब तक तुम आलस्य में भरे पड़े हो, उसी को आनन्द मान रहे हो। कदाचित् किसी ने भी तुम को भोजन-पानी न दिया, तो एक दिन भूखे प्यासे पड़े रहोगे, दो-तीन दिन पड़े रहोगे, आखिर कब तक पड़े रहोगे? जिस समय क्षुधा-पिपासा की तीव्रवेदना तुमको असह्य हो जायगी, तुम्हारा तामस आनन्द कपूर वत् उड़ जायगा, और इसी कीट-दंशन-पीड़ा के समान उस दुख को भी अनुभव करते हुए भागते फिरोगे। अन्त में उद्योग देव ही की शरण लेनी पड़ेगी, आलस्यासुर तुम्हें अँगूठा दिखा कर भाग जायगा। पूर्व उद्योग-हीन होने से भीख माँगनी पड़ेगी। भीख भी नहीं मिलेगी, क्यों कि आलसियों पर लोग कम दया करते हैं, तो फिर श्रम करना पड़ेगा। पूर्व अभ्यास न होने से उस समय का श्रम अत्यन्त दुख-

दायी मालूम होगा। इस प्रकार उद्योग देव ही तुम्हें रोटी का टुकड़ा दिलावेंगे, तब कहीं जाकर चैन पड़ेगा। और यदि तुम इन उद्योगदेव से मित्रता रख कर आलस्यासुर से घृणा करते रहोगे, तो तुम्हें वह आनन्द मिलेगा कि जिसकी तामस आनन्द समता नहीं कर सकता। क्यों कि शरीर में से आलस्य-विष निकल जाने से, तुम्हारी रग-रग में स्फूर्ति आ जाने से, तुम स्वयं अनुभव करने लगोगे कि यह राजस सुख उस तामस सुख की अपेक्षा कितना अच्छा है। और जिस समय तुम्हारे सारे शरीर में ज्ञान व प्रकाश छा जायगा, उस समय उस सात्विक सुख की तुलना कोई भी सुख न कर सकेगा। ये असुर तुम्हारे सच्चे सात्विक सुख को प्रतिकूल बना के उसमें मोह, आलस्य, तथा प्रमाद भर देते हैं, जिससे तुम्हारा वास्तविक सुख मिट्टी में मिल जाता है। हमारे ज्ञान के बीच में पड़ कर तुमको प्रतिकूल ज्ञान का अनुभव कराया करते हैं। तुम्हारे दैवी गुणों के बीच में कूद कर उनको इतना दुर्गुणों से मिला देते हैं, कि जो सद्गुण आनन्द की वर्षा करने वाले थे वे ही गुण हालाहल उगलने लगते हैं। असुर जब देखते हैं कि उनका काम आसुरी गुणों से नहीं चलता, तब वे धोखा देकर हमारे दैवी गुणों में आ कूदते हैं। अपने संसर्ग से उनका प्रतिकूल रूप बना के तुमको विचलित कर देते हैं। जिससे तुम्हें दैवी गुणों से घृणा होने लगती है। तब वे तुम्हें अपने दुर्गुणों में घसीट कर ले जाते हैं।

तुमने देखा था कि असुरों ने हमारे परहित गुण में अपनी कपट चातुरी से कैसा तामस-विप मिला दिया था, जिससे तुम एक दम बहक गए, और परहित गुण से घृणा करने लग गए। इन असुरों ने मुझे भी नहीं छोड़ा। तुम्हारे सामने मेरे विपय में कैसी-कैसी अनर्गल बातें बकी हैं, कि जिन्हें सुन कर तुम क्या, बड़े-बड़े चतुर भी मेरे सम्बन्ध में धोखा खा जाते हैं। आलस्या-सुर ने मुझे अपना यार ही बना डाला। प्रयोजन यह है कि मेरा गुण संतोप मनुष्य को आलसी तथा कायर बना डालता है! हा देव, इन असुरों ने मुझे भी राक्षस बना डाला। असुरों ने अपना सबसे बुरा अवगुण आलस्य—जो मनुष्य को अकर्मण्य, नपुंसक व निकम्मा बनाकर उसको उसके सारे ऐहिक व पार-लौकिक सुखों से वंचित करने वाला है—मेरे संतोप गुण में मिला कर लोगों को ऐसा बहकाया है कि संतोप गुण में उनको अवगुण दीखने लगा। मैं इसलिए उसका यार हूँ कि मेरा गुण संतोप व उसका अवगुण आलस्य एक रूप होकर हम दोनों गुणियों को समान गुण वाला बना रहा है! बहुत ठीक, चलो छुट्टी हुई, फिर देवासुर-संग्राम कैसा, मित्रों में फिर लड़ाई कैसी ?

मनीराम, समझते हो इनकी चाल को ? ये असुर कैसी बिज-भक्को फैलाते हैं, कैसे नए-नए रंग बदलते हैं। तुम्हें उल्लू बना कर वश में करना चाहते हैं। पर तुम क्या चेतनदास व बुद्धिप्रकाश से सलाह नहीं ले सकते। ये क्या तुम्हारे कोई नहीं हैं। क्या

तुमको यह ज्ञात नहीं है, कि देव व असुर त्रिकाल में भी एक हुए हैं? देवासुर-संग्राम सदा रहा है, और सदा रहेगा। उनके दुर्गुणों का हमारे सद्गुणों में कैसे समावेश हो सकता है। वे हम से कैसे मेल खा सकते हैं। क्या हमारा संतोष गुण कभी किसी को उद्योगहीन बना सकता है? तुम इस युद्ध में बराबर देख रहे हो, कि मैं उद्योगदेव को संग लेकर उनके पीछे-पीछे चलता हूँ। जहाँ कहीं जाता हूँ इनको आगे कर लेता हूँ। मैं इनका संग कदापि नहीं छोड़ सकता। ये मेरी दूसरी भुजा हैं। फिर मेरे संतोषगुण में आलस्य-विष कैसे मिल सकता है। मेरे संतोष गुण में आलस्य अवगुण को मिला देने की कपट चातुरी क्या तुम्हारी समझ में अब भी नहीं बैठती।

मनीराम चेतो, मेरी अंतिम दो बातें, जिन पर कि आज के युद्ध का जय पराजय निर्भर है, ध्यानपूर्वक सुन लो; और निश्चय करलो कि तुम्हारे हितू देव हैं या असुर। तुम फिर किधर जाओगे। क्योंकि लोभासुर के पास अब और कोई अस्त्र नहीं है। जब उसका और कोई वश नहीं चला था, तब अंत में उसने तुमको निकम्मा बना कर देवों के काम का नहीं रख छोड़ना चाहा था। पर उसकी वह इच्छा पूर्ण नहीं हुई, तुमको उद्योगदेव की महिमा प्रत्यक्ष करके दिखा दी गई। अब तुम नेत्र खोल कर मेरा सच्चा रूप देख लो, जिससे तुम्हें फिर धोखा न रहे। सत् का उज्ज्वल प्रकाश फैल रहा है, उसमें देखो कि मैं कौन हूँ, मेरा यथार्थ रूप

कैसा है, मैं और उद्योगदेव दोनों किस प्रकार एक हो रहे हैं।

इस मायापुरी के रचयिता ने इस को क्रिया शील बनाया है। यहाँ का कोई भी पदार्थ अकर्मण्य नहीं दिखाई देता। विशेष कर चैतन्य में यह बात प्रत्यक्ष दिखाई देती है। यहाँ कोई क्षण भर भी निश्चेष्ट नहीं रह सकता। जो कोई वस्तु कर्म करना छोड़ देती है, वह गल सड़ कर नष्ट हो जाती है। दृष्टांत के लिए एक नवजात शिशु को देखो, वह निपट अबोध होने पर भी, भूमि पर पड़ने के साथ ही हाथ पाँव हिलाने लगता है। शरीर में गति होने लगती है। वहाँ कोई उसको सिखाने नहीं आता। सृष्टि के अटूट व अतर्क्य नियम से विवश हुआ वह स्वतः ही चेष्टा करने लगता है। दैवात् उस समय वह चेष्टा हीन दिखाई पड़ने लगे तो लोग समझने लगते हैं कि उसमें जीवन नहीं है, या उसका जीवन नष्ट होना चाहता है। इन उद्योगदेव की ही प्रेरणा से सब जीव-जंतु गतिवान् बनते हैं। ये ही सबको कर्मों में लगा देते हैं। किसी भी इच्छित वस्तु की प्राप्ति के लिए—चाहे वह लौकिक हो वा पारलौकिक—ये ही उसके शरीर में स्फूर्ति लाते हैं, उसको क्रियाशील बनाते हैं। बिना इनकी सहायता के कोई भी अपने कार्य में सफल नहीं हो सकता। उद्योगशील सब विघ्न बाधाओं को पार करता हुआ अन्त में सफल-मनोरथ हो जाता है। लगातार उद्योग सफलता का रूप होता है।

कभी-कभी कार्य का कर्ता अपने मार्ग में रुकावटें देख कर

घबरा जाता है। उसको अनेक असुर-आसुरी—यथा शोकासुर, चिन्तासुरी, निराशासुरी आदि आकर धर दबाते हैं। मैं उद्योग-देव के इसीलिए पीछे-पीछे रहा करता हूँ, कि कहीं पूर्वोक्त असुर वा आसुरी अपना प्रबल प्रभाव डाल कर कर्ता को उद्योग हीन न करदें, जिससे उसका उद्योग खंडित होकर वह असफल मनोरथ रह जाय। क्योंकि अखंड उद्योग ही तो सफल मनोरथ कर सकता है। उस समय मैं कर्ता में अपना सन्तोष गुण भर देता हूँ, कि इस समय जो कुछ तुम्हें मिला है, जैसी भी तुम्हारी अवस्था हुई है, उसी पर सन्तोष करो। चिन्ता मत करो। कार्य कारण के नियम से तुम इस समय इसी के योग्य थे। भय मत करो, तुम्हारे आगे का मार्ग बन्द नहीं है। शोकमत करो, शोक से तुम आगे काम करने के योग्य न रह जाओगे। मैं उस समय इन विकट राक्षसों का नाश करके उसमें शान्ति लाता हूँ। मेरे इतना कर लेने पर झट उद्योगदेव उसके सम्मुख फिर आ जाते हैं। निराशासुरी को भगा के आशा देवी निश्चिन्तता पूर्वक उसको उद्योगदेव के हवाले कर देती हैं। जहाँ-जहाँ कर्ता पर पूर्वोक्त शत्रुओं का आक्रमण होने लगता है, वहाँ-वहाँ मैं आशा-देवी द्वारा उसे उद्योगदेव के सामने करता रहता हूँ।

लोभासुर कहता रहता है—पैसे-पैसे के लिए हाय-हाय करो, न्याय अन्याय को मत देखो, उसी को जीवन-सर्वस्व समझो। सांसारिक वस्तुओं को येन-केन प्रकारेण हस्तगत करो। फिर

चाहे जो दशा हो। इसके विरुद्ध मैं समझाता रहता हूँ कि पूर्ण उद्योग के साथ न्यायपूर्वक उस समय जो मिला है उसी पर सन्तोष करो। हाय-हाय मत करो, और आगे को उद्योग जारी रक्खो। उद्योग से ही इच्छित वस्तु अवश्य पाओगे। पर उस समय प्राप्त वस्तु पर ही सन्तोष करो। उद्योग करते हुए जो कुछ भी दशा हो रही हो उस पर सन्तोष करो, क्योंकि उस समय का सन्तोष जीवन के शत्रु चिन्तासुरी आदि को खदेड़ कर भगा देता है, जिससे कर्ता आगे को उद्योग करने के योग्य बना रह कर सफल मनोरथ हो जाता है। अर्थात् उस समय केवल मैं ही दुखदाई प्राणघातक शत्रुओं से उसकी रक्षा करने वाला हूँ। मैं दुखित हृदयों को सन्तोष देकर सुखी बनाता हूँ, भयभीत रोते हुओं को हँसाता हूँ, चिन्ताग्रसित को निश्चिन्त बना कर शोकातुर निराश को आशान्वित करता हूँ। निर्धन को धनी, नहीं-नहीं, परम धनी बनाता हूँ। रोगियों को कार्य कारण का सम्बन्ध बता कर रोग ही में नीरोगता का दृश्य दिखाता हूँ। मृत हृदयों में जीवन संचार करता रहता हूँ, और वास्तव में शत्रुओं द्वारा फैलाए हुए भयंकर रोगोंके रोगियोंके लिए धन्वन्तरि वैद्य का काम करता हूँ। इतना कर लेने पर भी मैं अपने मित्र उद्योगदेव के विपरीत कभी नहीं जाता।

मनीराम, देखा तुमने मेरा उज्ज्वल स्वरूप। क्या अब भी मैं तुमको आलस्यासुर का यार जँच रहा हूँ? क्या मैं सब को
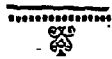
निकम्मा व कायर बनाया करता हूँ ? क्या हमारे विपरीत स्वभाव वाले राक्षस हमसे कभी मेल खा सकते हैं ? बोलो क्या कहते हो। लोभासुर के पास अब और कोई अस्त्र शेष नहीं रहा, आओ इधर परहित-मार्ग पर। सामने यात्री अपने मन्त्रियों सहित खड़े तुम्हारी बाट जोह रहे हैं। चलो, अपने स्वामी की यात्रा में बाधक मत बनो, केवल वही मार्ग उसको उसके गंतव्य स्थान पर पहुँचा सकेगा।

१६

हमारा यात्री परहित-मार्ग पर आज मनीराम को बड़ी प्रसन्नता से देख रहा है। सन्तोष देव आदि देव भी वहाँ पर उपस्थित हैं। यात्री मनीराम के मस्तक पर हाथ फेर कर प्रेम-पूर्ण वचनों से कहने लगा, कि देखो मनीराम, तुम हमारे बालक हो, मैं तुम से अधिक स्नेह रखता हूँ, तुम मेरा सर्वस्व हो। तुमको स्मरण है कि जिस समय मैं घोर निराशा में डूब रहा था, चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा दिखाई देता था, उसी समय सौभाग्य से मेरी ध्यानानन्द द्वारा विवेकानन्द से मित्रता हुई। मित्रता होने पर जो शिक्षाएँ उन्होंने हमको दीं उन पर चलने का हम लोगों ने दृढ़ संकल्प किया। सत् देव उनकी ही कृपा से हमारे सहायक हुए और उन्होंने आवश्यकतानुसार इस अंधेर नगरी में प्रकाश कर के मुझे मेरे मार्ग से परिचित करा दिया। उसी प्रकाश में मुझे अपनी भूलें भी प्रत्यक्ष होने लगी, और मैं यह भी समझ गया कि इस नगरी को पार कर के जिस गंतव्य स्थान पर पहुँचना चाहता हूँ, उसके मार्ग में ये असुर पूरे बाधक हैं। सो जब तक इनको हम अपने गढ़ से नहीं निकाल देंगे, तब तक इस नगरी को पार करना नितान्त ही कठिन है। इन देवों के सहारे हम उनको निकाल सकते हैं, परन्तु वे दुष्ट तुमको झूँठे लालच

दिखा कर बहका लेते हैं, जिस से हमको अटक जाना पड़ता है। उनको तुम्हारा सहारा मिल जाता है।

सो हे बेटे, इस अँधेरी नगरी में तुमको सदा सावधान रहना चाहिए। तुम अपने हो, विराने नहीं हो, यहाँ धोखा मत खा जाया करो। अपने विराने को पहचानते रहो। दोनों की हितकारी सलाह को ध्यान पूर्वक सुन कर उस पर विश्वास करते रहो। यद्यपि ये दीर्घकाल से गढ़ में वास करने वाले असुर, घसीट-घसीट कर निकालने पड़ेंगे, तो भी यदि तुम सावधान बने रहे तो पूर्ण आशा है कि ये अवश्य निकाल दिए जायँगे। तुमको उचित है कि इनकी बातें न सुनो, इन पर ध्यान मत दो; क्योंकि ये सब धोखेबाज हैं, विश्वास घाती हैं।

मनीराम तुम अब अबोध नहीं हो, समझदार हो। अपना हिताहित देखो। मेरी जय-पराजय सब तुम्हारे ही हाथ में है। ये शत्रु चारों ओर फैले हुए हैं, तुम इनके पास स्वार्थ-मार्ग पर मत जाओ। तुमको इधर देख कर रूपराम आदि भी तुम्हारी सेवा के लिए इधर ही भाग आवेंगे। इसमें बुद्धिप्रकाश से सलाह ले लिया करो। विवेकानन्द के विवेक पूर्ण वचनों का आदर करते रहो, यही मेरी आज्ञा है, यही मेरी शिक्षा है।

परन्तु यदि तुम इसी भाँति धोखा खाते रहोगे, तो शत्रु का बल बढ़ता रहेगा जिससे वे दृढ़ता से गढ़ में अपना आसन जमाए रहेंगे, और हम अपनी यात्रा में रुके पड़े रहेंगे। आज

हमारी जीत हो गई है, उसका कारण यही है कि हमने देवों की बात मानकर असुरों का तिरस्कार किया है। इसमें तुम्हारी प्रसंशा हुई, तुमको अपने-विराने की, हितू-अहितू की पहचान हो गई। तुम उनकी कुसंगति में कभी मत जाओ, क्योंकि उनका तुम पर ऐसा प्रभाव पड़ जाता है कि तुम शीघ्र बहक जाते हो। उनके बताए मार्ग में ही तुमको अपना हित दीखने लगता है। तुम किंचित् काल मगन हो जाते हो, जैसे रोगी बालक को कुपथ्य मिलने से उस समय अच्छा मालूम होता है, उसे वह अमृत तुल्य जान पड़ता है। परन्तु जब वह उसका परिणाम भोगने लगता है तब पछताता है। उसी प्रकार तुम्हारी भी दशा हो जाती है। तुम भी उस विषमय सुख को अमृत समझ कर भोगने को तैयार हो जाते हो।

परन्तु वह तत्कालीन सुख, परिणाम में दुख स्वरूप होता है। तुम्हारे सुख में मुझे भी सुख है। जितना तुम सुखी होओगे, प्रसन्न होओगे, मैं भी प्रसन्न होऊँगा; क्योंकि केवल तुम्हीं तो मेरे सुख के कारण हो। परन्तु हाय, वहाँ सुख कहाँ? जब उस विषमय सुख का परिणाम तुम्हारे सामने आता है; जिसको तुमने अमृत समझा था, वही विष होकर जब तुम्हें जलाने लगता है; तब तुम परम दुखी होकर रोने लगते हो, और मुझे भी रुलाते हो। मैं तुम्हें उनके बताए हुए सुखों के भोगने को क्यों मनै करता हूँ, इसको बुद्धिप्रकाश ही खूब समझता है। वह सदा विवेका-

नन्द की चौकसी में रहता है। विवेकानन्द उसको इस प्रकार चेताते रहते हैं, जिस प्रकार एक कुशल वैद्य रोगी बालक को कुपथ्य से सावधान रखता है। इससे हे प्रियपुत्र तुम, असुरों की कुसंगति में भूल कर भी मत बैठो, मत उनकी लुभावनी बातों पर ध्यान दो; यही मेरा कहना है।

मनीराम अपने पितृ-तुल्य यात्री के स्नेह भरे शिक्षा-प्रद वचनों से गद्-गद् हो गये। उनके नेत्रों से आनन्दाश्रु बहने लगे। यात्री भी अन्य मन्त्रियों सहित मग्न हो रहे थे। संतोषदेव आदि उन सब पर अपना अद्भुत प्रभाव डाल रहे थे। यात्री को पूर्ण निश्चय हो रहा था कि यह परहित-मार्ग ही—जहाँ पर देवों के दर्शन होते रहते हैं, जहाँ उनकी सहायता प्राप्त होती रहती है—उन्हें उनके अभीष्ट स्थान पर पहुँचा देगा। सहसा यात्री समेत सम्पूर्ण मन्त्रियों को शुक्लवर्णा मुस्कराती हुई खड़ी दिखाई दी। उसके दर्शन मात्र से ही यात्री के गढ़ में एक ऐसी विचित्र प्रकार की लहर उठने लगी कि जिसमें उसको अद्भुत-अद्भुत रूप दिखाई देने लगे। वह मनीराम से कहने लगा, कि मनीराम देखो यहाँ कोई गुप्त देव अपने प्रबल प्रभाव से स्थिर प्रकाश फैला रहा है।

मनी०—मैं भी देख रहा हूँ।

यात्री—अरे और देखो उसी प्रकाश में कोई और अपना प्रबल प्रभाव डाल कर अप्रत्यक्ष को साक्षात् करा रहा है।

मनी०—हाँ, हाँ !

यात्री—अरे-अरे! कोई गुप्त रूप से मेरे अभीष्ट पदार्थ आनन्द की वर्षा कर रहा है। हे देव, प्रकट हो, प्रकट हो, मैं तुम्हीं को तो खोज रहा था। तुम्हारे पास ही पहुँचाना चाहता था। यह बात मुझे विवेकानन्द भली भाँति समझा चुके हैं। विवेकानन्दजी, मुझे विश्वास दीजिये कि मुझको मेरा इच्छित पदार्थ मिल गया ?

यह दृश्य एक मुहूर्त भर भी न होने पाया था, कि अकस्मात् मनीराम पर वज्र-पात हुआ। जैसे बाज चिड़िया पर झपटता है, उसी प्रकार न जाने कहाँ से आकर कृष्णवर्णा मनीराम पर झपट पड़ी और बलात् मनीराम को लोभासुर की स्मृति कराने लगी। उधर सम्पूर्ण दृश्य अपने संग लिये हुए शुक्लवर्णा वहाँ से अंतर्हित हो गई। संतोषदेव के सत्संग से वह स्मृति दब जाती थी, परन्तु घूम फिर कर वही कृष्णवर्णा उनको वही स्मृति जाग्रत करा रही थी। रंग में भंग हो गया। यात्री आदि चकित हो कर यह दृश्य देख रहे थे। यह बात संतोषदेव से छिपी नहीं रही, वे कहने लगे—हमारी जीत तो हुई पर अधूरी ही रही।

क्रोध

१७

"विवेकानन्दजी यह क्या छलावा था, जिसने आकर मेरे सुख को मिट्टी में मिला दिया। सचमुच मैं जिसकी खोज में था वही मुझको मिल गया था, पर न जाने कहाँ से वह पिशाचिनी आ कूदी, जिसके आते ही वे आनन्ददायिनी मूर्तियाँ एक दम विलीन हो गईं।" यात्री ने विवेकानन्द से बड़े दुख के साथ पूछा।

विवे०—वही डाइन तो मनीराम के पीछे पड़ी हुई है। मनीराम बिल्कुल चेत में आ गए थे, पर वह उनका पीछा सहज थोड़े ही छोड़ने वाली है।

यात्री ने देखा कि एक दूत हाथ बाँधे खड़ा है, जो कुछ कहना चाहता है। विवेकानन्द की ओर से ध्यान हटा के उससे पूछा कि तू क्या कहना चाहता है?

दूत—श्रीमान् गुप्तचरों ने खबर दी है, कि असुरों का सेनापति क्रोधासुर दल-बल सहित बढ़ा चला आ रहा है। महाराज, वह स्वार्थ-मार्ग पर आ पहुँचा है, तमासुर उसके साथ में है। मनीराम भी स्वार्थ-मार्ग पर पहुँच गए हैं।

यात्री—अरे, यह क्या हुआ! मनीराम तो मेरी उपदेश पूर्ण बात को मान कर सावधान हो गए थे, अपनी करतूतों पर बहुत पछताए थे। उन्होंने असुरों का घोर तिरस्कार किया था।

उसके कपट-जाल को वे खूब समझते थे। धन्य मनीराम, धन्य, तुम्हारी बड़ाई किस मुँह से की जाय। परन्तु आश्चर्य तो यह है कि वे अपने सुरक्षित व्यूह से निकल कर उधर पहुँच कैसे गए, उनकी ओर से मुझे एक प्रकार से निश्चिन्तता-सी हो गई थी। मुझे यह कभी आशा नहीं थी कि मनीराम इतना शीघ्र शत्रु-पक्ष में मिल जायँगे।

विवे०—उस पिशाचिनी का, जिसकी तुम अभी बात कर रहे थे, हमारे देव-दल में विद्युत्-गति से छलावे की तरह आ-कूदना ही सिद्ध करता है, कि उसने उसी समय, तुम्हारे सामने ही मनीराम पर अपना प्रभाव डाल कर उनका माथा फेर दिया था। तुम उसको नहीं पहचानते, वह दुर्दमनीय राक्षसी है। एक बार भी कहीं उसको स्थान मिल जाय, फिर भला वह क्या हटाए से भी हट सकती है! वह गिरे हुए असुरों में बल का संचार करके युद्ध जारी रखती है।

यात्री ने दूत से पूछा, कि शत्रु-सेना के और समाचार क्या हैं।

दूत—महाराज, रण-स्थल में शत्रु-सेना अग्नि की लपटें निकालती हुई, विष उगलती हुई, गढ़ को भस्म करती हुई, ऐसे वेग से उमड़ पड़ी है कि मानो इसकी कोई रोक ही नहीं है। बड़े-बड़े असुर विषधर सर्पों के समान फुफकारें छोड़ रहे हैं। भयानक सिंहों के समान दहाड़ रहे हैं। मानो रोमांचकारी प्रलय हुआ ही चाहती है। चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गई है। लोग

कह रहे हैं यह बड़वानल कहाँ से आ गया। सूर्य का आतप, और अग्नि की उष्णता तो सही जा सकती है, परन्तु यह भीतर ही भीतर धधकने वाली, गढ़ को भस्म कर देने वाली गुप्त अग्नि नहीं सही जा सकती।

महाराज, मनीराम की दशा विक्षिप्तों जैसी हो रही है। अपना-अपना बल दिखाते हुए द्रोहासुर, क्रूरासुर, कुटिलासुर, परअपकारासुर, फूटासुर, कपटासुर, ईर्ष्यासुरी व हत्यासुरी आदि असुर असुरी उनके सामने ताण्डव नृत्य कर रहे हैं। क्रोधासुर तो मानो उनके ऊपर चढ़ बैठा है, अपना पूर्ण प्रभाव डाल चुका है। यह सब समाचार मुझे गुप्तचरों ने आकर सुनाया है।

यात्री ने विवेकानन्द से हाथ जोड़ कर निवेदन किया, कि हे मेरे गढ़-रक्षक, संकटमोचन मैं आपको बारम्बार नमस्कार करता हूँ। कृपा कर गढ़ की रक्षा कीजिए। प्रचंड प्रलयकारिणी आँधी आई है। इस प्रचंड बड़वानल में सब गढ़वासी भस्म होना चाहते हैं। हमारा मनीराम फिर फँस गया है। आप शक्तिमान् हैं, समर्थ हैं, कृपया उसका शीघ्र उद्धार कीजिए।

विवे०—मित्र घबराओ नहीं, यद्यपि मैं मनीराम की चौकसी कर रहा था, तथापि वह विद्युत्-गति वाला मनीराम, चंचलता के कारण, मालूम देता है कि किसी कौतूहल-वश स्वार्थ-मार्ग पर पहुँच गया है; और क्रोधासुर जो इसी ताक में बैठा था उसे देव-संगति से वञ्चित पाकर उस पर अपना पूर्ण आधिपत्य जमा

बैठा है। कुछ चिंता नहीं, न्यायदेव की आज्ञानुसार क्षमाशील-देव सेनापति बन कर हमारी ओर से जायँगे और क्रोधासुर की भीषणता नष्ट करके मनीराम को परहित मार्ग पर खींच लावेंगे।

वह देखिए क्रोधासुर सम्मुख आ पहुँचा है। मनीराम प्रभावित हुआ बक-बक करता हुआ इधर ही आ रहा है। क्या कह रहा है!

"हमारा स्वत्व है, जन्म सिद्ध अधिकार है, उसको कोई कैसे हड़प सकता है। क्या हम नपुंसक हैं? औरों में शक्ति है तो हम भी मृतक नहीं हैं। हम भी शक्तिमान हैं, हमारा राज्य, हमारा गढ़, हमारा धन, हमारा कोष है; देखें इन सबको हम से कोई कैसे छीन सकता है। हम दिखा देंगे अपनी शक्ति को, बल को, वीर्य को और शौर्य को। हम में कमी काहे की है। छिप-छिपकर वार करना! यह चालाकी!! हमको मूर्ख समझ रक्खा है। दाँत खट्टे कर दूँगा, चबा जाऊँगा। बुद्धिप्रकाश तो निरा बुद्धू है, वह देवों की चाल को बिल्कुल नहीं समझता। मैं उसकी भी परवा नहीं करूँगा। उसकी एक न सुनूँगा। मैं मूर्ख हूँ, वे बड़े चतुर हैं! गढ़ में उन्हीं का अधिकार है, मेरा कुछ नहीं। नहीं, मेरा भी स्वत्व है, जन्मसिद्ध अधिकार है। अच्छे रहे देव, हम सब को काठ का उल्लू बना कर ख़ूब भरमा रहे हैं। मीठी-मीठी बातें बना कर हमारे हितू बनते हैं। कहा है कि 'हित की कहैं बनाय जानिए पूरो वैरी'। धन्यवाद है असुरों को, ये ही हमारे

सच्चे हितू हैं, बेचारे हमारे पीछे परेशान हो रहे हैं। हमारे लिए युद्ध कर रहे हैं। हमारे सुखों का छीना जाना उन्हें अच्छा नहीं लगता। फिर मैं उनकी न सुनूँ तो किनकी सुनूँ, खूब सलाहें देते हैं, सब कुछ छिन जाय संतोष कर लो। हमें चाहे कोई पीस डाले, हम क्षमा कर दें। हमारी चाहे जो दुर्दशा हो, यार लोग मज़े में गुलछर्रे उड़ावें। कपटनीति इसी को कहते हैं, पता चल गया उनकी चाल का। बुद्धिप्रकाश आदि भलेही उनकी बात मान लें, पर मैं तो नहीं मानने का। हम क्यों नंगे रहें, हम क्यों भूखों मरें, जिसके पास जो है उसका उपभोग वह क्यों न करे? धन हमारे पास है, हम खस की टट्टी लगवाकर, सुन्दर ठंडी पवन पंखे से खिंचवाकर सूर्यातप के दुख से बचने का प्रयत्न करेंगे, हम जेठ मास की गर्मी से क्यों फुकें। हम नाना प्रकार के पट्रस भोजन से अपनी रसनेन्द्रिय को तृप्त करेंगे, सृष्टि के विचित्र-विचित्र स्वादों का आनन्द लेंगे, हम उपवास पर उपवास करके क्यों कुढ़ें। हम अनेक प्रकार से सांसारिक सुख भोगते हुए विहार करेंगे। हम इन प्राप्त सुखों पर क्यों लात मारें? और जब सब राज-पाट, धन-धाम आदि इन संतोषदेव, उदारदेव की कृपा से खो बैठेंगे, फिर द्वार-द्वार के भिखारी बन कर मुख में मुसीका नहीं लगावेंगे तो क्या करेंगे? क्या सुन्दर शिक्षा है! अपना सब कुछ त्याग दो, तत्कालीन सुख की चिंता मत करो, उसमें विष मिला है। जितने धनवान् हैं वे सब सुख क्या भोगते हैं मानो

सदा विष-पान ही करते रहते हैं। अच्छा तो फिर विष ही सही; 'अभी तो चैन से गुज़रती है आक़बत की खुदा जाने'। और ये चैन बिना धन के मिल नहीं सकते, इसलिए हे लक्ष्मीजी, तुम मुझे मत छोड़ना। जैसे सदा कृपा करती रही हो, उसी प्रकार आगे भी करती रहना। मैं तुम्हें सुरक्षित रखने के लिए अब लोभासुर का अपमान नहीं करूँगा। क्रोधासुर को भी अपने साथ रक्खूँगा, क्योंकि उनकी सहायता के बिना मर भुक्खे लोग मुझे निर्बल समझ कर तुमको मुझसे छीन ले जायँगे। अतः जो तुम्हें छीनने का साहस करेगा उसे मैं मारडालूँगा। एक-एक को खा जाऊँगा; चबा जाऊँगा; पर तुम्हें नहीं छोड़ने का।"

पूर्वोक्त बातें जिस समय मनीराम बक रहे थे, देवों सहित बुद्धिप्रकाश ध्यानपूर्वक सुन रहे थे। वे समझे मनीराम को पुनः लोभासुर का सहारा मिला और क्रोधासुर भी उसके ऊपर चढ़ बैठा है। इसमें क्रोध-विष अधिक मात्रा में आ गया है। उसी के आवेश में हमको शत्रु समझता हुआ कुदृष्टि से देख रहा है। बुद्धिप्रकाश को भयभीत व चिंतित देख कर विवेकानन्द बोले, कि बुद्धिप्रकाश घबराओ नहीं, भय नहीं है, चिंता मत करो। भयासुर तुम्हारा वैरी है, चिन्तासुरी वैरिन है। हम नहीं समझते कि ये वैरी-वैरिन तुम्हारे पास तक कैसे पहुँच जाते हैं। हम देखते हैं कि तुम्हारे छोटे व बड़े शत्रु किसी न किसी प्रकार तुम्हारे समीप गुप्त रीति से पहुँच कर हम तक पर भी अपना प्रभाव डाल रहे हैं।

फिर तुम कैसे कहते हो कि केवल मनीराम ही शत्रु-जाल में फँसा हुआ है। वे दुष्ट तो विना अपना प्रभाव डाले तुम तक को भी नहीं छोड़ते। क्या तुम नहीं समझते हो, कि तुम यदि इनके वश में हो जाओगे तो अपनी निर्णय-शक्ति खोकर निर्बल हो जाओगे। ये शत्रु छोटे नहीं हैं। घुन के समान घुस कर धीरे-धीरे तुमको नष्ट कर सकते हैं। फल यह होगा कि मनीराम के साथ-साथ तुम भी शत्रु द्वारा पद दलित बने रहोगे।

बुद्धिप्रकाश ने लज्जित हो कर कहा—"कृपा कर मेरे पास अभयदेव तथा निश्चिंतता देवी को बुला दीजिए, जिससे मेरी इन दुष्टों से रक्षा हो सके।" उसी समय पूर्वोक्त देव-देवी ने आ कर बुद्धिप्रकाश को दर्शन दिए और उनके मस्तक पर रक्षा का हाथ फेरा। बुद्धिप्रकाश ने देखा कि उसी समय भयासुर व चिन्तासुरी, जो गुप्त रूप से उनके पीछे लग रहे थे एक दम भागने लगे। उनके भागते ही बुद्धिप्रकाश में आत्मिक बल आ गया और वे दूरदर्शिता से अपनी जय प्रत्यक्ष देखने लगे। मनीराम के उन्माद को देखकर उसकी हँसी करने लगे। उस समय का दृश्य उन्हें हेय जचने लगा। क्रोधासुर आदि अस्थाई आवेश देने वाले दिखाई पड़ने लगे, जिनका शीघ्र पतन उन्हें प्रतीत होने लगा। बुद्धिप्रकाश की यह दशा देख देव परम सन्तुष्ट हुए और मनीराम का निदान करने के लिए युद्ध में प्रवृत्त हो गए।

१८

आज हम गढ़ में एक पुरुष को, जो ढीला ढाला कुरता व पाजामा पहने, सिर पर साफा बाँधे व हाथ में मोटा सोटा लिये हुए है, एक स्थान पर खड़ा हुआ देखते हैं। वह बड़ी घबराहट से इधर-उधर देख रहा है। वह किसी की खोज में मालूम होता है, क्योंकि उसकी दृष्टि चारों ओर को घूम रही है। यकायक वह उस स्थान को छोड़ कर आगे चलने लगा और पुनः खड़ा हो गया। फिर कुछ ऊँचे-से पर दृष्टि गड़ा कर देखने लगा। थोड़ी देर खड़ा होकर उसी तरफ़ को चलने लगा जिधर उसने दृष्टि गड़ा कर देखा था। अंत में वह उस स्थान पर जा पहुँचा जहाँ पर मनीराम बैठे चेतनदास के साथ विचार सागर में डूब रहे थे। मनीराम ने ज्यों ही ऊपर को दृष्टि की तो देखा कि अद्भुत पुरुष सामने खड़ा हुआ है। तत्क्षण ही उन्होंने सशंकित होकर उस अपरिचित से प्रश्न किया कि तुम कौन हो, व किस प्रयोजन से मेरे पास आए हो?

उस अपरिचित ने हाथ जोड़ कर कहा, कि महाराज, अपराध क्षमा हो; मैं अपने मार्ग में चला जा रहा था, कि एक स्थान पर एक परम सुंदरी, नाना प्रकार के वस्त्राभूषणों से अलंकृत रमणी को बैठे व रोते देखा। मैंने कौतूहल वश उससे पूछा

कि आप कौन हैं और यहाँ एकांत में बैठी क्यों रो रही हैं। उसने उत्तर दिया कि यदि तुम मेरा एक काम कर सको तो मैं तुमसे अपना वृत्तान्त कहूँ। मैंने ढाढस देते हुए उससे कहा कि मैं यथाशक्ति आप की सहायता करूँगा।

तब उसने कहा कि "सुनो, मैं इस गढ़ में एक दीर्घ काल से वास कर रही थी। मन्त्री मनीराम मुझसे बहुत अधिक स्नेह रखते थे, मैं भी उन पर कृपादृष्टि रखती थी। परन्तु नहीं मालूम किस कारण से इस समय मन्त्रीजी ने मेरा घोर अनादर व अपमान किया है, अतः मुझे अब यह गढ़ छोड़ना पड़ रहा है। बहुत काल से स्नेह बढ़ जाने के कारण उनका स्मरण मुझे दुख दे रहा है, यही कारण है कि मैं उनके वियोग में रो रही हूँ। अब इस गढ़ को छोड़ने से पहले मेरी इच्छा एक बार उनसे मिलने की हो रही है, परन्तु मैं मानिनी हूँ, नहीं तो जाकर स्वयं उनसे मिल आती। तुम यदि किसी प्रकार एक बार उनको मेरे पास ले आओ तो मैं उनके अंतिम दर्शन करके यहाँ से प्रस्थान करूँ।" सो मन्त्रीजी, मैं किसी प्रकार लुक छिप कर यहाँ तक आपके पास आ पहुँचा हूँ, और प्रार्थना करता हूँ कि कृपा करके एक बार उस रमणी रत्न को दर्शन दे आइए।

मनी०—जिस स्त्री का तुम वर्णन कर रहे हो, मैं उसको नितांत ही नहीं जानता। नहीं समझता, फिर वह अपरिचित स्त्री ऐसा क्यों कह रही है। मैंने तो कभी किसी स्त्री से प्रेम नहीं

किया। न मैंने ऐसी कोई स्त्री इस गढ़ में कभी देखी ही है। चेतनदास क्या तुम स्मरण कर सकते हो कि यहाँ पर मेरी प्रेम-पात्र कोई रमणी है?

चे०—कभी नहीं।

मनी०—वह यहाँ से कितनी दूर पर है?

अप०—समीप ही तो है।

मनी०—अच्छा तो, मैं चलता हूँ, और देखता हूँ कि वह कौन है।

चे०—चारों ओर शत्रु मँडरा रहे हैं, तुम निष्प्रयोजन वहाँ क्यों जाते हो।

मनी०—मुझे कौतूहल हो रहा है, मुझमें इतनी शक्ति नहीं कि यह विचित्र समाचार सुन कर भी स्थिर बैठा रहूँ।

ऐसा कह कर मनीराम उस व्यक्ति के साथ हो लिए और उसी स्थान पर पहुँचे जहाँ पर वही सुन्दरी बैठी सचमुच रो रही थी। जैसा उस व्यक्ति ने कहा था, मनीराम उसको न पहचान सके। उसी समय वह व्यक्ति एक ओर ओझल हो गया और मनीराम उस स्त्री के पास अकेले रह गए।

तब मनीराम ने विनीत भाव से उस रमणी से पूछा, कि आप कौन हैं, और मुझे क्यों बुलाया है।

उस स्त्री ने मान के साथ वीणा विनिन्दित स्वर में उत्तर दिया, कि केवल आपके अन्तिम दर्शन के लिए आपको कष्ट
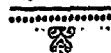
दिया है। यद्यपि मैं यहाँ से—बहुत दिनों से रहने के कारण तथा आपके स्नेह के वशीभूत हो—जाना नहीं चाहती थी; परन्तु क्योंकि आपने मेरा घोर अपमान किया है, अतः मैं अपना निरादर नहीं सह सकी और मुझे यह गढ़ छोड़ना पड़ा। पर याद रखना मनीराम, तुम अब किसी अर्थ के न रह जाओगे। द्वार-द्वार के भिखारी, कंगले बन जाओगे। तुम्हारा अब कोई भी आदर न करेगा। यह केवल मेरी ही कृपा थी कि सब कोई तुम्हारा आदर-सत्कार करते थे। तुम यहाँ पूजे जाते थे। सब सुखों के सामान मेरी बदौलत जब चाहते थे जुटा लेते थे। अब तुम्हें कोई दो कौड़ी को भी न पूछेगा। तुम्हारे सगे-सम्बन्धी ही तुम्हारा निरादर करेंगे। मैं तुम्हें रसिक समझ कर तुम्हारे पास आई थी; तुमने मुझे तुच्छ समझा, अब उसका फल भोगोगे, बस अब मुझे कुछ और नहीं कहना। मेरा अन्तिम प्रणाम है।

मनीराम उसकी बातें सुन आश्चर्य में डूबे खड़े के खड़े ही रह गए। थोड़ी देर में अपने को बहुत कुछ सम्हाल कर बोले—"श्रीमतीजी क्या आप कृपा करके मुझे अपना परिचय देंगी मैं बहुत स्मरण कर रहा हूँ कि मैंने क्या कभी आपको इस गढ़ में देखा है? आप मिथ्या थोड़े ही कह रही होंगी, मैं यह भी नहीं जानता कि मैंने कब आपका अपमान किया है; मुझको कुछ भी स्मरण नहीं होता।

उस स्त्री ने उसी समय ताली बजाई, तुरन्त ही वहाँ दो

पुरुष उपस्थित हो गए। उनमें से एक को तो मनीराम ने झट पहचान लिया, कि यह लोभासुर है। दूसरे को वह न पहचान सके। उनके आते ही उस स्त्री ने लोभासुर की ओर संकेत करके कहा, कि क्या मनीराम तुमने इन लोभासुर का अपमान नहीं किया है। ये ही तो मुझे यहाँ पर लाए थे। इन ही के सहारे मैं यहाँ पर टिकी थी। जब तुमने इनका अपमान किया, तो मेरा पहले हो चुका। इनको तुम अपने गढ़ से निकाल रहे हो, फिर भला मैं यहाँ कैसे ठहर सकती हूँ। तुम इनको अपना शत्रु मान रहे हो, इनके उपकारों को भूल गए। अच्छा अब सब वृत्तान्त इन ही के मुख से सुनो, कि मैं तुम्हारे यहाँ किस प्रकार आई और बिना इनके मैं क्योंकर नहीं रह सकती। लोभासुर, तुम इनको समझाओ ये मुझको भूल रहे हैं, यद्यपि मैं इनके यहाँ बहुत दिनों से हूँ।

लोभासुर ने एक ठंडी साँस भर कर कहा, कि मित्र मनीराम, मैं अभी तक निराश नहीं हुआ हूँ, तथापि मैं देखता हूँ कि तुम्हारे सब गढ़वासी देवों के अधीन हो गए हैं। मैंने जो कुछ तुमको समझाया था, वह तुम भली भाँति समझ गए थे, परन्तु तुम बेचारे क्या करो। तुम एक ओर, तो सब गढ़वासी एक ओर। तुम विवश हो ही जाते हो। इसमें तुम्हारा दोष नहीं है। अब सुनिए, ध्यानपूर्वक सुनिए कि देवों की कृपा से तुम सब कंगले हुआ चाहते हो। वह किस प्रकार, यह सब सुनाने ही को

तुम्हें आज यहाँ बुलाया गया है।

जिन परमनिधि को तुम अपने सम्मुख बैठा देख रहे हो, इनका नाम लक्ष्मीजी है। इनका निवास-स्थान वैकुंठ लोक है; ये विष्णु भगवान् की प्रियतमा हैं। परहित-मार्ग पर जिन देवों को तुमने बुलाया है, वे सब उन्हीं भगवान् के सेवक हैं। अब तुम समझो और चित्त में बैठाओ कि क्यों ये देव तुम्हारे यहाँ आकर, अपनी कूटनीति से हमारे विरुद्ध लड़ कर तुम्हारी सहायता कर रहे हैं। उसका कारण यही है, कि यद्यपि ये भगवान् की पत्नी हैं, तो भी स्वभाव की चंचला होने के कारण ये एक स्थान पर नहीं ठहरतीं। ये मेरा मान रखती हैं, मेरे ऊपर इनकी परम कृपा रहती है। यदि ये मेरा सहारा पा जाती हैं, तो मेरे ही प्रेम से, जहाँ मेरा वास होता है वहाँ कुछ काल ठहर जाती हैं। कुछ काल ही नहीं, जहाँ मेरा आदर सत्कार होता है, जहाँ मैं पूजा जाता हूँ, वहाँ ये निवास करने लगती हैं। चंचला होने पर भी ये मेरा संग नहीं छोड़तीं। देवों को यह बात नहीं सुहाती कि उनके स्वामी की पत्नी कहीं अन्यत्र अन्य के पास रहे। बस जहाँ मेरे द्वारा इनका प्रवेश हुआ, कि झट वहाँ उदारदेव, संतोपदेव आदि पहुँच जाते हैं और अपना पूर्ण बल लगा कर वहाँ से इनको हटाने का प्रयत्न करते हैं। अब यदि अपना भला समझ कर वह पुरुष इन देवों की सलाह नहीं मानता, मेरा तिरस्कार नहीं करता, तब तो ये वहाँ डटी रहती हैं; और यदि

वह देवों के चकमे में आ गया, मेरा अनादर करने लगा, तो य फिर वहाँ किसी भाँति भी नहीं ठहरतीं। अब तुम स्वयं देखोगे कि उनकी चाल में आकर तुम अपनी क्या दशा कर लोगे। इनके जाते ही देव तुम्हें कंगला, द्वार-द्वार का भिखारी बना कर प्रसन्न होंगे। वे तो सब बाबाजी हैं ही, उन्हें धन-धान्य का क्या करना है। अपने स्वामी की रात्रि-दिन सेवा करते हैं, हुक्म के बंदे रहते हैं, जो कुछ ठाकुरजी का प्रसाद मिल जाय उसी में मग्न रहते हैं। वे तुमको अपने जैसा बनाना चाहते हैं। अब बोलो क्या तुम इनको खो कर बाबाजी बनोगे, या इनको मेरे सहारे अपने यहाँ रखकर वैभवशाली बनोगे। ये तो जा ही रहीं हैं, एकबार तुमको और अवसर दिया गया है, अब तुम्हारी जो इच्छा हो सो करो।

मनीराम उस स्थान पर आकर देवों के सदुपदेशों को एक दम भूल गए थे। वे देवों को धूर्त्त समझने लगे। बोले कि हाय क्या देव लोग मेरे यहाँ से इन्हीं को लेने आए हैं। बुद्धिप्रकाश की बुद्धि पर क्या पत्थर पड़ गए हैं। चेतनदास ऐसा अचेत क्यों हो रहा है। अहंकारी तो भूला बैठा ही है, परन्तु मैं ही अकेला क्या करूँ। अच्छा, आप जाती हैं, तो जाइए, मेरा कुछ वश नहीं है। वहाँ मेरी कुछ भी नहीं चलेगी। वहाँ देवों का बोलबाला है। उन्हीं का आदर है। जो सब भुगतेंगे मैं भी भुगतूँगा। भाग्य का लिखा क्या मिट सकेगा। लोभासुरजी मैं अकेला नक्कू

नहीं बनूँगा ईश्वरेच्छा प्रबल है।

ऐसा कह कर मनीराम वहाँ से जाना ही चाहते थे कि लोभासुर ने उनका हाथ पकड़ लिया और कहा, कि तुम कैसे समझते हो कि तुम अकेले हो, हम सब तुम्हारे सहायक हैं। पर जिस समय तुम उनकी बात मान कर उनकी सलाह में आ जाते हो, हम लाचार होजाते है। अभी ठहरो इन लक्ष्मीजी को हम तुम्हारे यहाँ से नहीं जाने देंगे, तुम अपना स्वत्व क्यों छोड़ते हो। क्या तुम्हारा कुछ जन्मसिद्ध अधिकार नहीं है। जो नहीं समझते वे न समझें, हानि उठावें, पर तुम तो समझ गए हो। तुम अपना स्वत्व दूसरों के कारण क्यों खो रहे हो, भाग्य को दोष क्यों देते हो, इसमें तो तुम्हारी मूर्खता सिद्ध होती है। तुम अपने स्वत्वका दावा कर दो। वे सब नंगे भूखे रहें, तुम क्यों रहो। मैं अब भी तुम्हारा सहायक हूँ, मुझे अपने अपमान का ध्यान नहीं है। ऐसा कह कर उसने उस दूसरे पुरुष से जो मनीराम के सामने खड़ा था, कहा कि फूटासुर तुम इनकी सहायता करो। बुद्धिप्रकाश आदि के विरुद्ध इनका स्वत्व सुरक्षित रखने के लिए यात्री के सम्मुख इनका दावा उपस्थित कराओ। उसी के लिए उनसे इनकी लड़ाई कराओ। तुम उनमें घुस जाओ, एक-एक को ढीला करदो, परवाह मत करो, कोई क्यों न हो। वह अपना नहीं है, जो अपने को दाने-दाने को मुहताज करदे। मनीराम तुम डरो मत, तुम इनकी सहायता से जीतोगे और वे अपना-सा मुँह लेकर रह जायँगे। मैं

तुम्हारे साथ कलहासुर को भी भेजता हूँ। वह एक-एक के दाँत खट्टे कर देगा। तुम उनकी चाल में फिर मत आजाना, कड़े बने रहना।

अब की बार क्रोधासुर सेनापति बन कर जा रहे हैं, फूटासुर आदि सब इनके साथ हैं, जो सब तुम्हारी सहायता करेंगे। तुम मुलायम हो कर पिघल मत जाना, बल्कि खूब क्रोध प्रकट करना, जिससे सब तुमसे डर जायँ। खूब क्रोधित होना जिससे वे समझें कि यह अपना स्वत्व नहीं छोड़ेगा। फिर लक्ष्मीजी तुम्हें नहीं छोड़ेंगी। मुझे भूल मत जाना। विलम्ब मत करो, हमारी सब सेना तैयार है, हिम्मत बाँधे रहो।

पाठकगण, आपको शंका हुई होगी कि मनीराम फिर किस प्रकार शत्रु-पक्ष में पहुँच गए और किस प्रकार क्रोधासुर के साथ-साथ पागलों की तरह बक-बक करते हुए दौड़ रहे थे। पूर्व परिच्छेद में यह बात प्रकट नहीं हुई। अब आपने यह बात समझी होगी कि किस भाँति उनकी देव-संगति छूट कर वे अविवेकानन्द द्वारा असुर दल में पहुँच गए। अब क्रोधासुर का उन पर पूर्ण प्रभाव पड़ रहा है, काण्ड भीषण हो रहा है, समस्या कठिन हो रही है, परन्तु देव निश्चिंत हैं। बुद्धिप्रकाश को चिंतित एवम् भयभीत देख कर उनके साथ निश्चिंतता देवी तथा अभयदेव को कर के बिल्कुल निडर बना दिया है। और क्षमाशीलदेव की अध्यक्षता में सम्पूर्ण सेना एकत्र हो कर युद्ध के लिए तैयार हो गई है।

क्षमा

१६

क्रोधासुर के पंजे में फँसे हुए मनीराम में इतनी अधिक भीषणता, प्रचण्डता, व उद्दंडता देख कर रण स्थलमें बुद्धिप्रकाश ने विवेकानन्द से पूछा, कि महाराज इस दुष्ट क्रोधासुर की सृष्टि किस प्रयोजन के लिए हुई है। क्या केवल संसार-संहार के निमित्त ही हुई है, या कोई अन्य कारण भी है। मुझे तो नाश के अतिरिक्त दूसरा कोई कारण नहीं देख पड़ता। जिस व्यक्ति के, समाज के, अथवा राष्ट्र के हृदय में जहाँ इसका प्रभाव पड़ा, समझ लेना चाहिए वहाँ कुशल नहीं है। यह पिता-पुत्र में, भाई-भाई में कलह कराता, पति-पत्नी के स्वर्गीय प्रेम को मिट्टी में मिलाता, यहाँ तक कि एक को दूसरे के लोहू का प्यासा बना देता है। बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं को लड़ा कर लाखों मनुष्यों को काल के गाल में ढकेल देता है। यह कहीं स्वत्व का और कहीं अपमान का मिस कर के दुर्बल हृदयों के भीतर घुस जाता है, तथा उन्हें अचेत कर के उनसे ऐसे-ऐसे भयानक काम करा लेता है, कि चेत होने पर वे स्वयं आश्चर्य करते हैं कि उन्होंने वे कार्य कैसे कर डाले। इसी के आवेश में आ कर पिता ने पुत्र को, पुत्र ने पिता को, पति ने पत्नी को, और पत्नी ने पति को घोर निर्दयता से वध कर डाला है। नहीं समझते, यह पिशाच इतनी

निर्दयता ले कर क्यों प्रकट हुआ है। संसार को इसकी क्या आवश्यकता थी। यह बाल, युवा, वृद्ध सब के पास पहुँचता है। इसने पशु-पक्षी, जीव-जन्तु किसी को भी नहीं छोड़ा। आज हम अपने गढ़ में ही देख रहे हैं, कि इसी के द्वारा प्रभावित हुआ मनीराम क्या-क्या अनर्गल बातें बक रहा था। पिता तुल्य यात्री को कैसी-कैसी खरी-खोटी सुना रहा है। गढ़ में इसी ने कलह करवा दी है। जहाँ हम सब एक रस हो रहे थे, वहाँ इसने विषमता फैलादी है। मनीराम आज कुछ और का और ही दीख रहा है। यह सब इसी क्रोधासुर की करतूत है।

विवे०—बुद्धिप्रकाश अब तुम सावधान हो कर युद्ध का तमाशा देखो, तुम्हारे पूर्वोक्त प्रश्न का उत्तर स्वयं सेनापतिजी इसी युद्ध में देंगे।

बुद्धिप्रकाश ने देखा, कि आगे बढ़ा हुआ क्रोधासुर ललकार कर कह रहा है, कि कहाँ हैं क्षमाशीलदेव, आवें मेरे सामने। मनीराम को चौपट करना चाहता है, इसको द्वार-द्वार का भिखारी बनाना चाहता है। पर याद रक्खो, वह इतना मूर्ख नहीं है, वह अपने हानि-लाभ को खूब समझता है। तुम देव षड्यन्त्र रच कर यात्री के गढ़ में इसी कारण घुस आये हो, कि गढ़ से लक्ष्मी जी को हटा कर अपनी तरह उसे भी लँगोटी लगवा दो। तुम लोगों ने यात्री को चकमा देकर खूब उल्लू बना रक्खा है। वह अपना सब कुछ गमा देने को तैयार हो गया है। पर मनीराम
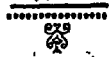
ऐसी नादानी नहीं कर सकता । यदि अन्य गढ़ वासी उसके विरुद्ध आचरण करने का साहस करेंगे, तो मैं बल पूर्वक कहता हूँ कि मैं मनीराम की सहायता करूँगा। उसे वैसा नहीं करने दूँगा। मेरे ही सहारे वह अपना स्वत्व पावेगा और विरुद्ध आचरण करने वाले को दंड देगा । मेरी शक्ति द्वारा तो संसार के सभी कार्य होते हैं, मेरे द्वारा सम्पूर्ण अपराधी दंडित किये जाते हैं। गुरु जन मेरे ही द्वारा बालकों पर अपना अधिकार रख कर उन्हें योग्य बनाते हैं, स्वामी मेरे ही द्वारा सेवकों को नियमित रखते हैं। मेरे ही लाल-लाल नेत्र देख कर प्रजा राजा का भय मानती है, जिससे राज-काज करने में राजा को कठिनाई नहीं होती।

प्रयोजन यह कि वह दंड, जिसके द्वारा अधिकारियों को अपने अधीनों को वस में रख कर नियमित करना होता है, मेरे ही द्वारा घुमाया जा सकता है। मैं ही उस दंड में शक्ति देता हूँ, जिससे वह काम में लाया जा सके । जितनी आवश्यकता उस दंड को घुमाने की होती है मात्रानुसार मैं ही प्रचंड रूप धारण करता रहता हूँ और वह घूमता रहता है; जिससे अपराधी इतने भयभीत रहते हैं कि वे उस दंडके सामने सिर झुकातेही रहते हैं। इसके विपरीत यह नपुँसक, निखट्टू क्षमाशील देव दंड का अप-मान कराता रहता है। यह अधीनों को ढीठ बनाता रहता है। वे निडर हो जाते हैं और एक अपराध करके उससे भी गुरुतर

अपराध करने का साहस करने लग जाते हैं। वे समझते हैं कि चाहे कितना ही घोर अपराध करें, उनको क्षमा मिल ही जायगी। वे अन्याय से चाहें किसी का स्वत्व हड़प लें, चाहें किसी को बुरी-बुरी गाली दें, चाहें किसी को बीच बाजार में जूतों से पीटें, चाहें किसी की स्त्री के संग अत्याचार करें, चाहें किसी प्रतिष्ठित पुरुष का घोर अपमान करें, पर वे क्षमा के पात्र हैं। क्रोध, जो उन्हें दंड दिलाने वाला है, वहाँ फटकने भी नहीं पावेगा। बस फिर क्या है, रात-दिन अपराधियों की संख्या बढ़ेगी और संसार में एक दम विपरीत व्यवस्था होकर उसका काम चलना बंद हो जायगा। इसी नियम को ध्यान में रख कर दंड-विधान करने वाले मेरा आदर करते हैं और इस क्षमाशील को सदा दूर रखते हैं।

जब इस निर्बल आत्मा क्षमाशील में इतनी अक्षमता है, तो फिर किस साहस से मेरे सन्मुख खड़ा हुआ है। जा तू यहाँ से भाग जा, तेरा प्रभाव मनोराम पर नहीं पड़ेगा। अब आदि अन्य गढ़ वासी भी मेरी सलाह को मान लेते हैं तब तो सब ठीक हुआ जाता है, नहीं तो मनोराम इनके विरुद्ध लड़ेगा और अपना स्वत्व स्थिर रक्खेगा।

क्रोधासुर की लाल-लाल आँखें देख कर, व उद्दंडता पूर्ण बातें सुनकर सामान्य मनुष्य भले ही डर गए हों, पर जहाँ देव क्रोध को एक क्षणिक आवेश मात्र समझते हैं, वहाँ इस क्रोधासुर की ललकार का या उसकी अनर्गल बातों का उन पर क्या प्रभाव

पड़ सकता है।

उसकी बात का उत्तर न देते हुए क्षमाशील देव ने मनीराम की ओर लक्ष्य करके कहा कि मनीराम तुम इस समय कहाँ हो, तुमको शत्रु-मित्र की पहचान फिर जाती रही। जितनी बातें तुमने कहीं हैं वे सब क्या कहने योग्य हैं। तुम इस राक्षस क्रोधासुर द्वारा प्रभावित होकर हम लोगों को फिर भूल गये।

बुद्धिप्रकाश ने युद्ध आरम्भ होने से पहले पूछा था, कि इस क्रोधासुर की सृष्टि क्यों हुई। यदि यह उत्पन्न न होता, तो इसके आवेश में होकर घोर अनर्थ न होते।

जानना चाहिए कि इस मायापुरी में द्वन्द्व रचे ही गए हैं, बिना द्वन्द्वों के यह खेल हो ही नहीं सकता। जैसे तुम कह सकते हो कि बुराई क्यों रची गई, अच्छा होता यदि भलाई ही भलाई रहती। पर ऐसा नहीं हो सकता। बुराई भलाई की पहचान कराती है। केवल मीठा ही मीठा होता, कड़ुआ न होता तो लोग मीठे की पहचान कैसे करते? 'जाने ऊख मिठास तब जब मुख-नीम चबाइ।' मीठे के स्वाद का आनन्द दर्शाने ही को तो कड़ुए की उत्पत्ति हुई। दोनों के स्वाद जान लेने पर ही तो लोग कड़ुए से घृणा और मीठे से प्रेम करते हैं। ठीक उसी प्रकार बुराई से भलाई की परख करके लोग बुराई से घृणा करते हैं। चाहें कितना ही बुराई को उनके सामने सम्हाल कर रक्खा जाय, वे बुद्धिमत्ता से उसके भीतर बुराई को सूक्ष्म दृष्टि से देख ही लेते हैं। वे धोखा

नहीं खा सकते, क्योंकि बुराई में भलाई मिल नहीं सकती। प्रत्येक गुण अपने स्वभावानुकूल ही प्रकट होता है। परन्तु जो किसी प्रकार आवेश में हो जाता है, वह धोखा खा जाता है। उस आवेश में वह अपनी बुद्धि को खो बैठता है। बुद्धि नष्ट होने पर उसको बुराई में भलाई और भलाई में बुराई दीखने लगती है। जिस प्रकार मेरा जन्म हुआ है, उसी प्रकार क्रोधासुर की भी उत्पत्ति अनिवार्य थी, यही नियम है।

यहाँ पर जो देवासुर-संग्राम हो रहा है, उसमें प्रत्येक यात्री के गढ़ पर अपना आधिपत्य जमाना चाहता है; परन्तु किसी का आधिपत्य तब तक नहीं हो सकता, जब तक तुम चारों यात्री के मन्त्री उसकी सलाह मान कर उसके अनुरूप न हो जाओ। जब तक तुम में से एक भी, विशेषकर तुम (मनीराम) उसके विरुद्ध रहोगे, उसकी एकछत्र जीत नहीं कही जा सकती। गढ़में विप्लव बना ही रहेगा। सो वे तीनों तो देव-पक्ष में हो गए हैं, केवल तुम डाँवाडोल हो। परन्तु तुम ही गढ़ में एक ऐसे व्यक्ति हो, जैसे मशीन का वह पुर्जा जिसके द्वारा ही सारी मशीन का संचालन हो सकता है। तुम गढ़ में मणि के समान हो। यदि तुम में प्रकाश है तो यात्री को सारा संसार प्रकाशमान दीखने लगता है। यदि तुम मलिन हो, तो उसे अंधकार ही अंधकार दीखता है। जैसे बुराई को परख के भलाई में मनुष्य अपना हित देखता है, उसी प्रकार बुद्धिप्रकाश आदि को तो निश्चय हो गया है, हम देव

ही उसके सच्चे हितकारी हैं। देवगुण को धारण करके ही कल्याण हो सकता है। परन्तु तुम गिरगिट की तरह रंग बदल रहे हो। कभी तुम्हें देव हितू व असुर अहितू दिखाई देने लगते हैं और कभी असुर हितू व देव अहितू। यह तुम में दुर्बलता है, तुममें आत्मिक-बल नहीं है। दुर्बल पर प्रत्येक का प्रभाव शीघ्र पड़ जाता है। तुम इस समय क्रोधासुर के प्रभाव में आ गए हो, उसके अव-गुण क्रोध में रँग रहे हो, अब उसी अवगुण पर विचार करो।

जिस समय मनुष्य क्रोध के वशीभूत हो जाता है, उसकी क्या दशा हो जाती है। क्या उस समय वह अपनी प्रिय विचार-शक्ति खो कर पागल नहीं बन जाता? तो जिसने तुम्हारी विचारशक्ति का हरण कर लिया, क्या वह तुम्हारा हितू है? क्या वह तुम्हारे संग भलाई कर रहा है। जिस शक्ति के छिन जाने पर तुम किसी अर्थ के नहीं रह जाते, उसी तुम्हारी शक्ति का हरण कर लेने वाला क्या त्रिकाल में भी तुम्हारा हितू हो सकता है। मनीराम, क्या तुम हमारे इस प्रश्न का उत्तर दे सकोगे? हमको आशा नहीं है कि दे सकोगे। जो विचार-शक्ति उत्तर दे सकती थी, वह तो तुमसे छीन ली गई। क्योंकि इस समय तुम उसी क्रोधासुर के वश में हो रहे हो, चेतनदास और बुद्धिप्रकाश तम्हारे शत्रु हो रहे हैं अतः अब किस प्रकार उत्तर दे सकोगे?

बीच में कूद कर फूटासुर ने कहा, कि मनीराम, तुम इनकी बात मत सुनो, क्योंकि तुम पूर्व भली भाँति समझ चुके हो कि

चेतनदास व बुद्धिप्रकाश तुम्हारे हितू नहीं हैं । वे तुम्हारे यहाँ से लक्ष्मीजी के चले जाने की परवा नहीं करते । यदि वे वास्तव में तुम्हारे हितू होते तो लक्ष्मीजी को—जो तुम्हारे सारे सुखों की मूल हैं—न चली जाने देते । परन्तु वे बिना उन लोभासुर के ठहर नहीं सकतीं, जिन लोभासुर को वे अपना शत्रु समझ रहे हैं। यदि तुम लक्ष्मीजी को जाने से रोकना चाहते हो तो कड़े बने रहो, इनकी बातों में मत आओ । अपना स्वत्व क़ायम रक्खो, हम सब तुम्हारे सहायक हैं ।

क्षमाशील देव ने देखा कि इस समय मनीराम पर शिक्षा का प्रभाव नहीं पड़ेगा । जब तक इस पर क्रोध-ज्वर चढ़ा है तब तक यह कुछ भी नहीं समझ सकता । क्षमाशील देव बोले,—"अच्छा आओ यात्री महाराज के पास अपना स्वत्व प्रकट करो । तुम उनकी आज्ञा भले ही न मानो परन्तु वे तुमसे प्रेम रखते हैं, वे अवश्य तुम्हारी इच्छा पूर्ण करेंगे ।

जिस समय मनीराम यात्री के पास जाने लगे तो उनके साथ फूटासुर और द्रोहासुर भी थे । क्रोधासुर तो उनके सिर पर बैठ था और कलहासुर उनके आगे था । क्षमाशील को इनका संग नहीं सुहाया । वह बोले, मनीराम तुम थोड़ी देर यात्री से एकांत में बात कर लो, तुम्हें जो कुछ कहना है स्पष्ट रूप से प्रकट कर दो । इन लोगों के संग में होने की आवश्यकता नहीं है ।

मनी०—नहीं ये सब भी मेरे संग में रहेंगे, मैं इनको नहीं

छोड़ूँगा, ये ही तो मुझे मेरा स्वत्व दिलवावेंगे। ये मेरे सहायक हैं।

यह दल यात्री के पास पहुँचा तो उसने देखा कि मनीराम महा क्रोधित हो रहा है। उसके लाल-लाल नेत्र भयानक हो रहे हैं। वह एक दम विक्षिप्तों जैसा हो रहा है। मनीराम की यह दशा देखकर बुद्धिप्रकाश ने पूछा कि मनीराम क्या बात है, तुमको अब क्या रोग लगा है, क्या तुम्हारे लिये औषधि खोजनी होगी?

मनीराम ने ललकार कर कहा—तुम सब मेरे शत्रु हो, मुझे बरबाद करना चाहते हो, लक्ष्मीजी तुम्हारे ही कारण गढ़ छोड़ कर भागना चाहती हैं, मैं तुम्हारी एक न सुनूँगा।

उसी समय अविवेकासुर, जो वेश बदले था और संयोग को ताक रहा था, बुद्धिप्रकाश का हाथ पकड़ कर एकांत में ले गया और बोला—"मनीराम का निदान मैं जानता हूँ।" वहीं पर दो पुरुष और भी आगये, जिन्होंने आते ही बुद्धिप्रकाश के ऊपर एक चद्दर डाल दी जिससे वह अचेत हो गया। उसे अचेत कर उसकी गठरी बाँध कर और उस गठरी को अपने सिर पर रख कर अविवेकासुर अपने साथियों समेत एक ओर चलता बना।

बुद्धिनाश

२८

लोभासुर ने कपटासुर को भेजकर मनीराम को स्वार्थ-मार्ग पर बुलवा लिया और वहाँ पर रूपराम आदि को इकट्ठा करके लक्ष्मी की उनके हृदय में आसक्ति करा दी। तुरन्त ही रूपराम आदि के लाए हुए पदार्थों को हस्तगत करने के लिए लक्ष्मी की अत्यन्त कामना होने लगी। अन्य गढ़वासी उसमें बाधक दिखाई देने लगे। यह सुअवसर देख, तुरन्त ही क्रोधासुर आ कूदा और अविवेकासुर ने, जो वहीं पर लोभासुर के साथ उपस्थित था घोर अन्धकार कर दिया। मनीराम की दृष्टि से सत्य का प्रकाश विलीन हो गया। वह पूर्ण रूपेण क्रोधासुर के वशीभूत हो गया। फिर क्या था, गढ़ में आपस में ही कलह होने लगी। अविवेकासुर ने बुद्धिप्रकाश की दृष्टि से भी विवेकानन्द को ओझल कर दिया और उसका हरण कर लिया। यात्री का गढ़ अब बिल्कुल शून्य होगया। जब प्रधानमंत्री ही नहीं रहा तब सेना किसके बलपर लड़े? वही तो नेत्र था। उसके बिना सब नेत्रहीन होगए! ऐसा प्रतीत होने लगा मानो गढ़ शक्तिहीन हो गया है। चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार हो रहा है। यात्री को मालूम होने लगा कि उसका सर्वनाश होगया। शत्रुओंकी विजय हुई और देवासुर-संग्राम का अन्त होगया। यह दशा देखकर वह भयभीत हो,

अचेत होने लगा। तुरन्त ही विवेकानन्द उसके पास पहुँच गए। अविवेकासुर ने उनको रोकने का बहुत प्रयत्न किया परन्तु वह सफल न हो सका।

यद्यपि यात्री का सम्पूर्ण कार्य-व्यवहार बुद्धिप्रकाश द्वारा ही चलता है, वह गढ़ का स्वामी होता हुआ भी अपने मंत्रियों के हाथों की कठपुतली बना रहता है, विशेष कर बुद्धिप्रकाश के सहारे के बिना तो वह निरर्थक ही हो जाता है, तथापि हमारे चरित्र-नायक यात्री में वह बात नहीं है। अन्य साधारण यात्रियों में तो यह बात हुआ करती है, परन्तु हमारा यात्री विवेकानन्द की कृपा से पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर चुका है। वह अपने अस्तित्व को तथा मायापुरी की वास्तविकता को भले प्रकार समझ चुका है। वह यह बात भी समझ चुका है कि उसके मन्त्रीगण केवल उसकी सहायता के ही लिए हैं। वह स्वयं अनेक शक्तियाँ रखता हुआ सब कुछ करने को समर्थ है। उसको अब आत्मिक बल प्राप्त हो गया है और वह बिना मन्त्रियों की सहायता के भी अपने पैरों पर खड़ा होने के योग्य होगया है। यदि ऐसा न होता तो बुद्धिप्रकाश के हरण होते ही उसका सर्वनाश हो गया होता। उसके ही आत्मिक बल ने वहाँ विवेकानन्द को बुला लिया और अविवेकासुर की एक न चली।

विवेकासुरने आकर ध्यानदेवके सहारे यात्री को उसके ध्येय का स्मरण कराया, जिससे उसमें और भी दृढ़ता आगई और वह निडर हो

गया। तब वह विवेकानन्द से कहने लगा—आपको धन्यवाद है कि आपने मुझे मेरे ध्येय का स्मरण करा कर उपस्थित समस्या को व्यक्त कर दिया। मैं भले प्रकार समझ गया हूँ कि इस मायापुरी में, मैं यद्यपि अपने मन्त्रीगण की सहायता द्वारा ही शत्रुओं से युद्ध कर रहा हूँ, तथापि मैं उनके बिना भी निर्बल नहीं हूँ। मैं अपनी ही शक्ति से सब कुछ करने को समर्थ हूँ। शत्रु मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। परन्तु बुद्धिप्रकाश अपना ही है, उसकी खोज करनी चाहिए।

विवे०—तुम्हारे पास चेतनदास है, इसको सम्हालो। मनीराम तथा बुद्धिप्रकाश के बिना यह भी गिरा जाता है। इसको अपने आत्मिक बल से सावधान करो। यात्री ने चेतनदास पर अपना अद्भुत प्रभाव डाल कर उसको सावधान कर दिया और वह इस योग्य हो गया कि यात्री की सहायता कर सके।

चेतनदास को चेत में देखकर विवेकानन्द ने उससे कहा—चेतनदास, तुम बुद्धिप्रकाश की खोज करो। उसको अविवेकासुर ने कहीं छिपा रक्खा है। उसके बिना तुम पंगु के समान हो। वह तुम्हारा अपना सदा का संगी है। अविवेकासुर ने अंधकार फैला रक्खा है, पर सत्यदेव तुम्हारी सहायता करेंगे, जिससे तुम्हें प्रकाश प्राप्त होगा।

चेतनदास सत्य के सहारे शत्रु-दल में पहुँच गए, उनके प्रकाश में उन्होंने देखा कि बुद्धिप्रकाश एक स्थान पर बंदियों की भाँति

बैठे हैं। समीप ही मनीराम भी खड़े हैं। सत्य के प्रकाश में चेतनदास ने यह भी देखा कि मानीराम के ऊपर चढ़ा हुआ क्षणिक आवेश वाला क्रोधासुर कुछ-कुछ ढीला पड़ने लगा है। क्योंकि इतना करने पर भी न तो उसे यात्री पर अपना प्रभाव ही पड़ता दीख पड़ा और न देव ही गढ़ से निकले, अतः वह स्वतः ही शिथिल होने लगा। यह दशा देखकर चेतनदास बुद्धि-प्रकाश के निकट पहुँच गए। कोई राक्षस उनको न रोक सका।

बुद्धिप्रकाश चेतनदास से गले मिले और बोले—भाई, अच्छा हुआ जो तुम हमारे पास आए। हमको असुरों ने बलात् अचेत कर दिया था और बन्दी बना लिया था, परन्तु अब हम देखते हैं कि हमारे बंधन स्वतः ही ढीले हो रहे हैं। असुर भी बलहीन हो रहे हैं। हम अब स्वतन्त्रतापूर्वक यहाँ से चल सकते हैं।

चेतनदास बुद्धिप्रकाश को लेकर यात्री के पास पहुँचे। बुद्धि-प्रकाश यात्री के चरणों पर गिर पड़े। यात्री ने उनको उठा कर छाती से लगाया, उन्होंने परम प्रसन्न होकर चेतनदास की प्रशंसा की, और उससे मनीराम का हाल पूछा।

बुद्धिप्रकाश बोला—मनीराम अस्थिर है, ठिकाने पर नहीं है, इसलिए यह देवासुर संग्राम अभी दीर्घकाल तक चलेगा। असुर अपनी कूट-नीति से उसको बहका ही लेते हैं। यद्यपि वे हमारे सामने नहीं ठहरते तथापि वही राक्षसी कृष्णवर्णा मनीराम का पीछा नहीं छोड़ती, वह उन पर सदा

दृष्टि रखती है। वह पराजित असुरों में बल का संचार करती है। जब भी मनीराम का झुकाव देवों की ओर होते देखती है, तभी वह किसी असुर को उनके सम्मुख करके उनको लालच देती है। जहाँ मनीराम उस राक्षस की तरंग में बहने लगे, तुरन्त ही वही राक्षस, जिसको उसने सचेत किया था, अपना प्रभाव उन पर डाल देता है। वह पिशाच उनको ऐसा कस कर पकड़ता है कि उसके हाथ से उनका निकलना कठिन हो जाता है।

क्रोधासुर का बल थोड़ी देर काम करता है, उसका मद शीघ्र उतर जाता है; परन्तु चेत होते ही वही राक्षसी अपना काम करने लग जाती है। राक्षस को तुरन्त जगा देती है। मैंने देखा है कि मनीराम ज्वर उतरते ही चैतन्य हुए थे, परन्तु तुरन्त ही वह डायन आ कूदी और ललकार कर उस पिशाच से बोली—'वार करो, जाने न पावे! पूर्ण बल लगाओ।' फिर क्या था, तुरन्त ही मनीराम के ऊपर पुनः क्रोध-भूत उछल कर चढ़ बैठा और वह बक-बक करने लग गए। प्रत्येक राक्षस में कूट-नीति भरी पड़ी है। संग्राम भीषण रूप धारण करता जा रहा है।

बुद्धिप्रकाश यात्री से इस प्रकार बातचीत कर ही रहे थे, कि यात्री ने सहसा सामने दृष्टि की तो वह देखता क्या है कि मनीराम क्रोधावेश में बकता चला आ रहा है और चिल्ला-चिल्ला कर कह रहा है,—"मेरा दावा है कि ये सब देव मिल कर हमारे यहाँ से लक्ष्मीजी को लेने आए हैं। ये सब लक्ष्मी-पति के दूत हैं, अपना

काम निकाल कर फिर हमको किसी अर्थ का नहीं रखना चाहते। हमारे यात्री महाराज इनके बहकाने में आ गए हैं। मुझसे स्वयं लक्ष्मीजी ने कहा है कि वे हमको छोड़ कर जा रही हैं। भला जहाँ उदारदेव, सन्तोषदेव और क्षमाशीलदेव का राज्य हो वहाँ वे कैसे ठहर सकती हैं? वे लोभासुर से बहुत प्रसन्न हैं, उन्हीं के सहारे यहाँ टिक रहीं थीं। लोभासुरजी हमारी सहायता करने को तैयार हैं। फिर यह स्वर्ण अवसर मैं अपने इन मूर्ख साथियों की सलाह मानकर हाथ से कैसे जाने दूँ। इसमें मैं किसी का संकोच नहीं करूँगा, मैं डंके की चोट कहता हूँ और स्पष्ट जताए देता हूँ, कि ये यदि प्रसन्नता से मेरा स्वत्व मुझको नहीं देंगे तो मैं क्रोधासुर की सहायता से इनसे लड़ाई लड़ूँगा। आप लोग उत्तर दें कि क्या निर्णय करते हैं।"

यात्री की ओर से अहंकारी ने उत्तर दिया—"हमारे यहाँ तुम्हारा कोई स्वत्व नहीं है। तुम भृत्य हो, भृत्य का राज्य में कोई स्वत्व नहीं होता। तुम्हारा पालन-पोषण इसलिए किया गया है कि तुम राजाज्ञानुकूल चल कर उनकी सहायता करते रहो। हमारे राजा अपने हिताहित को खूब समझने लग गए हैं। तुम भूल गए हो कि हम दीर्घकाल से इन असुरों के चक्कर में पड़े हुए थे, नष्ट हो चुके थे। देव-शरण में गए, उन्होंने कृपा की, हमें हमारे कल्याण का मार्ग बताया। अब देव ही हमारे सहायक होकर हमारा हित कर रहे हैं, हम लोग उन्हीं की सलाह से काम कर रहे हैं। तुम

असुरों के बहकाने में आकर उद्दंडता कर रहे हो, इसका तुम्हें दंड मिलेगा। तुम्हारी ही सलाह से बुद्धिप्रकाश का हरण हुआ, तुम्हारे ही सहारे से असुरों को हमारा सामना करने का साहस हो रहा है, तुम यदि अब भी नहीं सम्हले तो तुम भली भाँति दंडित किए जाओगे। हमारे यहाँ तुम्हारा कोई पैतृक स्वत्व नहीं है क्योंकि तुम सेवक हो।"

मनीराम गर्ज कर बोला—जब तक मुझमें क्रोधासुर का बल है, मैं इसी गढ़ में अपना स्वत्व बलपूर्वक प्राप्त करूँगा। राज्य केवल राजा का ही नहीं होता वह प्रजा का भी है। देखें मुझे कौन रोकता है! एक-एक के दाँत खट्टे करदूँगा, नाक चने चबवा दूँगा!!

कलह

२१

अहंकारी ने कहा—मनीराम हम नहीं जानते थे कि तुम इतने कृतघ्न हो। तुम पितृ-तुल्य यात्री के सब उपकारों को एक दम भूल गए। यात्री ने तुम्हारी बात सदा रक्खी है, तुम्हें प्रसन्न करने को—तुम्हारी इच्छा पूर्ण करने को ही—जहाँ तुमने जैसा चाहा, बिना सोचे समझे उसने आज्ञा देदी। यद्यपि ऐसा करने में दुख ही भोगना पड़ा, तथापि तुम्हारे कहे को उसने कभी नहीं टाला। जब पूर्णतः समझ लिया गया कि तुम सदा अंधाधुंधी करते हो और गड्ढे में गिराना चाहते हो, नष्ट करना चाहते हो, तब देवों की शरण लेनी पड़ी। तुम्हींने तो हमको इस माया पुरी में फँसा रक्खा था। इसमें जकड़े रह कर कभी छुटकारा पा ही नहीं सकते थे। सदा आपत्ति झेलते रहते थे। अब उन्हीं आपत्तियों ने हमारी आँखें खोल दीं और टटोलते-टटोलते हमको हमारा मार्ग दिखाई पड़ने लगा। जब यह भी भली भाँति समझ में आगया कि तुम्ही केवल हमारे दुखों के कारण हो, तब हमने तुम्हारे हठ को अस्वीकार कर दिया और तुमको भी समझा कर प्रण करा लिया, कि तुम भी हमारे साथ-साथ सीधे मार्ग पर चलोगे। परन्तु तुम न माने; तुमने यहाँ तक विलब किया कि असुरों को उभाड़ कर हमारे ऊपर चढ़ा लाये। अब अपना स्वत्व माँगने आए

हो और यह चाहते हो कि इस गढ़ में उनका बोल बाला हो जाय। देव यहाँ से दूध की मक्खी की तरह निकाल कर बाहर कर दिये जायँ! यह बात तुम्हारी कभी नहीं चलेगी, राक्षसों का बल ढीला किया जायगा, जिससे तुम्हारे सिर का चढ़ा भूत उतर जाय। तुम्हारा दुस्साहस भंग होकर तुम्हारी दुराशा-लता पर तुषार पड़ जाय। यह बात तुम रण में प्रत्यक्ष देखोगे।

अब तक तुम मनमानी करते रहे हो और हम लोगों से भी अपनी-सी करवाते रहे हो। यह बात अब नहीं हो सकेगी। विवेकानन्द की कृपा से यात्री को अब आत्मिक बल प्राप्त हो गया है, वह अपनी शक्ति से परिचित हो गया है। वह तुम्हारे भरोसे नहीं है। जाओ, तुमको जो कुछ करना हो करलो और जो-जो तुम्हारे हिमायती हों सब को बुला लाओ। सबका मद चूर्ण कर दिया जायगा। तुम्हारा हमारे यहाँ कोई स्वत्व नहीं है। तुम सरीखे विप्लवकारी के लिए हमारे यहाँ कोई स्थान नहीं है।

मनीराम बोला—मैं देखता हूँ कि तुम लोग समझाने से नहीं मानोगे क्योंकि तुम घोर मूर्ख और हठी हो। मैं संकल्प कर चुका हूँ कि मैं लक्ष्मीजी को गढ़ से कदापि न जाने दूँगा। देखें देव उनको यहाँ से कैसे भगा के लिए जाते हैं।

हाय रे! जिस समय वे यहाँ से भाग कर अन्यत्र चली जायँगी मैं कंगाल हो जाऊँगा। दूसरे मालामाल हो जायँगे, यह

मैं कैसे सह सकूँगा ! यही सोचकर मैं जला जाता हूँ । मुझे चिन्ता हो रही है कि उस समय मेरी क्या दशा होगी । मैं शिर पर हाथ धरे रात-दिन इसी शोक-सागर में डूबा रहता हूँ, मुझे कुछ भी नहीं सुहाता । हाय ! मेरे अपनों की फिर क्या दशा होगी ; मैं उनको द्वार-द्वार भीख माँगते कैसे देख सकूँगा ? क्या वे भीख माँगेंगे और दूसरे गुलछर्रे उड़ावेंगे ? हाय हाय !! देव मेरा सर्वस्व छीने लिए जाते हैं ! मुझे क्षण भर भी चैन नहीं है । मैं संसार भर की सम्पत्ति अपने पास देखना चाहता हूँ, दूसरे के पास मुझे एक पाई भी नहीं सुहाती । मेरे सुखों का छीनने वाला मेरा घोर शत्रु है । वह फिर चाहे देव हो वा असुर ।

विवेकानन्दने क्षमाशीलदेव को संकेत किया और उनके कानमें कहा—देखो फूटासुर और कलहासुर अहंकारी के पीछे खड़े उस पर अपना विचित्र प्रभाव डाल रहे हैं । मनीराम के सिर पर क्रोधासुर बैठा है और समीप ही इर्ष्यासुरी, चिंतासुरी, शोकासुर और पर अपकासुर उसको घेरे खड़े हैं । तमासुर ने तम फैला कर उसको अंधा बना दिया है । अब अहंकारी फूटासुर द्वारा प्रभावित हुआ ही चाहता है । कलह होने में देर नहीं है, आप अपना अस्त्र अब शीघ्र छोड़िए और इन राक्षसों को भगाइए, नहीं तो अनर्थ हो जायगा ।

क्षमाशीलदेव ने तुरन्त ही अपनी प्रेममयी करुणा-दृष्टि से चारों ओर देखकर स्थिति को भले प्रकार समझ लिया । फिर वे

अहंकारी से बोले-शत्रु का आक्रमण प्रबल है। मनीराम निर्बल है, उसमें निजी बल किंचित् भी नहीं है। इसी से वह बलवान् शत्रु के वश में हो गया है। इसमें उसका क्या दोष है? वह क्षमा-पात्र है, दया के योग्य है। अब हमारा काम यह है कि हम अपने बल से शत्रु-बल क्षीण करें और अपना प्रभाव मनीराम पर डालें, जिससे उसके ऊपर का भूत, जो सिर पर चढ़ा बोल रहा है, भाग जाय और उसे चेत हो जाय।

तब मनीराम की ओर देखकर क्षमाशीलदेव बोले—मनीराम, तुम क्या चाहते हो? हम अभी यात्री से कह के तुम्हारी इच्छा पूर्ण कराते हैं। उनको तुमसे प्रेम है, वह कभी तुम्हारी बात नहीं टालेंगे।

इन जल के समान प्रेम भरे शीतल वचनों से मनीराम के ऊपर चढ़े क्रोधासुर के गहरी चोट लगी और वह ऊपर से नीचे खिसकने लगा। यद्यपि फूटासुर और कलहासुर द्वारा प्रभावित हुआ अहंकारी, इस क्रोधाग्नि को अधिकाधिक प्रज्वलित कर रहा था; तो भी क्षमाशीलदेव के मन्त्र ने उसमें छींटे मारकर उसे कुछ कम किया। क्रोधासुर का बल कम होते देख, तम भी ढीला पड़ने लगा। इसी अवसर में सत्, तम को बलपूर्वक हटाने लगा।

यह आशाजनक अवस्था देखकर सेनापति पुनः मृदु स्वर में बोले—मनीराम, तुम अब चेत में हो, हृदय से उत्तर दो कि क्या माता-पिता अपने प्यारे लाड़ले पुत्र का कभी अहित चाहते

हैं ? क्या वे उसके दुख को देखकर कभी सुखी हो सकते हैं ? माता तो पुत्र के दुख को देख कर ऐसी अचेत हो जाती है, कि जलती अग्नि में भी कूद पड़ने को तैयार हो जाती है। वह अपने सारे सुखों की आहुति उसके हित के लिए दे सकती है। सोचो और स्मरण करो कि क्या यात्री ने तुम से पितृ-वत् प्रेम नहीं किया ? सदा तुम्हारे हित पर उसने दृष्टि नहीं रक्खी है। तुमने जहाँ-जहाँ भी भ्रम से दुख को सुख समझ कर उसको प्राप्त करने के लिए यात्री को विवश किया, क्या वहाँ ही उसने तुम्हारा हठ नहीं रक्खा है ? फिर वे ही भ्रमात्मक सुख क्या तुमको दुखदायी प्रतीत नहीं हुए ? उनसे क्या तुमने ठोकरें नहीं खाईं ? क्या तुम विकल होकर नहीं रोए, नहीं पछताए ? क्या तुम्हारे ही हठ के कारण यात्री को स्वयं दुख उठाने नहीं पड़े ? दीर्घकाल तक दुख उठाते-उठाते क्या तुमसे ही सलाह लेकर उसने इस मार्ग में पग नहीं रक्खा है ? अब भी तुम जिस बात को चाहते हो यात्री से सलाह करो, उचित अनुचित विचार करो। मैं वचन देता हूँ कि यदि तुम उस बात को अपने ही लिए हितकारी सिद्ध कर दोगे तो तुम्हारी बात अब भी मान ली जायगी। यात्री कभी नाहीं नहीं करेंगे।

क्षमाशील के इस दूसरी शीतल वाणी रूपी शस्त्र ने ऐसा वार किया कि क्रोधासुर मनीराम के सिर पर से अररा कर नीचे गिर पड़ा। तम के ऊपर सत् चढ़ बैठा और उसने उसको दबा लिया।

मनोराम सिर खुजाते हुए बोले, कि मैं यह कब कहता हूँ कि यात्री को मुझसे प्रेम नहीं है। मेरा तो यह कहना है कि ये बहका लिए गए हैं, जिसके कारण मेरा व इनका अहित हुआ चाहता है।

क्षमा०—मनोराम, तुमने चेतनदास व बुद्धिप्रकाश का साथ छोड़ दिया। चेतनदास में यह सामर्थ्य है, कि वह पूर्व अनुभव की हुई बातों का चेत करा सकता है। बुद्धिप्रकाश हिताहित का निर्णय कर सकता है। उनका संग छूटने से तुम अकेले रह कर शक्ति-हीन हो गए। बिना शक्ति के तुम अपने हिताहित को कैसे समझ सकोगे। यहाँ पर अब यह विचारणीय है, कि यात्री देवों द्वारा बहका लिए गए हैं, या असुरों द्वारा तुम बहकाये गए हो। मैंने चेतनदास व बुद्धिप्रकाश को तुम्हारे सम्मुख कर दिया है, तुम इनके सहारे से इस बात को समझ सकोगे।

तुम्हारा यह कहना है कि लक्ष्मी गढ़ को छोड़ रही हैं, क्योंकि उनका गढ़ में निवास केवल लोभासुर के हाथ में है। बिना लक्ष्मी के तुम्हारे सारे सुख जाते रहेंगे, यहाँ तक कि तुम्हारा इस मायापुरी में रहना भी कठिन हो जायगा?

मनो०—हाँ महाराज, मेरा यही कहना है।

क्षमा०—इसके लिए तुम्हें यह सोचना चाहिए, कि तुम इस मायापुरी में कितने काल से हो। कितने काल से तुम यहाँ चक्कर काट रहे हो। लक्ष्मी कितनी बार तुम्हारे पास आईं और कितनी

बार चली गई। जब-जब वे तुम्हारे यहाँ रहीं, उनके द्वारा जितने सुख तुमने भोगे, उनसे क्या तुम्हारा पेट भर गया? क्या तुम्हारी भूख जाती रही? सोचो और स्मरण करो, तुम्हारी भूख दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती ही रही। तुम्हारा वास्तविक सुख तुम से कोसों दूर रहा। तुम रात-दिन हाय-हाय करते रहे, पर वास्तव में तुमने लक्ष्मी द्वारा सुख नहीं पाया, वरन् वे सुख, जो तुम्हें उनके द्वारा मिलते रहे, तुमको स्वयं निस्सार व फीके जँचते रहे। यहाँ तक कि वे परिणाम में दुख स्वरूप बन गए। इस प्रकार तुमने इस मायापुरी में ठोकर पर ठोकर खाई, तब कहीं जाकर यात्री की आँखें खुलीं, और उसे यह जानने की इच्छा हुई, कि क्या मैं सदा इसी प्रकार दुख उठाता रहूँगा, या कोई स्थान ऐसा भी है जहाँ पहुँच कर मैं इन दुखों से छुटकारा पा जाऊँगा। देवों से भेंट होने पर उन्होंने तुमको उस स्थान का मार्ग बताया, जहाँ पहुँचकर तुम परम आनन्द प्राप्त कर सकोगे। और यह भी बतलाया कि बिना उनके सहारे के तुम चाहे सिर पटक कर मर जाओ, मायापुरी के दुखों से नहीं छूट सकते। क्योंकि लक्ष्मी को अपना पैना अस्त्र बना कर ये असुर सदा तुमको दुःखागार में ढकेलते ही रहेंगे। और वे असुर देवों द्वारा ही भगाये जा सकते हैं, यह बात तुम भी विवेकानन्द की कृपा से समझ चुके हो। परन्तु शोक कि वे असुर अपनी कुसंगति का ऐसा विकट प्रभाव तुम पर डाल देते हैं, जिससे तुम सब कुछ

जानते हुए भी अनजान बन जाते हो। तुम्हें पूर्व जानी हुई बातों का स्मरण ही नहीं रहता। फिर तुम निज स्वभावानुसार शीघ्र बहक जाते हो।

मनो०—परन्तु जब तक इस मायापुरी में रहना है बिना लक्ष्मी के निर्वाह भी तो नहीं हो सकता।

क्षमा०—तुम्हारी यह बात किंचित् ठीक है, परन्तु इसमें एक बात बड़ी दूरदर्शिता की है, कि तुम्हारे सारे सुख स्वतन्त्रता में भरे पड़े हैं। जहाँ-जहाँ जो जितना स्वतन्त्र है, उतना ही सुखी है, और जितना परतन्त्र है उतना ही दुखी है। यदि वह परतन्त्रता की बेड़ी में जकड़ा हुआ है, स्वतन्त्रता पूर्वक कोई काम नहीं कर सकता, तो उसका सुख दूसरों के हाथ में चला जाता है। उसे स्वयं ही वह सुख फीका मालूम देता है। तुमको लक्ष्मी का जो दृश्य लोभासुर ने दिखाया है, वह यह है कि भूखे-प्यासे रह कर, अनेक कष्ट सह कर लक्ष्मी की रक्षा करना, जिससे वह किसी भी छिद्र में हो कर खिसक न जाय। उस से इतना प्रेम करना कि वह भूत बनी सदा सिर पर चढ़ी रहे। वही एक मात्र साध्य वस्तु हो जाय। यह काम तुम अपनी सम्पूर्ण स्वतन्त्रता खो कर कर सकोगे। परन्तु लक्ष्मी तो तुम्हारी साध्य वस्तु नहीं है, क्योंकि तुम तो उस मार्ग के खोजी हो, जो इस मायापुरी की चक्करदार भूल-भुलैयों से तुम्हें निकाल कर उस स्थान पर ले जाय, जहाँ तुम्हारे सारे दुखों का अन्त हो जाय।

तुमने अनुभव पर अनुभव किया है कि लक्ष्मी तुम्हारे उस मार्ग में रुकावट डालती है। अतः हम देव लोग तुमको सलाह देते हैं, कि प्रथम तुम इतनी शक्ति प्राप्त करलो, जिससे वह लक्ष्मी-जो इस मायापुरीमें तुम्हें तुम्हारे निर्वाह के लिए सहारा देने वाली है, तुम्हारे अधीन हो कर रहे। तुम्हारी अधीश्वरी न बन जाय। तुम इतने शक्ति वाले हो जाओ कि जब चाहो उसे अपने पास दासी की भाँति देख सको। स्वेच्छानुसार उससे काम ले सको। लोभासुर के सहारे की आवश्यकता न रहे। यात्री में शक्तियाँ भरी पड़ी हैं, केवल उनको व्यक्त करना है। वह अपनी शक्ति से जिस वस्तु को चाहे अपने पास देख सकता है। लक्ष्मी ही क्या, वह उस परमानन्द को भी प्राप्त कर सकता है, जहाँ उसके सारे दुख-मूल नष्ट हो सकते हैं। परन्तु असुर उसमें पूरे बाधक हैं, वे लक्ष्मी का लोभ दिखा कर बीच में ही उसे अटका लेते हैं। तुम्हारे सामने यह चित्र खींच देते हैं, कि जो कुछ है सो लक्ष्मी ही है। उसके अतिरिक्त कोई भी वस्तु तुम्हें सुखदायी नहीं है। उसका फल यह होता है, कि तुम सदा इस मायापुरी में फँसे रह कर दुख भोगते रहते हो।

मनो०—क्या आप लक्ष्मी को हमारे यहाँ से भगाने का प्रयत्न कर रहे हैं?

क्षमा०—यह बात तुम्हारी सत्य भी है और मिथ्या भी।

मनो०—दोनों बात कैसे हो सकती हैं?

अचि०—मनीराम सावधान, ये तुमको चकमा दे रहे हैं।

क्षमा०—मैं तुमको स्मरण कराता हूँ मनीराम, कि जब ये असुर अपने आसुरी गुणों से काम लेने में असफल हो जाते हैं, तब कपट करके हमारे दैवी गुणों में आ कूदते हैं। और उनको तामस रूप देकर बिगाड़ डालते हैं। हमारे सात्त्विक दान को तामस रूप देकर कैसा बिगाड़ा था कि उसको हानिकारक सिद्ध करवा दिया था। वह उनकी गुप्त करतूत तुम्हारे सामने प्रत्यक्ष कर दी गई थी। उसी प्रकार समझो, कि लक्ष्मी भी दैवी हैं, आसुरी नहीं हैं; परन्तु तुमने उनका जो रूप लोभासुर के पास देखा था, उस पर तामस आवरण चढ़ा हुआ था। और यह सत्य है, कि हम किसी भी सद् हृदय में तामसी लक्ष्मी को नहीं देखना चाहते, क्योंकि वह फँसाने वाली बन गई हैं। हम ऐसी लक्ष्मी को तुम्हारे पास से हटाने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु हमारी देवी लक्ष्मी अपने सात्त्विक रूप में रहती हुई—जो कभी तुमको फँसाने वाली नहीं है—यदि तुम्हारे पास हो, तो हम देख कर प्रसन्न होते हैं। उसका तुम्हारे पास होना हमको बुरा नहीं लगता और न उसे हम तुम्हारे पास से हटाने का ही प्रयत्न करते हैं।

इन असुरों की कपट-करतूतों को कहाँ तक कहें। इन्होंने आसुरी अवगुण ईर्ष्या का हम देवों में भी आरोप कर दिया, कि हम ईर्ष्यावश किसी के पास लक्ष्मी को देख ही नहीं सकते। क्योंकि वे हम देवों के स्वामी की प्रिया हैं—अर्थात् हमारे स्वामी

कामी हैं, उनके पास से लक्ष्मी के अन्यत्र चले जाने से उनके काम में बाधा होती है, इसलिए तुमसे उनको भी ईर्ष्या है, और हमको भी। इस प्रकार वे असुर हमारे बीच में घुसकर हमको कलंकित करते हैं, और तुमको बहका लेते हैं। तुम्हीं बताओ कि यदि हम में उनके अवगुण आ जायँ, तो फिर हममें देवत्व कैसे रहे। तुम समझो कि लक्ष्मी आदि की सृष्टि ही इसलिए हुई है कि जिससे यात्री इस मायापुरी में सुगमता से कालक्षेप कर सकें, और उनमें न फँसते हुए हमारी सहायता द्वारा असुरों को पराजित कर यहाँ से निकल जायँ। भली-भाँति समझलो कि लक्ष्मी से हमको कोई विरोध नहीं है, क्योंकि वह देवी हो तो हैं, आसुरी नहीं हैं। तुम्हें आवश्यकता है देवी की, आसुरी की नहीं। जो लोभासुर को संग लिए सदा सिर पर चढ़ी रहे और तुम्हें परतन्त्र बनाए रक्खे, ऐसी लक्ष्मीकी तुम्हें जरूरत नहीं है।

हे मनीराम, यह बल तुम्हें हमारी हीसंगतिसे प्राप्त होसकेगा, क्योंकि तुम असुरों के पास, जाते ही अपनी सारी सुधि-बुधि खो कर निर्बल हो जाते हो। वे तके बैठे रहते हैं और तुमको बल-पूर्वक हमारी संगति से वंचित कर देते हैं। वह देखो रण से भागा हुआ लोभासुर तुमको सैन से बुला रहा है। लम्बी जीभ बाहर निकाले क्रोधासुर ऐसे हाँफ रहा है, जैसे पिंजड़े में बन्द बेबस सिंह चेष्टाएँ करता है। उसकी भी दृष्टि तुम्हारी ओर है,

वह अभी रण से भागा नहीं है। लोभासुर को भी उसने पकड़ रक्खा है। उसके बिना वह पंगु के समान है। उसने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है, कि इस मायापुरी में वही एक ऐसा शक्तिमान् है, जिसके द्वारा शासन कर के नियमों को स्थिर रक्खा जा सकता है। वह कहता है कि शासन-कार्य में मैं (क्षमाशील देव) अयोग्य हूँ। आज की यही लड़ाई है। यदि यह सिद्ध हो जायगा, कि नियम स्थिर रखने के लिए उसकी आवश्यकता है, मेरी नहीं, तो उसकी जीत हो जायगी, नहीं तो उसकी हार निश्चित् है।

न्याय

२२

रण-स्थल में क्रोधासुर पुनः क्षमाशीलदेव के सम्मुख आगया है, उसमें कृष्णवर्णा ने पुनः बल का संचार कर दिया है। वह क्षमाशील से ललकार कर कहने लगा, कि क्यों निरर्थक मनीराम को फुसला रहे हो। वह क्या इतना भी नहीं समझता कि बल तो मेरे ही द्वारा आ सकता। तुम्हारा सहारा लेने वाला निस्तेज, नपुंसक बन जाता है। मैं उसका मित्र हूँ, मेरे ही द्वारा वह बल-वान् बन सकेगा।

क्षमा०—मनीराम देखो, यह तुम्हारा कैसा मित्र है? जो तुम्हारी प्यारी विचार शक्ति का, जिसके द्वारा कि तुम संसार के छोटे-बड़े कार्य उचित रीति से कर सकते हो, उसका यह सबसे पहले हरण कर लेता है। तुम को नेत्र होते हुए भी अन्धा बना देता है। जो शक्ति तुम्हारे लिए सर्वश्रेष्ठ पथ-प्रदर्शक थी, उसी को तुम्हारे पास से छीन कर तुम्हें पागल बना देता है। तुम्हें उत्तेजित अवश्य करता है। परन्तु उत्तेजना कोई बल नहीं है। तुम अब नेत्र खोल कर देखो, न्याय से बोलो, क्या ऐसा क्रोधासुर तुम्हारा कभी हितू हो सकता है? क्या वह कभी तुम्हारा भला कर सकता है? यह प्रश्न मैंने तुमसे पूर्व भी किया था। उस समय यह क्रोध-भूत तुम्हारे सिर पर बैठा था, तुम नेत्र-हीन थे, तुम उत्तर न दे

सके। अब तुम्हारे ऊपर से उतर कर वह भूत दूर खड़ा है, अब तुम चेत में हो, चेतनदास व बुद्धिप्रकाश तुम्हारे पास हैं। अब यह बात तुमको भले प्रकार ज्ञात हो रही होगी, कि लक्ष्मी से भी अधिक प्यारी तुम्हारी विचार-शक्ति का हरण करने वाला वह क्रोधासुर तुम्हारा मित्र नहीं है, घोर शत्रु है।

क्रोधा०—क्षमाशील तुम मूर्खता की बातें मत बको। यदि मेरे द्वारा शासक लोग निर्बल बना दिए जाते हैं, तो फिर उनमें शासन शक्ति कहाँ से आ जाती है।

क्षमा०—मनोराम यह बात स्पष्ट है, कि जिस मनुष्य में विचार-शक्ति नहीं रहेगी, वह शासन-कार्य के योग्य रह ही कहाँ जायगा। क्योंकि शासन-कार्य तो ठीक-ठीक न्याय-व्यवस्था चाहता है। देखो, उचित अपराधी ही न्याय-पूर्वक दंड पावें, निर्दोष कहीं दंड न पाजाय, इसमें विचार-शक्ति की कितनी आवश्यकता है। परन्तु उसको तो इस क्रोधासुर ने पहले से ही हर लिया है, फिर उचित अनुचित का, दोषी और निर्दोष का विचार करेहीगा कौन? जब तक तुम इस स्वयं सिद्ध बातको, कि क्रोधावेश में विचार-शक्ति निश्चय ही चली जाती है, नहीं भूलोगे तब तक क्रोधासुर की इस युक्ति को कभी भी स्वीकार नहीं कर सकते, कि बिना क्रोध के शासन-कार्य नहीं हो सकता।

इसके प्रमाण प्रत्यक्ष हैं। यदि किसी पिता या गुरू ने शासक बन कर किसी अल्प अपराध पर अपने प्यारे पुत्र या शिष्य को
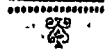
ऐसा कठोर दण्ड दे दिया है, कि उससे पूर्व उनका वैसा विचार था ही नहीं, तो बताओ, ऐसा कठोर दण्ड, जिसमें उन बालकों के प्राण तक चले गए हैं. किसने दिलाया? क्या नहीं कहा जायगा कि क्रोध के आवेश ने? क्रोध दूर होने पर स्वयं उन शासकों ने स्वीकार कर लिया है, कि हा! इस दुष्ट क्रोध के वशीभूत हो कर हमने अपनी विचार-शक्ति खो कर क्या अनर्थ कर डाला। फिर उसके लिए उनको जन्म भर पछताव रहा है। संसार ने उनकी घोर निन्दा की है। वे किसी को मुँह दिखाने के योग्य भी नहीं रहे। उसी पिशाच के आवेश में किसी-किसी राजा ने अपनी प्रजा पर ऐसे-ऐसे अत्याचार किए हैं, कि उसका कलंकित नाम इतिहासों में सदा चला जा रहा है। तुम विश्वास करो, सहस्रों प्रमाणों पर दृष्टि डालो और समझो, क्रोध द्वारा सम्पादित शासन-कार्य सदा निंदनीय सिद्ध हुआ है।

क्रोधा०—अरे दुष्ट, तू मनीराम को पहले यह तो बता दे कि तेरे द्वारा शासन-कार्य किस प्रकार ठीक-ठीक हो सकता है, तब मेरी निंदा करना। जब तू अपराधी या निरपराध सभी को क्षमा दिलवा देता है, तब अपराधी यह समझ कर कि हमें क्षमा तो मिल ही जायगी, अपराध पर अपराध करता ही रहेगा और संसार की न्याय-व्यवस्था सदा बिगड़ी ही रहेगी। सब अनियमित बने रहेंगे, क्योंकि तेरी भगिनी दयादेवी तुझे विवश करके क्षमा दिलवाती ही रहती है।

क्षमा०--अरे नराधम, तू मनीराम को क्यों धोखा दे रहा है, तू स्वयं राक्षस होता हुआ तो हमारे चिरसंगी न्यायदेव का साथ पकड़ना चाहता है, और मुझे-जो मेरा और न्यायदेव का चोली-दामन का साथ है-कलंकित करके उनका विरोधी बनाता है। देखते हो मनीराम इन असुरों की करतूतों को। देवों से शत्रुता भी रखते हैं और उनका सहारा भी लेना चाहते हैं। मैं इससे ललकार कर पूछता हूँ कि क्या इसने अपने साथी अन्यायासुर का संग छोड़ दिया, जो न्यायदेव को अपनाता है। क्योंकि वे दोनों एक दूसरे के सदा प्रतिकूल हैं। न्यायदेव का सहारा पकड़ने वाला सचमुच तुमको चकमा दे रहा है। क्रोधासुर व अन्याया-सुर के पास न्यायदेव भूल कर भी नहीं जा सकते। देव और असुरों का मेल कदापि नहीं हो सकता, अतः सिद्ध हुआ कि क्रोधावेश में शासक कभी न्याय नहीं कर सकता। विचार-शक्ति छिन जाने पर, पागल बन जाने पर, शासक न्याय अन्याय का विचार कर ही कैसे सकता है? क्रोधी में न्याय कहाँ! क्रोधी में क्षमा कहाँ! और क्रोधी में दया कहाँ!

मनी०—मैं अब भी नहीं समझा कि क्षमा व दया के संग न्याय का मेल कैसे हो सकता है।

क्षमा०—तुमने अब तक मेरा वैसा ही रूप देखा है, जैसा इन असुरों ने दिखाया है। मेरे रूप को बिगाड़कर तुम्हारे सामने रक्खा है। अब तुम मेरा यथार्थ रूप देखो, कि जिसमें तम

किंचित् भी मिश्रित नहीं है। और समझो, कि किस प्रकार न्यायदेव मेरे व मेरी भगिनी दयादेवी के संग एकमएक हो रहे हैं। मैं तुमको बताता हूँ, कि वे मेरे व मेरी भगिनी के सदा पीछे-पीछे रहा करते हैं। बिना उनको संग लिए हम कहीं भी नहीं जाते। कौन कहता है, कि मैं अपराधी को दंड न दिला कर क्षमा कर देता हूँ। यदि मैं ऐसा साहस या भूल करूँ भी, तो न्यायदेव मेरा कान तुरन्त पकड़ लेंगे। वे तो मेरे पीछे लगे ही रहते हैं।

क्रोधा०—सम्हलना मनीराम, इनसे पूछो, कि फिर क्षमा कैसी, व दया कैसी ? क्योंकि अपराधीको तो न्यायपूर्वक दंडित होना ही पड़ेगा, फिर ये दोनों उसके पास किस प्रयोजनके लिए जाते हैं।

क्षमा०—मैं पूछता हूँ, कि किसी अपराधी को दंड क्यों दिया जाता है।

क्रोधा०—दंड से अपराधी का सुधार होता है, जिससे वह फिर अपराध न करे। और दंड मैं ही दिला सकता हूँ, तुम नहीं दिला सकते। अब भगो यहाँ से। मनीराम तुम इधर खिसक आओ, छोड़ो इस निखट्टू का साथ।

क्षमा०—मनीराम मैं अपराधी को किस प्रकार दंड दिलाता हूँ इसको दृष्टान्त से भली भाँति समझ लो। जैसे किसी के पुत्रने अपने गृह से कोई वस्तु चुराली। गृह-शासक पिता को मालूम हुआ कि मेरे पुत्र ने अपराध किया है, इसलिए वह दंडनीय है। क्योंकि बेटे की करतूत पिता को बुरी लगी; अतः उसको क्रोध उत्पन्न हुआ

(चित्त को जब कोई बात बुरी लगती है, अर्थात् जब कोई काम इच्छाके विरुद्ध होता है, तो क्रोध निश्चय आता है)। क्रोध तो ऐसे समय को तके बैठा ही रहता है। परन्तु उस समय का क्रोध शासक के लिए विष-तुल्य होता है। शासक उसके आवेश में अनर्थ कर सकता है। यदि वह पिता दैवी गुण सम्पन्न है, सदा देवताओं की पूजा व सेवा किया करता है, तो मैं तुरन्त उसके पास पहुँच जाता हूँ, और उसको सावधान कर देता हूँ, कि चेत में रहो। यह तुम्हारा लाड़ला पुत्र है, इस पर क्रोध मत करो। कहीं यह तुम्हारे क्रोध में भस्म न हो जाय। यह तुम्हारा हृदय है, क्षमा के योग्य है। फल यह होता है कि मेरे शीतल वचनों से उसकी क्रोधाग्नि शीघ्र ही बुझ जाती है। साथ ही दया देवी यह देखकर, कि इसका शत्रु क्रोधज्वर तो उतर गया, उसको सूचना देती हैं, कि यह तुम्हारा प्यारा पुत्र है, इसके भविष्य पर ध्यान दो। यदि इसे चोरी की बान पड़ गई, तो इसका जीवन नष्ट हो जायगा, अतः इसके हित के लिए, इस पर दया करके इसे सम्हालो। तुरन्त ही न्यायदेव—जो हमारे पीछे थे—आकर सलाह देते हैं, कि तुम को इसकी करतूत बुरी लगी इसलिए नहीं, वरन् उसके हित के लिए तथा समाज के हित के लिए इसे उचित दंड देकर इसका सुधार करो। वह दंड अपराध की मात्रानुसार हो और दंड का उद्देश्य हो पुत्र का सुधार। जब हम तीनों मिल कर शासक को शासन-कार्य में लगा देते हैं, तब वह शासक विचार

पूर्वक दंड का विधान करता है। वह दंड क्रोधावेश में नहीं, वरन् प्रेमपूर्वक दिया जाता है; जिससे सब व्यवस्था ठीक बनी रहती है।

मनीः—दंड देते समय प्रेम कैसा! उस समय तो क्रोध का आजाना अनिवार्य है।

क्षमाः—तुमने न्यायालयों में देखा होगा, कि न्यायाधीश अपनी कुर्सी पर बैठा है, पास ही अन्य कर्मचारी आदि खड़े हैं। लिखा-पढ़ी हो रही है, बीच-बीच में हास्यरस भी हो रहा है। न्यायाधीश के मुख पर क्रोध का चिन्ह भी दिखाई नहीं देता। लोग समझते हैं, कि वह प्रसन्न है, अपराधी छूट जायगा। परन्तु वहाँ क्या होता है, कि न्यायानुसार अपराधी को दंड सुना दिया जाता है। सब चकित रह जाते हैं। कारण स्पष्ट है, कि चित्त में क्रोध को स्थान न देने से न्यायाधीश ने अपनी विचार-शक्ति नहीं खोई थी, अतः जो न्याय ने बताया उसी के अनुसार प्रसन्नतापूर्वक उसने दंड-विधान सुना दिया।

मैं कहता हूँ कि अपराधी को स्वयं जच जाती है कि, शासक के हृदय में प्रेम है, दया है, परन्तु वह न्याय-व्यवस्था का उल्लंघन करने के लिए विवश है। अपराधी जितना शीघ्र प्रेम की शक्ति से पराजित होकर सुधरता है, उतना दूसरी किसी शक्ति से नहीं। तब वह अपनी भूल को स्वीकार करके दंड को प्रसन्नता से भोगता है, और आगे को सावधान हो जाता है। परन्तु क्रोधावेश में जो दंड दिया जाता है, वह अपराधी को जचा देता

है, कि शासक मुझे शत्रुता से दंड दे रहा है। वह शासक को अपना शत्रु समझने लगता है, अतः और भी ढीठ हो जाता है, वह कभी नहीं सुधर सकता।

अब मैं समझता हूँ कि तुमने इस क्रोधासुर के कपट-जाल को सावधानी से सुन लिया, व मेरी युक्ति पूर्ण बात मान कर तुम सावधान हो गए। क्योंकि मैं देख रहा हूँ, कि वह भूत जो तुम्हारे सिर से उतर कर दूर खड़ा था, अब पूर्ण पराजित होकर ससैन्य भागा चला जा रहा है। उसके पास कोई भी अस्त्र शेष नहीं रहा था। चलो अब हम भी यात्री के पास चलें।

मनीराम के पहुँचते ही यात्री वही दृश्य—जो लोभासुर के पराजित होने पर देख रहा था, पुनः देखने लगा। वही शुक्लवर्णा और वे ही गुरुदेव उसे अपनी-अपनी झलक दिखाने लगे। यात्री किसी अज्ञात सुख में गोते खाने लगा। लहर पर लहर उठने लगी। परन्तु यह दृश्य क्षण भर भी नहीं होने पाया था, कि वही गुम डायन कृष्णवर्णा बिजली-सी कौंध कर मनीराम के कान में यह कहती हुई भाग गई, कि "क्या तुम हम लोगों की पुरानी प्रीति एक दम बिसार दोगे?" जिसका फल यह हुआ कि मनीराम को असुरों की स्मृति होने लगी, और वे डूबने-उछरने लगे। पट-परिवर्तन हो गया, शुक्लवर्णा आदि उसी समय विलीन हो गए। यह देख कर क्षमाशीलदेव बोले—'हमारी जीत तो हुई परन्त अधूरी ही रही।'

२३

सूर्यदेव अस्त हो चुके हैं, चन्द्रदेव तारागणों की सेना लेकर आ विराजे हैं, मानो वे संसार के दुखित प्राणियों से कह रहे हैं, कि हे सूर्यातप से तप्त कष्ट-पीड़ित लोगो, तुम अब क्यों दुखित हो रहे हो। क्या मैंने अमृत बरसा कर तुम्हारे आतप को दूर नहीं कर दिया है ? यद्यपि प्राणियों को चन्द्रदेव की बरसाई हुई शीतलता से कुछ चैन-सा पड़ गया है, तथापि पवन देव तो अभी तक रूठे ही हुए हैं। वे जब तक कृपा नहीं करेंगे, दुख दूर नहीं हो सकता। एक पत्ता तक नहीं हिल रहा है, त्राहि-त्राहि मच रही है। कृपा करो, पवनदेव कृपा करो, तुम्हारे बिना जीवन निस्सार है। तुम दिन भर तो रूठे रहे, तुम्हारी अनुपस्थिति में सूर्यदेव ने खूब जी भर कर तपाया, तुम्हारे बिना हमारे प्राणों पर आ बनी है, अब तो दया करो। लोगों की सुनाई हुई, मंद-मंद गति से चलते हुए श्रीपवनदेव का आगमन हुआ। लोगों के जी में जी आया। धन्य है, धन्य है, पवनदेव केवल तुम्हीं हमारे प्राणों के आधार हो।

उधर आकाश में कुछ श्याम वारिद-खंड दृष्टिगोचर होने लगे, और जैसे-जैसे पवनदेव अपनी गति को शीघ्र करने लगे, वैसे ही वैसे इन्द्रदेव भी वारिद-खंडों को आकाश में एकत्र करने

लगे। फिर क्या था, उन मेघों में से छोटे-छोटे जलबिंदु टपकने लगे—अर्थात् नन्हीं-नन्हीं फुइयाँ-फुइयाँ होकर वर्षा होने लगी। क्या ही अनोखा परिवर्तन हुआ। जो लोग घोर आतप में जले जा रहे थे, बिना पवन के जिनके प्राण निकले जा रहे थे, उनको प्रथम तो चन्द्रदेव ने सुधा वर्षा कर कुछ शीतल किया, पुनः पवनदेव और इन्द्रदेव मिलकर उनकी सहायता को आ उपस्थित हुए। चन्द्रदेव ने अपना मुख घूँघट से ढक लिया। तुरन्त ही उन दोनों ने मिलकर इतनी शीतलता कर दी कि मनुष्यों के मुरझाए हुए मुख कमल-सदृश खिल गए। हमारे मनीराम भी, जो सूर्यातप से अत्यन्त झुलस चुके थे, उस वेला एक उपवन में अपनी तपन दूर करने को चन्द्र-तारागणादिक के शरणागत होकर बैठे थे। वे इस प्रकृति-परिवर्तन से अत्यन्त प्रसन्न हो गए और आनन्द में मग्न होकर उछल पड़े! एक ही दौड़ में उपवन की दूसरी ओर जा पहुँचे। वहाँ क्या देखा कि एक सुन्दर कदम्ब के वृक्ष के नीचे रेशम की डोरी का झूला पड़ा हुआ है, उस पर कोई सुन्दरी बैठी झूल रही है। उसको दो सखियाँ झुला रही हैं। शीतल पवन बह रहा है। आकाश से फुइयाँ-फुइयाँ होकर जलबिंदु गिर रहे हैं।

मनीराम उस बाला के रूप को देख कर चकित हो गए, चित्र लिखे-से खड़े के खड़े ही रह गए। उसी समय उन तीनों अल्प-वयस्का सुन्दरियों ने मिल कर ज्योंही मलार राग अलापना आरम्भ किया, त्योंही मनीराम मानो वहाँ रहे ही नहीं। उनका

शरीर तो वहाँ खड़ा था, परन्तु मनीराम अब वहाँ कहाँ !

बोलो मनीराम, बोलते क्यों नहीं, तुम तो यहाँ दिन-भर की जलन शांत करने आए थे, बड़े मग्न होकर इस दृश्य का आनंद ले रहे थे, अब क्या हो गया जो सारी सुध-बुध खो बैठे। तुम एक-टक उस सुन्दरी की ओर देखकर उसके मधुर रूप-रस का निज तृषित नेत्रों द्वारा पान तो कर रहे हो, परन्तु याद रक्खो, उस अनुपम रस में इतने डूब गए हो कि अब तुम्हारा उद्धार नितान्त ही कठिन हो गया है।

उस झूलने वाली का भी ध्यान मनीराम की ओर आकर्षित हुआ, उसने देखा कि कोई मनुष्य चित्रवत् खड़ा है और उसकी ओर एकटक निहार रहा है। गाना बंद करके तुरन्त ही उसने एक ऐसा विषैला तीक्ष्ण कटाक्ष मारा, कि जिसके लगते ही वे चौपट चित्त हो पृथ्वी पर गिर पड़े और बेसुध हो गए।

झुलाने वाली एक सखी ने इस अपरिचित की दशा देख कर अपनी सिरधरी से हाथ जोड़ कर पूछा, कि हे रति रानीजी, आपने किस अपराध पर इस अपरिचित व्यक्ति की हत्या की।

मंद-मंद मुस्कराती हुई वह रमणी, जिसका कि नाम रतिरानी कहा गया था, बोली—"सखी, तुम इसको नहीं जानतीं, मैं भली भाँति पहचानती हूँ। मैं तो इसकी खोज में थी। मैं इसकी हत्या नहीं करूँगी। यह तो अविवेकापुर द्वारा इधर स्वार्थ-मार्ग पर खींच कर ला या गया है, इससे हमको काम है। तुमको ज्ञात है कि

यहाँ पर आजकल देवासुर-संग्राम हो रहा है। उस संग्राम की जड़ यही है। यह जिसकी ओर झुक जाता है, उसी की जीत हो जाती है। लोभासुर व क्रोधासुर तो देवों से हार गए हैं, अब की बार मेरे प्राणनाथ कामासुर ने बीड़ा उठाया है, और मालकिन को भरोसा दिया है कि वे इसको अपनी ओर कर लेंगे। परन्तु स्वामीजी यह काम मेरी सहायता के बिना नहीं कर सकते, इसी कारण मुझे आज्ञा हुई है कि मैं उनकी सहायता करूँ। आज मैंने अपने जालों को यहाँ फैला रक्खा था। यह व्यक्ति, जिसका नाम मनीराम है, और जो कि गढ़-स्वामी का परमस्नेही मन्त्री है, सहज ही खिंच कर यहाँ चला आया है। अब देखो मैं इसे कैसा नाच नचाती हूँ।"

ऐसा कह कर रतिरानी अपने एक कर में गुलाबपाश और दूसरे में एक पंखा लेकर मनीराम के सिरहाने जा बैठी और उनपर गुलाबजल के छींटे मार-मार कर पंखा झलने लगी। मनीराम को कुछ चेत हुआ, तो पीड़ित स्वर में कहने लगे कि, हाय यह क्या हुआ! मेरे हृदय में किसी ने कस कर नयन-शर मारा है। बड़ी गहरी चोट लगी है। अब मैं जीता नहीं रह सकता। यदि वही मारने वाली मुझे दर्शन दे तो आशा है कि मैं बच जाऊँ। जिसने मारा है वही जिला सकती है। धीरे-धीरे उनको विशेष चेत होने लगा। ऊपर दृष्टि की, तो देखा वही झूले वाली उनके ऊपर पंखा झल रही है और समीप ही वे झुलाने वाली भी खड़ी हैं। मनीराम

अब पड़े न रह सके। उठ कर बैठ गए। मुख से कोई शब्द नहीं निकलता था। साहस करते थे कि कुछ पूछें, परन्तु पूछ नहीं सकते थे।

थोड़ी देर बाद रतिरानी ही ने हाव-भाव के साथ कटाक्ष करते हुए मनीराम से कहा, कि आप लेटे रहें, आपकी दशा अच्छी नहीं है। आपको कोई रोग लग गया है। मैं आपके ऊपर पवन कर रही हूँ। जब आप स्वस्थ हो जायँ, आपका जी ठिकाने आ जाय, तब चले जाना। अभी आप जल्दी न करें।

मनीराम मन ही मन कहने लगे, कि "बैरिन आग लगाइ के अब दौड़त जल लैन"; जला कर भस्म तो कर डाला, और कहती है कि तुम्हें कोई रोग लग गया है। कैसी अनजान बनती है। मालूम होता है यह कोई जादूगरनी है, कोई राक्षसी है। फिर इसने मार कर जिलाया क्यों? मार तो डाला ही था, उपचार क्यों करने लगी। अरे नहीं-नहीं मैं मूर्ख हूँ, क्या राक्षसी ऐसी रूपवती हो सकती है। देखो इसके मुख पर कितनी सरलता है, कितना भोलापन है। रूप, यौवन का इतना बड़ा भंडार अपने पास रखती हुई भी कैसी दया पूर्वक मेरे ऊपर पंखा झल रही है। कैसी प्यारी मीठी-मीठी बोली बोल कर मुझमें शक्ति का संचार कर रही है। क्या राक्षसी ऐसी हो सकती है? कदापि नहीं! इसने मुझे नहीं मारा किन्तु मैं ही इसके रूप-मद में पागल हो गया। इसमें इसका क्या दोष है। मेरे अच्छे भाग्य हैं, कि ऐसी रूपवती मुझ

पर दया पूर्वक प्रेम-वर्षा कर रही है। अब मैं इनसे प्रेम-भिक्षा माँगता हूँ। यदि इसने कृपा कर दी, तो निहाल हो जाऊँगा, यहाँ का आना सार्थक हो जायगा।

मनीराम खड़े हो गये, हाथ बाँध कर कहने लगे, कि हे जीव-नाधार, मैं आज न जाने किस शुभ मुहूर्त में यहाँ आया था, जो ऐसी स्नेहमयी देवी के दर्शन मिले। हे प्राणवल्लभे, विशेष क्या कहूँ, मैं सब कुछ भूल गया, मैं तो तुम्हारे हाथ बिक गया, अब मेरे प्राण तुम्हारे वश में हैं। कृपा कर मुझे अपनी सेवा में लेलो। मैं नहीं जानता कि आप कौन हैं, और मुझे यह प्रेम प्रकट करने का क्या अधिकार है; परन्तु क्या करूँ, लाचार हूँ। आप जो कोई हों, आप दयावती हैं, इस दुखिया को अपनालो। आप स्नेहमयी हैं, आप मुझे विमुख नहीं करेंगी। मैं अब इस निधि को नहीं छोड़ सकूँगा।

सहसा मनीराम के ऊपर वज्रपात हुआ। बड़ी आशा से स्नेहमयी समझ कर, वे जिससे प्रेम-भिक्षा माँग रहे थे, उसीने रंग बदल लिया। भृकुटी ऊपर को चढ़ गई, ओठ काँपने लगे, नेत्र रक्त वर्ण हो गये। वही वीणा विनिन्दित स्वर वाली रमणी कुपित होकर कर्कश स्वर में बोली—क्या तुम समझते हो कि मैं तुमको पहचानती नहीं? सुनो, ध्यान पूर्वक सुनो। तुम्हारा नाम मनीराम है, तुम इस गढ़ के राजा के मन्त्री हो। मेरा कर्तव्य था, कि तुमको रोग-ग्रसित देखकर तुम्हारी सहायता

करूँ। वह इस हेतु नहीं कि मैं तुमसे प्रेम करने लग गई हूँ। यदि तुमने ऐसी आशा की है, तो वह तुम्हारा केवल भ्रम है।

मनोराम, क्या तुम अपने को इस योग्य समझते हो, कि कोई भी समझदार तुमसे प्रेम करेगा। क्या पिछली सब बातें तुम इस समय भूल गये। तुम विश्वासघाती हो, कृतघ्न हो। अपनी पिछली करतूतों को स्मरण करो। जिसने तुमसे प्रेम किया, जिस ने तुम्हारे संग भलाई की, उसी के साथ तुमने विश्वासघात किया! क्या तुम लक्ष्मीजी को एकदम भूल गये? उसका तुमने कैसा तिरस्कार किया है! उसने तुमसे प्रेम किया था, तुमको अपनाया था, उसी को तुमने ऐसी बुरी तरह ठुकराया! तुम वेपेंदी के डबुआ हो, तुममें अपने हिताहित सोचने की तो शक्ति ही नहीं है। लोभासुर और क्रोधासुरने तुम्हारे साथ क्या कुछ कम भलाई की थी, परन्तु तुमने उन्हीं से ऐसा मुख फेरा मानो तुम उनको जानते ही नहीं हो। मैं नहीं समझती फिर तुम किस साहस पर मुझसे प्रेम-भिक्षा माँग रहे हो। क्या तुमने प्रेम इसी का नाम रख छोड़ा हैं, कि अपनी स्वार्थ-सिद्धि कर चुकने पर दुत्कार दिया जाय। बोलो, मेरे रूप-मद में मुग्ध होकर कैसी दीनता दिखा रहे हो, फिर क्या मुझे भी नहीं ठुकरा दोगे, और प्रेम के नाम को कलंकित करोगे। अब तुम चेत में हो जाओ, अपना रास्ता देखो। ऐसी बातें तुम किसी अनजान से करना, मैं तुम्हारा रत्ती-रत्ती हाल जानती हूँ, और तुम्हें भली भाँति पहचानती हूँ।

मनोराम इस चोट को न सह सके, फूट-फूट कर रोने लगे, और बोले—जीवनाधार, तुमने कुछ भी मिथ्या नहीं कहा है। परन्तु मैंने न चाहते हुए भी जो कुछ अनर्थ कर डाले हैं, वे सब बेबसी में हो गये हैं। मैं कभी लक्ष्मीजी, क्रोधासुर या लोभासुर का अनादर नहीं करना चाहता था, परन्तु वे सब स्वयं ही देवों के सम्मुख निर्बल हो गये। उनको निर्बल होता देख देवों ने मुझे विवश कर लिया था। मैं देखता हूँ कि तुममें अपार शक्ति है। किस देवी-देवता की शक्ति है, जो तुम पर अपना बल प्रयोग कर सके। और हे प्रिये, तुम्हींने तो मुझे अपने रूप-जाल में फाँस कर बाँध लिया है, उसमें से तुम मुझे कब निकलने दोगी। फिर देवों का क्या बस चलेगा। देवि, मैं तुम्हें क्षणभर भी नहीं छोड़ूगा, मैं सदा तुम्हारे साथ छाया की भाँति फिरा करूँगा। फिर देव मुझे कहाँ पा सकेंगे। यदि तुम भी देवों का भय करती हो, तो मैं समझता हूँ कि तुम्हारे यहाँ कोई भी शक्तिमान नहीं है। यदि लोभासुर आदि रण-स्थल से मुझे छोड़ कर भाग न आते तो मैं कैसे बहकाया जाता? परन्तु वे निर्बल थे, और तुममें अपार शक्ति है। कोई देवी-देवता तुम्हारे सामने नहीं डट सकेगा। जिस-जिस के तुम नयन-शर तक-तक के मारोगी, वही घायल होकर तड़पने लगेगा। इसलिए हे जीवनाधार, मेरे प्राण जाते हैं, तुमने मेरे हृदय में ऐसा कस कर नयन-बाण मारा है, कि उसके खंड-खंड हो गये हैं। अब मेरे प्राण बचाओ, मुझे निराश मत करो।

मनीराम की मन चाहती बातें सुनकर रतिरानी तन कर खड़ी होगई, और इस प्रकार अँगड़ाई लेने लगी, कि उसके अंगों से वस्त्र हट कर सभी विषैले शस्त्र मनीराम के हृदय को बारी-बारी से कौंचने लगे। वह घायल पर घायल होने लगे। कामासुर का बोल बाला हुआ। मनीराम की नाक में रस्सी डाल कर रतिरानी ने दृढ़ता से पकड़ ली, और कहने लगी कि यह तो मुझे मालूम है, कि तुम बहुत शीघ्र बहक जाते हो और बलवान के पक्ष में हो जाते हो, परन्तु प्रेम बलवान वा निर्बल का विचार करना नहीं चाहता। वह प्रेमी से पुकार-पुकार कर कहता है, कि जिस किसी के साथ प्रेम हो जाय वह निर्बल हो या बलवान, रूपवान हो या कुरूप, धनी हो या निर्धन प्रेमी को उसी का हो कर रहना पड़ेगा। तुमने आज मेरे रूप-यौवन के मद में बेसुध होकर प्रेम किया भी और उन्मत्तता में अंधे होकर कुछ काल निर्वाह भी किया; परन्तु जिस समय यह रूप उड़ जायगा, यौवन काल की तरंगों में बह जायगा, तुम सरीखे अस्थिर मनुष्य मुझ अनाथिनी को उस समय ठुकराने में देर नहीं करेंगे। परन्तु प्रेम यह कृतघ्नता, यह निर्दयता नहीं चाहता। यदि तुम प्रेम के सच्चे पुजारी हो, तो अपनी परीक्षा दो। मैं तुम्हारी परीक्षा रण-स्थल में लूँगी। तुम्हें मुझसे विमुख करने के लिये बड़े-बड़े बल लगाये जायँगे, मुझको कुत्सित, निंदित, हानिकारक व विषैली सर्पिणी ठहराया जायगा। यदि तुम वहाँ विचलित नहीं हुए, उस कठिन

परीक्षा में उत्तीर्ण हो गए, तो मैं वचन देती हूँ कि तुमको कंठ का कठला बना कर पहनूँ गी, चरण-भूतरी बना कर रक्खूँ गी। कहाँ तक कहूँ, तुम्हारी बिन दामों की चेरी हो जाऊँगी। ऐसा कह कर उसने फिर एक विषैला कटाक्ष मारा जिससे मनोराम काँपने लगे और तुरन्त ही अचेत हो कर गिर पड़े। उनको वैसी ही दशा में छोड़ वे तीनों गजगामिनी हँसती हुई वहाँ से एक ओर को चली गईं।

२४

रण-स्थल में आज एक असुर पुकार-पुकार कर कह रहा है—'कहाँ हैं ब्रह्मचर्यदेव ? मेरे सामने आवें और मुझको निस्सार तथा निरुपयोगी सिद्ध करें। वह भोले भाले मनुष्यों को यह कहकर बहकाया करते हैं कि मुझ कामासुर की इस मायापुरी में कुछ भी आवश्यकता नहीं, इसको हृदयगढ़ में कभी स्थान न मिलना चाहिए। यदि उनमें कुछ साहस है तो मेरे सम्मुख आकर मेरी निंदा करें और अपना साहस दिखावें।

ब्रह्मचर्यदेव, जो देवों की ओर से उसका सामना करने को आ पहुँचे थे, उसके सम्मुख आकर उत्तर देना ही चाहते थे कि इतने में यात्री की सेना में बड़ा कोलाहल मचा—सब लोग एकत्र होकर अचेत पड़े हुए मनीराम की ओर देख रहे थे।

यात्री ने चेतनदास से पूछा—इनकी यह दशा कैसे हुई ?

चे०—कुछ भी नहीं मालूम। मेरे दो गुप्तचर, जो शत्रुओं की टोह में घूम रहे थे, स्वार्थ-मार्ग के समीप एक उपवन में इसी दशा में पड़ा देख इन्हें उठा लाये हैं। मालूम होता है, इनको कोई रोग लग गया है, जिससे ये संज्ञाहीन हैं। वैद्यराज ने इनको कोई ओषधि दी है और कहा है कि शीघ्र चेत में आजायँगे। इनको कोई मस्तिष्क-विकार हो गया है। वह देखिये अब इनको चेत

हो रहा है, करवट बदली है। उनके मुख से कोई शब्द निकलना चाहता है। देखो, क्या कह रहे हैं—'हाय रतिरानी तू कहाँ है?' देखो, अब तो नेत्र भी खोल दिये! पूर्ण चेत है। अहंकारी ने मनोराम से पूछा-तुम्हारा क्या हाल है? तुम क्या कह रहे हो? तुम्हारी यह दशा कैसे हुई? शीघ्र कहो, हमको चिंता हो रही है।

मनोराम ने आँखें फाड़ कर चारों ओर देखा और बड़े पीड़ित स्वर में कहा—"मुझे कठिन वेदना हो रही है। प्राण निकलना चाहते हैं! रतिरानी कहाँ गई?"

चे०—तुम्हारे कहाँ और किस प्रकार चोट लगी? रतिरानी कौन है? क्या उसीने तुमको पीड़ित किया है?

मनो०—हाँ! हाँ! उसीने। वही मुझको मार कर भाग गई है, वही निरोग भी कर सकती है। वही मारने वाली है, तो वही जिलाने वाली है। उसके पास विष व अमृत दोनों हैं।

'अमी हलाहल मद भरे' स्वेत स्याम रतनार,
जियत मरत झुकि झुकि परत, जेहि चितवत एक बार।'

यही तो उसका विषैला शस्त्र है। भरपूर आघात किया है। एक ही हाथ में काम तमाम होगया, नहीं जानता फिर कैसे जी रहा हूँ।

चे०—मनोराम तुम तो भले खासे चंगे थे! तुम्हें यह क्या हुआ? तुम्हारे कहीं चोट भी तो नहीं देख पड़ती।

मनी०—अरे मेरी पीड़ा को तुम क्या जानो। जब तुम्हारे लगे तब मालूम होगा कि पीड़ा कैसी होती है।

"बिन आपने पैर बिवाई फटे, कोऊ पीर पराई न जानत है।"

ऐसा कहकर वह बड़े कातर स्वर में चिल्लाने लगे—हे रानीजी, दर्शन दो! जल्दी दर्शन दो, नहीं तो यह प्राण-पखेरू इस शरीर रूपी पिंजरे को छोड़ कर उड़ना चाहते हैं! फिर तुम किस की परीक्षा लोगी? तुम्हें हाथ मलकर पछताना पड़ेगा।

मनीराम की यह शोचनीय दशा देखकर अहंकारी ने विवेकानन्द से पूछा कि महाराज, इनकी यह क्या दशा हो रही है? क्या किसी ने इनपर वशीकरण मन्त्र का प्रयोग किया है?

विवे०—तुम्हारा विचार ठीक है, शत्रुओं ने वार करना आरम्भ कर दिया है। वे छिपे-छिपे वार करना खूब जानते हैं। कामासुर ने अपनी स्त्री रति को इनके पास भेज कर इनके ऊपर मोहन अस्त्र चलवाया है। यह उसके रूप पर मोहित होकर मत-वाले हो रहे हैं। इस प्रकार उसने पहले से ही इनको अपनी ओर खींचना चाहा है, क्योंकि अब की वार वही सेनापति बना कर रण-स्थल में भेजा गया है।

वह चाहता है कि मनीराम को खींच, चेतनदास को भी पकड़ ले। फिर बुद्धिप्रकाश को भ्रष्ट कर के तुमको मोह कर यात्री को विवश करदे, जिससे वह अपना आधिपत्य गढ़ में जमा सकें। परन्तु हमको भय नहीं है, यात्री ब्रह्मचर्य देव को भली भाँति जान

चुके हैं। वे मनीराम के हाथ से जाने पर भी ब्रह्मचर्य देव की अकाट्य महिमा को नहीं भूल सकते। भय तो वहाँ रहता है, जहाँ यात्री मनीराम की उचित-अनुचित सभी बातों को अंगीकार कर के उसके वश में हो जाता है। जो यात्री मनीराम के वश में होता है, वह उसकी महिमा को जानता हुआ भी मनीराम के मचलने पर उसके कहने में आ कर चौपट हो जाता है। उसके सामने बुद्धिप्रकाश की भी एक नहीं चलती। चेतनदास भी मनीराम का साथ देने लगता है और तुम भी अहंभाव को भूल मोह में फँस जाते हो।

परन्तु यहाँ वह बात नहीं है, देवता का स्मरण करते रहने से, उनका सत्संग दृढ़ता से पकड़ परहित मार्ग पर दृढ़ता पूर्वक डटे रहने से, हमारा यात्री मनीराम के कहने में कभी नहीं आवेगा। फल यह होगा कि ब्रह्मचर्यदेव विचले हुए मनीराम का आज रणस्थल में उद्धार करेंगे, उसकी दशा सुधारेंगे। वह देखो कामासुर व ब्रह्मचर्यदेव की मुठभेड़ हो रही है। कामासुर स-सेन उपस्थित है, उसके साथ उसकी स्त्री रतिरानी भी है।

मनीराम ने जैसे ही सुना कि 'रतिरानी भी है,' वह एक दम उछल पड़ा और विवेकानन्द के चरणों पर गिर कर बोला—कहाँ है रतिरानी मुझे शीघ्र बताओ। मैं तुम्हारा बड़ा उपकार मानूँगा।

मनीराम फिर उन्मत्त होकर प्रलाप करने लगा, "हाँ! प्राण-प्रिया मिल गईं, वह रहीं।" चेतनदास की ओर देखकर बोला—"देखो

तुमने कैसा वेश बदला है, तुम्हीं तो हो, वाहवा, तुम मेरी परीक्षा ले रही हो, लो खूब लो। तुम्हारा प्रेम दृढ़ हो गया है, मैं कभी नहीं हटूँगा। अब कृपा करके अपना वास्तविक रूप दिखा दो। वही मोहनी छवि, जिसे निहार मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षी भी चित्र-लिखे-से जहाँ के तहाँ खड़े रह जाते हैं। शीघ्र दिखा दो, वाह! वाह! क्या सुघराई है! क्या छवि है! एक-एक अंग कैसा अनोखी सुन्दरता से सुसज्जित किया गया है, जिसको देख कर कमलों के, भ्रमरों के, सुग्गों के, बिंवा फलों के, गजों के, पपीहों के, श्यामघनों के, हंसों के और सिंहों के समूह के समूह लजा कर सामने से भाग जाते हैं। उनको अपनी सुन्दरता का गर्व भूल जाता है। भला मेरी क्या शक्ति है जो ऐसी रूप-निधि को देख आपे में रह सकूँ। प्यारी, तुम अपना वही मोहनी रूप दिखा दो, तुमने मेरी परीक्षा लेने को ? अपना वेश बदला है ? वह तो पूरी हो चुकी। यह तुम्हारा बिना दामों का दास अब कहाँ जा सकता है! किसमें ऐसी शक्ति है जो मुझे तुमसे हटा सके! दयामयी, दया करो।"

विवेकानन्द व बुद्धिप्रकाश की ओर देख कर कहने लगा—"ये ही दोनों तुम्हारी झूला झुलाने वाली सखी हैं। ये भी अपना वेश बदले हैं, अब तुम तीनों अपने-अपने निजी रूप में हो जाओ। प्यारी, वही दृश्य दिखा दो। अहा! हा! वही कदम्ब का वृक्ष हो, रेशम की डोर का उसमें झूला पड़ा हो, दोनों सखी तुम्हें झुला

रही हों, नन्हे-नन्हे जल-बिंदु टपक रहे हों, जल-कण तुम्हारे मुख-कमल पर पड़ कर मुक्ता सदृश चमक रहे हों। तुम्हारी सुरीली तान मलार राग अलाप रही हो। प्यारी मेरी प्रार्थना स्वीकार करो! मैं तुम्हारे चरणों पर गिरता हूँ।"

ऐसा कह कर वह चेतनदास के चरणों पर गिर बिलख-बिलख कर रोने लगा। चेतनदास का हृदय पिघल गया, उसकी कातर दशा देखकर उनके नेत्र छलछला आए।

तुरन्त ही विवेकानन्द ने चेतनदास की ओर कड़ी दृष्टि से देखकर कहा—"रोगी का उपचार करते हो या रोग में वृद्धि करते हो? दृढ़ बने रहो, शत्रु का वार भरपूर हो चुका है, तुम्हारा उसकी ओर इतना ही झुकना अनर्थ कर सकता है। तुम्हारे झुकने से शत्रु एक के स्थान मे दो को पालेगा। यह दया दिखाने का समय नहीं है। बड़ा कठिन युद्ध हो रहा है, शत्रु के पास कैसे-कैसे विकराल आयुध हैं! विशेषकर इस भयंकर शत्रु कामासुर का तो ऐसा पैना शस्त्र है कि एक ही वार में काम तमाम होता है। छोड़ो इस पचड़े को, मनीराम को इसी दशा में रहने दो, युद्ध की ओर ध्यान दो।"

चेतनदास ने देखा कि सम्मुख ब्रह्मचर्यदेव और कामासुर में बतकही हो रही है और कामासुर की बगल में एक स्त्री खड़ी हुई अपनी मोहनी छवि बखेर कर नयन-बाण चला रही है। सहसा मनीराम की दृष्टि उधर पड़ी। वह अपनी सजीवन बूटी को

पहचान कर उधर को दौड़ने लगा। चेतनदास ने उसको कस कर पकड़ लिया, परन्तु वह स्त्री स्वयं ही मनीराम के पास आकर अपने हाथों से एक गेंद उछालने लगी, जिससे उसके पीन पयोधर स्पष्ट झलकने लगे। पवन-द्वारा वस्त्रों के इधर-उधर उड़ने से अन्य अंग भी दृष्टिगोचर होने लगे—अर्थात् एक-एक करके उसके अंग-प्रत्यंग सभी मनीराम को मथने, वेधने और घायल करने लगे। मनीराम उस असह्य वेदना को सहने में असमर्थ होकर छटपटाने लगे। उसके मुख से निकले हुए इन शब्दों ने कि 'मनीराम तुम तो हमारे हो चुके थे', उनके सिर पर और भी वज्र-पात किया। फिर क्या था, भय, अपमान और लज्जा सबको एकदम तिलांजलि देकर उन्होंने इतना बल प्रयोग किया कि चेतनदास को धक्का देकर अपना हाथ छुड़ा, उस सुन्दरी से—जो वास्तव में रति रानी ही थी—लिपट गए। वे बोले—'हाँ! हाँ! प्यारी मैं तो तुम्हारा ही हूँ। तुम्हीं तो मुझे अचेतावस्था में छोड़ कर भाग गई थीं। फिर मैं नहीं जानता कि ये दुष्ट मुझे कब और कैसे उठा लाए, चलो प्यारी वहीं चलो, वह बड़ा रमणीक स्थान है। वहीं तुम मुझे बार-बार मारना और जिलाना, मुझे इसी में सुख मिलेगा।'

चेतनदास मनीराम के खिंचते ही शोक-सागर में डूबने व उतराने लगे। उस सुन्दरी के रूप-लावण्य को बारम्बार निहार नाना प्रकार की विचार-तरंगों में बहने लगे। 'मनीराम ने बड़ी

मूर्खता की है, जो शत्रु-पक्ष के स्त्री-पुरुषों से मिल रहे हैं।' तुरन्त ही विचार पलटा—'मनीराम सरीखा अस्थिर मनुष्य इस रूप को देख आपे में रह सकता है, क्या यह कभी संभव है? क्या देवों में यह सामर्थ्य है कि वे उन्हें सम्हाल सकें?' विचार तरंगों ने फिर पलटा खाया और सोचने लगे—'क्या इसी बात को सोचकर हम कह सकते हैं कि शत्रु, जो हमारा सर्वनाश करने वाले हैं, उनके पक्ष के किसी भी सैनिक से मिलने से हमारा कल्याण हो सकता है। उस मन मोहनी छवि को फिर निहारूँ।' विचारधारा पुनः उल्टी बहने लगी कि 'जब यह मोहनी छवि उनको मथ ही चुकी, उनकी नस-नस में भिद ही चुकी, तो उनका उद्धार होना तो मुझे वंध्या के पुत्र उत्पन्न हो जाने सदृश दीख पड़ता है।'

बुद्धिप्रकाश से बोले—"भाई साहब, समस्या कठिन हो रही है, मनीराम का अधःपतन होते ही मैं भी विचलित होने लगा हूँ, मेरी विचार तरंगें मनीराम को दोषी नहीं ठहरातीं। उनका विवश हो-जाना मुझे उतना ही ठीक जँचता, है जितना सूर्य में उष्णता तथा चन्द्र में शीतलता का होना निश्चित है। देखो, इस सुन्दरी में कैसी तीव्र आकर्षण शक्ति है कि मैं भी विवश हो स्वार्थ-मार्ग पर खिंचा जाता हूँ। मेरे पग डगमगाने लगे हैं।"

बुद्धिप्रकाश बोले—"मैं कितना ही सम्हला रहूँ, परन्तु तुम जिन विचार-तरंगों में बहोगे, तुम्हारी जो तरंगें प्रबल रहेंगी, उन्हीं में मैं भी चक्कर काटने लगूँगा। मेरी निर्णय-शक्ति क्षीण होने

लगेगी। अतः हे चेतनदास, तुम अपनी विचारधारा का प्रवाह पलट दो। मनीराम गया, उसे जाने दो, उसे कभी न कभी लौटा लेंगे। परन्तु यदि तुम्हारा झुकाव इस मोहनी मूर्त्ति की ओर बना रहा तो फिर मुझे भ्रष्ट होते देर न लगेगी। मैं निर्बल हो कर दब जाऊँगा, फिर कहाँ तक विवेकानन्द मुझे सम्हालेंगे। वह देखो, हम सब पर इस मोहनी मूर्त्ति का प्रभाव पड़ते ही अहंकारी भी मोहित हो गया है। वह तो कठपुतली के समान है, हम जिधर झुकेंगे, उसको उधर का मोह होने लगेगा, इसमें रत्ती भर भी संदेह नहीं है। जब हम सब के सब शत्रु-पक्ष की ओर झुक पड़ेंगे तो यात्री का सर्वनाश निश्चित है। चेतनदास तुम सम्हले रहो, अपने विचारों को उधर जाने से रोक लो।"

चे०—मैं वही काम कर रहा था जो तुम मुझे बता रहो हो, पर ऐसा मालूम होता है मानो मनीराम मुझे बलात् ढकेल रहा है। ज्यों-ज्यों मैं विचार-तरंगों को उस ओर जाने से रोकना चाहता हूँ, वैसे ही मनीराम उन तरंगों को धक्का देकर उस ओर मोड़ देता है। इस सुन्दरी की मधुर मुसकान, इसके बदन का भोलापन, इसकी रसीली चितवन इत्यादि नाना भावों के चिन्तवन में लग जाता हूँ। फिर सम्हलता हूँ, शत्रु से जो हानि हो सकती है उनका विचार करने लगता हूँ; परन्तु थोड़ी ही देर बाद फिर धक्का लगता है, विचार बलात् वहाँ से हटा दिए जाते हैं और पूर्व भावों में लगा दिए जाते हैं। अपनी-अपनी भाँति के एक-एक

भाव बारी-बारी से नाचने लग जाते हैं।

वह देखो, अहंकारी इस प्रकार झूम रहा है, जिस प्रकार शराबी प्याले पर प्याला पीकर मतवाला हो जाता है। एक मनीराम के फिसलने से हमारी सबकी यह दशा हो रही है। दैव, क्या होने वाला है! वह कौनसी अशुभ घड़ी थी, जिस घड़ी मनीराम उस उपवन में गए थे! आप तो चौपट हुए, हमारा भी नाश करे देते हैं। हाय! अब तो मैं इतना निर्बल हो गया हूँ कि अपने विचारों को किसी भाँति भी उस ओर से नहीं हटा सकता।

विवेकानन्द ने जब इन सबकी दशा देखी तो उनको उचित जान पड़ा कि यात्री पर दृष्टि डाली जाय। उन्होंने सोचा—"क्या आश्चर्य है कि मन्त्रियों के विचलित होने से यात्री भी मोहित हो जाय। यद्यपि भरोसा है कि वह बहुत कुछ सुधर चुका है, तथापि बुद्धिप्रकाश के भ्रष्ट होने से वह अपनी शक्ति को भूल कर गिर सकता है। मैं उसका मित्र हूँ, मेरा धर्म है कि मैं उसे पहले से ही सम्हाल लूँ।"

विवेकानन्द ने देखा, अहंकारी के झूमते ही यात्री भी किंचित मोहित होने लगा है, तो तुरन्त ही उसकी बाँह पकड़कर एक झटका दिया और बोले—"यात्री सामने देखो।" यात्री ने जो आँख उठा कर देखा तो सत्य का उज्ज्वल प्रकाश दीख पड़ा। उसी प्रकाश में उसने देखा कि मनीराम आदि सब मायारानी द्वारा निर्मित उसी अपनी जननी से पूर्ण प्रेम कर रहे हैं, वे सुन्दरी आदि छलावे

भी केवल मायारानी के अनोखे दृश्य हैं। उन पर उन सबका झुकाव स्वाभाविक हो रहा है। निजी सम्बन्ध होने के कारण वे विवश हो उसी ओर खिंचे चले जा रहे हैं।

मित्र की इस चेतावनी से परम प्रफुल्लित होकर यात्री विवेकानन्द के चरणों पर गिर पड़ा और बोला—"धन्य है! आपने वही बात चरितार्थ की कि—

'संपद् के तो अनेक हितू पर मित्र वही जो बिपत्ति परे को।'

यदि इस समय आप मुझे न चेताते तो निज मन्त्रियों के मोहित होने से मैं भी स्वार्थ-मार्ग की ओर खिंच जाता और परहित-मार्ग छोड़ देता जिससे सब परिश्रम व्यर्थ जाता। अब बताइए मेरा क्या कर्त्तव्य है। मैं अब अकेला रह गया हूँ।"

विवे०—तुम समझ चुके हो कि तुम शुद्ध हो, निर्मल हो, शक्ति-सम्पन्न हो, ये मन्त्रीगण केवल तुम्हारी यात्रा के सहायक हैं। तुम प्रण कर चुके हो कि मन्त्रियों के बहक जाने पर भी उनकी बात न मानोगे। सत्याग्रह करोगे और अपनी यात्रा पूरी करने की धुन में लगे रहोगे। ऐसा देख कर वे झक मार कर तुम्हारी सेवा करने को लौट आवेंगे। ब्रह्मचर्य देव तुमको अटल देख विजय प्राप्त करेंगे, कामासुर के छक्के छुड़ा देंगे। अब तुम दृढ़ बने रह कर युद्ध का तमाशा देखो।

२५

आज रणस्थल में कामासुर अपनी विजय से फूल कर कुप्पा हो रहा है और अपनी स्त्री रतिरानी से इस प्रकार बातें कर रहा है—

कामा०—प्राणप्यारी, मेरी सारी विजय केवल तुम्हारे ही कारण हुई है। तुम्हारे ही रूप-लावण्य पर मोहित होकर मनी-राम खिंचकर हमारे जाल में चला आया। मनीराम ही नहीं चेतनदास आदि भी सहज ही आ सकते हैं। अब गढ़ के जीतने में संदेह नहीं रहा। मैं भली भाँति समझता हूँ कि तुम्हारी अनु-पम सुन्दरता देखकर, देव, दानव, राक्षस, गंधर्व, यक्ष कोई कितना ही बलवान क्यों न हो, योगी, यती, संन्यासी, तपस्वी कितना ही त्यागी क्यों न हो, निश्चय ही पागल हो जायगा। तुम्हीं मेरी शक्ति हो, तुम्हीं मेरा प्रबल अस्त्र हो और तुम्हीं मेरी इस भीषण संग्राम की विजय का मात्र कारण हो।

प्रेम भरी मधुर मुसकान से मुस्कराती हुई, तिरछी चितवन से नयन-बाण चलाती हुई रतिरानी अपने पति कामासुर से बोली—"प्राणनाथ, आप क्या कह रहे हैं? मैं तो केवल साधन मात्र हूँ, सच्ची शक्ति तो आप में है। यदि किसी में आपकी भरी हुई काम शक्ति न हो, यदि उसके शरीर में आपका उदय न हुआ हो, तो

मैं लाख प्रयत्न करूँ, सिर पटक कर मर जाऊँ, कितनी ही सुन्दरता लेकर नाना प्रकार के वस्त्राभूषणों से सजधज कर क्यों न जाऊँ, वह मुझको दृष्टि भर भी नहीं देखेगा। यदि उसमें आपकी शक्ति काम करने लग गई हो, उसके हृदय में आपका उदय हो गया हो, तो मैं बिना किसी प्रकार का शृंगार किये हुए, मैले-कुचैले वेश में कुरूपा बनकर भी जाऊँ, वह आपकी शक्ति द्वारा मदांध होकर मुझे दौड़ कर गले लगावेगा। प्राणनाथ, तुम्हारे बिना मैं निस्सार हूँ, मैं ऐसे हूँ जैसे गंध-हीन पुष्प, दृष्टि-हीन नेत्र।"

कामातुर ने प्रियतमा को आलिंगन कर कहा-"प्यारी, देखो, हम लोगों को ऐसा शक्ति सम्पन्न देख कर भी यह मूर्ख ब्रह्मचर्य-देव हमारा सामना करने आया है। मनीराम आदि जो सहज ही हमारी ओर खिंच कर चले आये, उन्हें हमसे छुड़ाने का साहस कर रहा है। क्या तुम समझती हो कि वह सफल मनोरथ हो सकेगा? जो हो, यह तो युद्ध है। युद्ध में सदा सावधान रहना चाहिये। शत्रु चून का भी बुरा होता है। मनीराम फिसलने के स्वभाव वाला है, पूर्णशक्ति लगाकर उसको पकड़े रहना चाहिये।"

तुरन्त ही ब्रह्मचर्य की ओर लक्ष्य कर के उसने कहा—"बोलो बाबाजी, तुममें क्या शक्ति है जिसके भरोसे तुम मुझसे लड़ने आये हो? तुमने मेरी शक्ति को भी समझ लिया होगा। मैंने एक ही बार में गढ़ के सब मन्त्रीगण खींच कर अपनी तरफ मिला

स्थान में जो घृणित मास के लोथड़े दिखाई पड़ रहे हैं। वह केहरि-कटि कहाँ है, सुडौल नितंब आदि सुहावने मन लुभावने अंग प्रत्यंग सब कहाँ चले गये! सभी के स्थान में अस्थि के ऊपर बेढंगा चाँम थपथोरा हुआ दीख पड़ रहा है। उनमें अब वह सुघराई, लुनाई, लुभावनी शक्ति नहीं रही है। रूप-रंग सब उड़ गया है, चमक-दमक सब छिप गई है। मनीराम को किसी-किसी अंग में घृणित दुर्गन्ध भी आती हुई मालूम पड़ी, जिससे उनकी नाक सड़ी जाती थी। अनेक अंगों के छिद्रों से मल भी निकलते देखा, जिससे उनकी भयानकता और भी बढ़ रही थी। यह सब कुछ देखकर मनीराम उसके चरण छोड़ दूर जा खड़े हुए।

मनीराम को अपने पास से हट कर दूर खड़ा देख रतिरानी ने संकेत से उनको अपने समीप बुलाया, परन्तु वे उसके पास जाने से ठिठके, क्योंकि एक तो उसके शरीर में से दुर्गन्ध आ रही थी, दूसरे उसमें अब वह रूप-लावण्य नहीं रहा जो विवश कर के उनको वहाँ खींचता।

यह दशा देख वह स्त्री कातर स्वर में कहने लगी—"मनीराम क्या तुम मुझसे रुष्ट हो गये? रूठ कर यहाँ से क्यों चले गये, और बुलाने से भी नहीं आते!" मनीराम बिल्कुल चुप थे और उस भयावनी मूर्ति के दर्शन से भी उनको अरुचि हो रही थी। सहसा उनकी दृष्टि उसकी एक सखी पर पड़ी, जो वहाँ से कुछ हट के खड़ी थी। कामासुर ने तुरन्त ही एक बाण उनके खींच
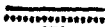
कर मारा। वे बाण-विद्ध होकर फिर गिरे और उस रूपवती सखी के आलिंगन को लालायित हुए। वैसे ही सत्य ने निज प्रकाश उस सखी पर भी डाला, जिससे उसके शरीर की भी ठीक वही दशा उनको दिखाई देने लगी, जो रतिरानी के शरीर की दीख रही थी। काम-बाण से बिंधे हुए वे वहाँ से हटकर ज्योंही दूसरी ओर देखने लगे त्योंहीं वहाँ दूसरी सखी दिखाई पड़ी और कामाग्नि प्रज्वलित होने के कारण वे दौड़ कर उसके पास पहुँचे। परन्तु वहाँ भी सत्यदेव के पहुँच जाने से वही भयावना दृश्य होगया। वे तीनों ही घोर भयावनी हो रही थीं और स्वयं दौड़-दौड़ कर मनीराम के पास आती थीं। परन्तु वे भय और घृणा से भागते फिरते थे।

यह कौतुक देखकर चेतनदास भी चेत में आगये और बुद्धि-प्रकाश की भी बुद्धि ठिकाने आगई। कामासुर ने यह चरित्र देख, गर्ज के कहा-"यहाँ पर मेरा युद्ध इस समय ब्रह्मचर्यदेव से हो रहा है, बीच में सत्यदेव क्यों बुलाये गये ? तुम अधर्म युद्ध कर रहे हो, झूठे गाल बजा कर धर्म की दुहाई दिया करते हो।"

ब्र०—हमारा सब काम उजागर होता; हम सम्मुख युद्ध करते हैं। तुम छिप-छिप कर वार करते हो, तुमने पहले से ही छिपकर तमासुर को भेज रक्खा था। उसने थूक, खखार, और लार भरे मुख में झूठा अमृत का नक़शा दिखाया था, मास के लोथड़ों में रंगसाजी कर दी थी। कहाँ तक कहें, जिस तमासुर ने मल-

मूत्र भरे, विषैली व्याधियों को उत्पन्न करने वाले स्थलों को अमृत का सागर बता कर मनीराम के नेत्रों में पर पर्दा डाल दिया था, उसी की शुभ करतूतों को उजागर करने ही के लिये हमें सत्यदेव की आवश्यकता हुई। न्यायदेव का ऐसा ही विधान हुआ। हम अधर्मासुर का सहारा क्यों लेंगे ? वह तो तुम्हारे पक्ष का है। हम तो धर्मदेव के बल पर लड़ते हैं।

मनीराम आदि, जो सत्य के प्रकाश में रति रानी आदि को घृणित दृष्टि से देखने लग गए थे, अपनी मूर्खता पर मन ही मन लज्जित होकर, ब्रह्मचर्यदेव की ओर खिसक आए और हाथ जोड़ कर बोले—'महाराज आपने हमारे मोह की जड़ उखाड़ दी, कृपा कर समझाइए कि यह क्या चरित्र था ?'

देवताजी ने मुस्कराते हुए कहा—"इस मायापुरी में तुम सब सत्यदेव को एक दम भूल जाते हो, यहाँ पर तुमको लुभाने के लिए सारहीन पदार्थों पर क़लई पोत कर कपट चातुरी खेली जाती है। तुम जानते हुए भी अनजान बनकर सदा अपना अहित करते रहते हो। यात्री के सावधान रहने से तुमको सत्य का उज्ज्वल प्रकाश प्राप्त हो सका, जिसमें कामासुर की सारी करतूत स्पष्ट हो गई। तुमने उसी प्रकाश में देखा होगा कि उसके अस्त्र कितने भद्दे हैं—हड्डी-मांस के बने हुए शरीर के अनेक छिद्रों में भरे घृणित थूक, खखार, लार, मल व मूत्र जिनसे कि तुम रात-दिन घृणा करते रहते हो, वही उसके शरीर में भरे हैं।

उन सब को छिपा कर ऊपर से श्वेत श्याम रंगों से क़लई करके तुमको ऐसा लुभाया कि तुम अपने ही को भूल गए। अपने हिताहित का कुछ भी विचार न कर सके।

मनीराम तुम इसी रतिरानी के, दासानुदास बन गए थे, जो तुम्हारे सामने ज्यों की त्यों खड़ी है। केवल ऊपर की रंगसाजी नहीं रही है, पोती हुई क़लई धुल गई है, उसके शरीर के सारे छिद्र जिनके ऊपर तुम उपमाओं की भरमार कर रहे थे, ज्यों के त्यों हैं, केवल रंग नहीं रहा है। सत्यदेव ने भीतर की दशा दर्शाने ही को ऊपर का रंग धो डाला है। यदि तुम वास्तव में रतिरानी ही से प्रेम करते होते तो, अब उससे अपनी खुशामद कराने पर भी क्यों भागते फिरते? परन्तु तुम तो रतिरानी पर नहीं रीझे थे, तुम रीझे थे केवल रंगसाजी पर। तुम उसके प्रेम में मतवाले नहीं हुए थे, तुम मतवाले हुए थे केवल रंग-रूप पर, उसकी चटक-मटक पर। उसी को कामासुर ने अपना अस्त्र बनाया था। मनीराम को तो उसने अपने कामजाल में फांस ही लिया था, चेतनदास, तुमको क्या हो गया था, तुम तो सदा सावधान रहा करते थे, तुम विना सत्य का सहारा लिए मनीराम के साथ-साथ क्यों खिंच गए? तुम बनावटी रूप के चक्कर में पड़ कर अपनी विचारधारा को उल्टा क्यों बहा ले गए? बुद्धिप्रकाश भी भ्रष्ट हो गए, सत्य से कोसों दूर हट गए।

विवेकानन्द का उपदेश है कि इस मायापुरी में एक पग भी आगे

रखने से पहले सत्य का प्रकाश प्राप्त कर लो, वह सब व्यर्थ हो गया! कामासुर चाहें कितना ही बल लगाता तुम यदि परहित-मार्ग पर डटे रह कर सत्य को पुकार, उनकी सहायता प्राप्त कर लेवे, तो तुम कभी स्वार्थ-मार्ग पर खिंच कर मोहित न हो जाते। उनकी क्या सुन्दर हितकारी शिक्षा थी, कि प्रलोभन सम्मुख होते ही सत्य के प्रकाश में उसकी वास्तविकता पर दृष्टि डाल लो, तब पग बढ़ाओ, तुम उसे भूल गए। तुम कह सकते हो कि हमको मनीराम खींच ले गया। हम कहते हैं कि मनीराम के मचलने पर भी तुम्हारी चेतनता अवश्य काम कर रही थी। बुद्धिप्रकाश की बुद्धि अवश्य निर्णय करने को तैयार थी। विवेकानन्द कहीं भाग नहीं गए थे—बारम्बार संकेत कर रहे थे। फिर भी तुमने मनीराम के कहने से, निज शक्ति को भूल, विवेकानन्द को तिरस्कार कर घोर मूर्खता से अपने को इस स्त्री के रूप-जाल में फँसा ही तो दिया, इसी से तुम स्वार्थ-मार्ग पर खिंचे चले गए।

चेतनदास, क्या तुम्हें उचित नहीं था कि अपने स्वामी के हित के लिए सत्य का उज्ज्वल प्रकाश प्राप्त करते तब मनीराम के पीछे चलते। परन्तु तुमने वैसा न कर के घोर अपराध किया है। तुम दोनों स्वामी को मुख दिखाने के योग्य भी न रहे। अहंकारी भी, जिसको यात्री इस मायापुरी में अपना प्रतिनिधि समझता है और जिसके कि भरोसे वह यहाँ भ्रमण कर रहा है, तुम्हारे साथ खिंचा चला गया। यदि वह तुम्हारे भरोसे निजी शक्तियों

को भूला रहता, अपने वास्तविक रूप से परिचित न हो गया होता, तो उसकी आज क्या दशा हो गई होती। तुम लोग विश्वास-घात करके उसको नष्ट किए बिना न रहते। मैं प्रसंशा करता हूँ उसके सत्याग्रह की, वह अटल था। फिर ऐसी दशा में मित्र विवेकानन्द उसका साथ कब छोड़ सकते थे? वे उसके सच्चे हितैषी मित्र थे, तुम सरीखे स्वार्थी पामर नहीं थे। तुम्हारी अनुपस्थिति में, वे बराबर उसको उसकी शक्ति का स्मरण कराते रहे, जिससे वह अपने सत्याग्रह पर दृढ़ रहता हुआ तुम लोगों की सहायता से वंचित होने पर भी, तुम्हारे विश्वासघात करने पर भी, विचलित नहीं हुआ। तुम्हारी सारी शेखी देख ली गई, तुम्हारे प्रण-पालन का, तुम्हारे कर्त्तव्य-पालन का, तुम्हारे साहस का व तुम्हारी शक्ति का सब अन्दाज़ मिल गया।

यात्री को जान लेना चाहिए, कि जो यात्री केवल तुम लोगों के ही भरोसे—चाहे तुम कितने ही सुसंस्कृत क्यों न हो गए हो, चाहे तुम कितने ही भरोसे क्यों न दिला रहे हो, चाहे तुम प्रणों पर प्रण क्यों न कर चुके हो—इस मायापुरी में अपने गंतव्य स्थान पर पहुँचने के लिए भ्रमण करेगा, वह कदापि सफल मनोरथ न हो सकेगा। क्योंकि तुम सब भी तो माया-कृत हो। तुम्हारा निज जननी के चक्कर में आ जाना अस्वाभाविक नहीं है। जो यात्री अपने और तुम्हारे इस भेद को नहीं समझता, वह अपने आस्तित्व को भुला कर तुम्हारे कर्त्तव्य को ही अपना

कर्त्तव्य समझने लगता है। चतुर यात्री को सदा तुम पर अंकुश रखना चाहिए, जिससे तुम स्वेच्छाचारी न बन जाओ। यात्री केवल अपनी ही शक्ति से इस एक कामासुर तथा ऐसे लाखों कामासुरों को पराजित कर के भगा सकता है।

वारुणी

२६

मनीराम आदि घोर पश्चात्ताप करते व मूर्खता पर लजाते हुए ब्रह्मचर्यदेव के सम्मुख बैठे हैं, और कामासुर के बनावटी काम-जालों को सार हीन समझ कर निंदनीय दृष्टि से देख रहे हैं। अकस्मात् मनोराम ने देखा कि एक स्त्री अपने एक हाथ में बोतल और दूसरे में एक काँच-पात्र लिए हुए उनके सम्मुख खड़ी हुई मुस्करा रही है।

मनीराम ने उस स्त्री से पूछा कि तुम कौन हो, और तुम्हारे हाथों में यह क्या है ?

स्त्री—मेरा नाम सुरादेवी है, मैं देवराज इन्द्र के यहाँ रहती और देवताओं को वारुणी पिला कर उनके हृदय को सदा प्रफुल्लित रखती हूँ। और भी जो दुखित हृदय मनुष्य मेरी शरण में आते हैं उनको भी देव-प्रिया वारुणी पिला कर उनका शोक सन्ताप हरती रहती हूँ। वही सुमधुर मदिरा लेकर मैं आप लोगों के समक्ष उपस्थित हुई हूँ, क्यों कि आप भी इस भीषण संग्राम में असुरों द्वारा सताये हुए खिन्न हृदय हो रहे हैं। सो लीजिए, यह अमृत-संजीवनी सुरा पान कर के अपने हृदय को प्रफुल्लित कीजिए और अपनी विजय पर आनन्द मनाइए।

ऐसा कह कर उसने बोतल में से उड़ेल कर गिलास भर

मनीराम को देने के लिए हाथ बढ़ाया ही था कि विवेकानन्द ने टोका-"उसमें मादकता है, इसको पीकर पगले हो जाओगे, अचेतावस्था में फिर तुम्हें कुपथ पर जाने में देर नहीं लगेगी।"

मनीराम ने कहा कि "यह तो देव-प्रिय सिद्धि है, इसको पान करने में क्या खटका है।" उसके हाथ से गिलास लेकर वे तुरंत ही पी गये। वह स्त्री वहाँ से चली गई।

इधर कामासुर ने अपने संगी तमासुर से कहा, कि अब तुम अपना काम करो, मैंने अपना वारुणी अस्त्र छोड़ कर मनीराम को अचेत कर दिया है। ब्रह्मचर्य देव की चिकनी चुपड़ी बातों में आ कर वह हाथ से निकला जाता था, तुम अब प्रकाश को छिपा लो।

तुरन्त ही तमासुर ने सत्य रूपी प्रकाश पर आवरण डाल दिया, जिससे प्रकाश के छिपते ही रंग-भूमि का दृश्य एक दम बदल गया। यह परिवर्तन होते देर नहीं लगी। रतिरानी आदि जो मनीराम को घृणित और सारहीन जच रही थीं, उनको अब पूर्व से भी अधिक रूपवती, यौवन मद माती दीखने लगीं, क्योंकि वह सुरादेवी द्वारा प्रभावित हो चुके थे।

यह रंगत देख कामासुर ने अपने धनुष पर रखकर फिर एक पुष्पवाण मनीराम के मारा जिसके लगते ही मनीराम विकल हो उठे। काम-पीड़ा सताने लगी, वही सुरादेवी उनको पुनः दृष्टिगोचर हुई। उनको सुरा की अधिक लालसा होने लगी।

सुरादेवी, नहीं-नहीं, राक्षसी ने गिलास पर गिलास भर-भर कर उनको पिलाए। फिर क्या था मनीराम चौपट चित्त हो गये। चारों ओर निगाह की, तो देखा कि वहाँ केवल रतिरानी ही नहीं थी, वरन उसको भी अपने रूप व यौवन से लजाने वाली अनेक षोड़षी बालाएँ चतुर्दिक उनको घेरे खड़ी थीं। जिधर वे दृष्टि उठा कर देखते थे उधर ही कोई तरुणी बाला कटाक्ष करके नयन-शर चला रही थी। मानो वह रण-स्थल इन्द्र की अप्सराओं का क्रीड़ा-स्थल बन रहा था।

सहसा उसी समय उन कलकंठी अप्सराओं ने वीणा विनिंदित स्वर में सुरीले वाद्यों के साथ स्वर मिला कर अनेक राग-रागिनी अलापने आरम्भ कर दिये। इधर वसंत ऋतु ने वृक्षों पर नाना प्रकार के सुगंधित पुष्पों का दृश्य दिखाकर वसंती छटा का यौवन बखेर दिया—अर्थात् कामासुर ने उस समय अपने अस्त्रों को प्रयोग में लाकर मनीराम को पूर्णतः नाथ लिया। उनकी दशा एक दम विक्षिप्तों जैसी हो गई। वे उनको वास्तविकता को विस्मरण कर उनकी यौवन तरंगों में पुनः बहने लग गये। "अहा हा! क्या ही स्वर्गीय सुख है क्या इससे भी अधिक कोई आनन्द हो सकता है!" वे मन ही मन कहने लगे।

इतने ही में वे सुन्दरी उनके निकट आ उन्हें घेर कर खड़ी होगईं। कोई उनका कर मर्दन करने लगी, कोई मुख चुम्बन करने लगी और कोई गले में हाथ डाल कर आलिंगन करने को उन्हें

खींचने लगी। परन्तु रतिरानी ने आकर सबसे कहा-"ठहरो, इनसे बात मत करो, हम सब तो घृणित हैं, इनको हमारा सहवास कब सुहायगा। चलो सब यहाँ से भाग चलो, वह देखो इनका गुरु घंटाल ब्रह्मचर्यदेव इनको अपने पास बुला रहा है। कहो मनीराम, तुम उनके पास जाकर उनके चरण दबाते हो या हमारे साथ रह कर इस सरोवर में जलक्रीड़ा कर के स्वर्गीय सुख लूटना चाहते हो।" ऐसा कह कर वह तन कर खड़ी होगई, जिससे उसके अंग-प्रत्यंग सब दिखाई पड़ने लग गए।

मनीराम दौड़ कर उसके चरणों से लिपट गए और बोले—"प्यारी क्षमा करो, मैं अब ऐसी भूल नहीं करूँगा। तुमसे विमुख कभी नहीं होऊँगा, तुम्हारे सहवास से परे अन्य सुख हो ही नहीं सकता।"

इस प्रकार मनीराम को अपने चंगुल में फसा कर कामासुर ब्रह्मचर्यदेव के सम्मुख आ ललकार कर कहने लगा—"बोलो देवताजी, अभी और कुछ शक्ति तुम में शेष रही है, क्या तुम्हें अब भी भरोसा है, कि मनीराम तुम्हारी ओर खिंच सकेगा। मैं प्रण करके कहता हूँ, जिस समय मेरे अस्त्र चल जायँ, तुम सिर पटक के मर जाओगे पर वह तुम्हारी ओर जा ही नहीं सकता। मुझे कुपित करके तुम उसे फुसलाना चाहते हो, यह तुम्हारी कितनी बड़ी मूर्खता है। देखते हो तमाशा, कैसा नाच

नचा रहा हूँ जैसे बाजीगर बंदर को नचाया करता है। मेरे अस्त्र बाजीगर की लकड़ी के समान हैं। वशीकरण मन्त्र का फूँकने वाला मैं हूँ। मैं जब मन्त्र फूक देता हूँ—अर्थात् उसमें उद्दीपन-शक्ति भर देता हूँ, तब ये अस्त्र भी काम करने लग जाते हैं। बिना उस शक्ति के भरे ये सब निष्प्रयोजन हैं। अब मैं दूसरा खेल करता हूँ—अर्थात् मनीराम में केवल अपनी ही शक्ति भरी रहने देकर अपने अन्य सब अस्त्रों को अंतर्हित कर लेता हूँ। तब तुम उस पर अपना बल लगाना, देखूँ तुम में कितना बल है।

उसी समय यह परिवर्तन हुआ, कि वह कामिनी-समुदाय वहाँ से विलीन हो गया, केवल मनीराम अकेला ही रह गया। मनीराम ने ज्योंही देखा कि वहाँ कोई भी सुन्दरी नहीं है, त्योंही वह बुरी तरह रोने लगा और कहने लगा कि, हाय, मेरा सुख किसने छीन लिया, हाय वह स्वर्ग-सुख कहाँ विलीन होगया। अरी प्राणप्रिया, मुझे शीघ्र दर्शन देकर मेरा दुख दूर करो। तुमने तो कहा था कि तुम मेरे साथ जलक्रीड़ा करोगी, पर न जाने मुझसे ऐसा क्या अपराध हुआ जो तुम सहसा मुझे छोड़ कर चली गई।

कामासुर ने तुरन्त ही वहाँ प्रकट होकर मनीराम से कहा, कि वास्तव में तुमने रतिरानी का अपराध किया था, जो तुमने इस मूर्ख बाबाजी के कहे में आकर उससे घृणा की थी। अब क्यों उसके विरह में प्राण दिए देते हो? वास्तव में तुम इस योग्य नहीं

हो कि कोई भी स्त्री तुमसे प्रेम करे। जाओ इस लँगोटी बाबा के पास और इसके पैर धो-धो कर चरणामृत पिया करो। जो रति-रानी का चित्र इसने तुम्हें दिखाया था, उसी का अब बारम्बार स्मरण कर लिया करो। उसकी मनोहारिणी छवि, उसका उमड़ा हुआ यौवन, तुम्हारे किस काम का है।

वाह बाबाजी, धन्य हो, मनीराम सरीखे मनचले को कैसा उल्लू बनाते हो! और इसकी मूर्खता का भीकुछ ठिकाना है? मूर्ख यह नहीं समझता कि वह कौनसी वस्तु है, जो मूल में घृणित नहीं होती। मैं घृणा शब्द का प्रयोग करना नहीं चाहता था, पर इन्हीं के शब्दों में कह रहा हूँ, कि मूल में सब वस्तुएँ घृणित होती हैं।

कुम्हार ने एक मिट्टी का खिलौना बनाया है, देखने में कैसा सुन्दर है, उसकी गढ़ंत कैसी मनोहारिणी की गई है, उसमें क्या ही सुन्दर चमकीले नेत्र बनाये हैं, कैसा मुस्कराता हुआ मुखड़ा है, सभी अंग एक-एक करके ऐसे सुडौल गढ़े गये हैं, कि देखकर मन प्रसन्न हुआ जाता है। जो देखता है वही कुम्हार की प्रशंसा करता है। मनीराम सोचो तो सही, यह सुन्दर खिलौना, जिसका रूप-रंग ऊपर से ऐसा सुशोभित कर दिया गया है, वास्तव में है क्या। मूल में यह क्या है। यदि इसका ऊपरी रूप-रंग मिटाकर इसकी गढ़ंत बिगाड दी जावे, तो वास्तव में यह क्या ठहरता है। तुम देखोगे कि वहाँ केवल मिट्टी ही मिट्टी शेप रह जायगी, जो देखने में भद्दी और कुडौल जचेगी, जिसको देखकर कोई भी

प्रसन्न न होगा। वह मिट्टी कहाँ से आई है, कैसी है, यदि इस पर विचार करोगे तो जानोगे कि किसी अपवित्र स्थान में पड़ी हुई मल-मूत्र में सनी हुई मिट्टी कुम्हार कहीं से उठालाया होगा, उसी से यह विचित्र कारीगरी की गई थी।

अब यदि तुम उस खिलौने की सुन्दर कारीगरी को देखकर उसकी वास्तविकता को स्मरण करने लगो, तो तुम घृणा करने लगोगे। किससे, मिट्टी से या कारीगरी से? उसकी भीतरी दशा पर ध्यान दोगे, या उस समय की बनावट पर रीझोगे। उस समय जब तुम उस सुन्दर खिलौने को देख कर प्रसन्न हो रहे हो, क्या तुमको उसके भीतरी कुडौल पन के स्मरण करने की आवश्य-कता प्रतीत होने लगेगी? ऐसा करने से क्या तुम बुद्धिमान कहला सकोगे? जाने दो इसको; मैं तुमसे पूछता हूँ, तुम्हीं वास्तव में क्या हो। ठीक वही दशा जो तुम इन अप्सराओं में देख रहे थे क्या तुम्हारी भी नहीं है? तुम्हारे शरीर के भीतर भी तो रक्त, माँस, पीव, थूक, खखार लार आदि भरे पड़े हैं। क्या तुम स्वयं को भी कभी घृणित दृष्टि से देखते हो, और संसारिक सुख भोगते समय क्या भीतरी घृणित वस्तुओं का स्मरण करने लगते हो। क्या स्वयं से भी दूर भागने लगते हो। जब तुम्हारी व उनकी सब प्रकार एक सी दशा है तब तुम एक से घृणा और दूसरे से प्रेम कैसे कर सकोगे। रतिरानी के शरीर की भीतरी दशा को स्मरण करके उसकी मनोहारिणी छवि का निरादर करना पागल

पन नहीं तो क्या है ? यह ब्रह्मचर्यदेव तुमको कैसी निर्मूल युक्ति से बहका रहा है, क्या तुम यह बात समझ रहे हो ?

ब्रह्मचर्यदेव मनीराम से कहने लगे, कि मनीराम तुम जानते हो यह कामासुर वास्तव में क्या काम करता है। इसको दृष्टांत से समझो—पाकशाला में भोजन पकाने के लिये चूल्हे में यथोचित ईंधन रखकर मात्रानुसार अग्नि जलाई गई, और उससे सब पदार्थ उचित रीति से तैयार किये जा रहे हैं। उसी समय किसी ने उस अग्नि में तेल या घी के छींटे मार-मार कर अग्नि को अधिक मात्रा में प्रज्वलित कर दिया, तो वह कुपित अग्नि चारों ओर फैलकर भोजन को ही नष्ट-भ्रष्ट नहीं कर देगी, किन्तु अन्य वस्तुओं को भी जलाकर भस्म कर डालेगी। ठीक यही काम कामासुर तुम्हारे साथ करता है। जो तुम्हारी निजी वीर्य रूपी कामशक्ति रस-रस से काम करती हुई तुम्हारे शरीर के अंग-प्रत्यंगों की पुष्टि करने वाली है, उसी को यह असुर अधिक मात्रा में उत्तेजित करके उसका तुमसे दुर्व्यवहार कराता है, और फिर अपने अस्त्र रतिरानी को तुम्हारे सम्मुख करके, तुम्हारी विचार शक्ति का हरण कर लेता है। क्योंकि कि तुम उन घातक अस्त्रों पर ऐसे मोहित हो जाते हो जैसे पतंग अपने काल दीपक पर। कारीगर की गढ़ंत पर प्रसन्न होना दूसरी बात है। उस प्रसन्नता में पागलपन थोड़े ही मिला रहता है। पर यहाँ तो तुम ऐसे उन्मत्त हो जाते हो कि अपनी प्यारी विचार शक्ति को ही

सर्वथा गँवा बैठे हो।

मैं कहता हूँ, कि तुममें यदि इसकी भरी हुई उत्तेजना न हो और फिर तुम सुन्दर स्त्रियों को देखो तो तुम कारीगर की कारीगरी पर अवश्य प्रसन्न हो सकते हो, परन्तु मदांध नहीं हो सकते। तुमने उस समय रतिरानी के रूप-रंग को, उसके शरीर की बनावट को कारीगर की चातुरी पर ध्यान देकर थोड़े ही देखा है, तुमने देखा है उसमें उस काम-विष को, जो तुम्हारे शरीर की रग-रग में व्याप्त हो कर तुम्हारा सर्वनाश करने वाला है। सत्य ने अपने प्रकाश में तुमको यह तो समझाया था, कि यह जो सब स्वांग देख रहे हो, वह ऊपरी अस्थिर ठाठ-बाट है। केवल कारीगरी की हुई ऊपर की रंग साजी है, यह वास्तविक नहीं है। धोखा मत खाओ, पागल मत बनो। उनका यह कहना नहीं है कि कारीगरी को देख कर प्रसन्न मत हो। नहीं, उसको अवश्य सराहो क्योंकि रूप स्वयं विष नहीं है, रंग विष नहीं है, अंग-प्रत्यंग की गढ़न्त विष नहीं है, परन्तु काम-विष मिल जाने से वह विष हो जाता है, जिसको पान कर पागल बन जाते हो। इस समय तुम्हीं इसका प्रमाण हो।

एक बार इस घातक विषको सत्य देव ने तुम्हारे शरीर से निकाल दिया था, परन्तु फिर कामासुर ने तुम पर प्रहार कर के दूसरी बार तुम्हारे शरीर में वही विष प्रविष्ट कर दिया। अब तुम रो रहे हो, विलाप कर रहे हो, रतिरानी के नख-शिख का

बारम्बार स्मरण कर रहे हो। किसलिए, अपनी प्रज्वलित कामाग्नि को रतिरानी द्वारा शान्त करने के लिए ही न?

क्या तुम स्वयं यह विचार नहीं कर सकते, कि तुम जो रति-रानी के रूप पर मुग्ध हो रहे हो उसका कारण क्या केवल उसकी सुन्दरता ही है। क्या उसमें तुमको काम-पीड़ा का अनुभव नहीं हो रहा है। अच्छा बताओ तुम्हारा ही बालक अत्यन्त सुन्दर है, उसकी सुन्दरता देख कर तुम्हारा रोम-रोम प्रसन्न हो रहा है, परन्तु क्या इस प्रसन्नता में तुमको नाम मात्र को भी वेदना होती है। और उसके विपरीत रतिरानी की सुन्दरता में तो ऐसी मादकता भरी हुई है, ऐसी घातक शक्ति भरी हुई है, जो तुम्हारे रोम-रोम में भिद कर तुमको पीड़ित कर रही है। उसमें वह हालाहाल विप भरा है जो तुम्हारे शरीर में प्रविष्ट हो कर दाहकता उत्पन्न कर रहा है। किसी ने कहा भी है कि,

अहि-विष तो काटे चढ़े यह चितवत चढ़ि जाय।
ज्ञान ध्यान अरु धर्म को जरा मूल से खाय॥

तुम भी इस समय उसकी विरहाग्नि में जले जा रहे हो, फुके जा रहे हो, तड़प रहे हो, अचेत हो रहे हो, यहाँ तक कि अपनी अमूल्य विचार शक्ति को सर्वथा गँवा बैठे हो—अर्थात् किसी अर्थ के नहीं रहे। सत्य के प्रकाश में नेत्र खोल कर देखो, क्या से क्या हो हुए जारहे हो। संसार तुमको तुम्हारी इस नादानी पर घृणित दृष्टि से देख रहा है, तुम्हारी मूर्खता की हँसी कर रहा है।

कामासुर जो यह सब बातें ध्यान पूर्वक सुन रहा था, बोला—"बस बाबाजी लगा चुके अपना बल। मैं समझता हूँ कि तुम मनीराम को टस से मस भी नहीं कर सके। वह रँग जिस में वह रँगा जा चुका है, तुम्हारे लाख धोने पर भी नहीं मिटाया जा सकता। यद्यपि मैंने निरस्त्र हो कर तुमको अवकाश दिया था, कि तुम अपना वार करो, परन्तु तुम इस दशा में भी सफल नहीं हुए, तो भला जब मैं सशस्त्र वार करूँगा उस समय तुम्हारी क्या शक्ति है कि तुम जीत सको।"

बात यह है कि तुम्हारे पास धरा ही क्या है। लँगोटिये बाबाजी हो कर तुम केवल त्याग ही का उपदेश दिया करते हो। त्याग काहेका, उस वेदना मिश्रित विचित्र आनन्द का, जिसको प्राप्त कर पशु-पक्षी भी, जिनको कुछ भी ज्ञान नहीं है, अन्य सब सुख भूल जाते हैं।

तुम क्या जानो, तुमने तो सदा त्याग ही किया है, और उसी का दूसरों को भी पाठ पढ़ाया करते हो। परन्तु जिस किसी ने भी उस आनन्द का अनुभव किया है वह मेरा परम भक्त बन गया है। सदा मेरा शरणागत हो कर रह रहा है। फिर तुम उसी को उसआनन्द के त्याग का उपदेश देकर अपनी घोर मूर्खता प्रकट करते रहते हो। संभव है जिसने कभीमेरी शरण में आकर उसका अनुभव न किया हो, अथवा जिसके हृदय में कभी मेरा अंकुश जमा ही न हो, उस पर तुम्हारा मन्त्रोपदेश काम कर जाय,

परन्तु जिसने उस अनोखे आनन्द का एक बार भी रस पान कर लिया है, उसके लिए तुम्हारे कपोलकल्पित उपदेश केवल अरण्य-रोदन के समान ही हैं।

तुम मनीराम से कहते हो कि मैं वह विषधर काला सर्प हूँ, जिसके डसे का मन्त्र ही नहीं। फिर वृथा क्यों झाड़ फूँकार कर के अपना समय नष्ट करते हो। अच्छा है कि तुम यहाँ से भाग जाओ, क्योंकि मनीराम कष्ट उठाने पर भी उस आनन्द की आशा को कदापि त्याग नहीं कर सकेगा।

जब साधारण सुख का इच्छुक भी बिना कष्ट उठाए उसको प्राप्त नहीं कर सकता, तो ऐसे सुखों के सार—अटूट सुख, घटाटोप सुख की प्राप्ति के लिए यदि मनुष्य पृथ्वी के सम्पूर्ण कष्टों को सहन करता हुआ भी, तीव्र वेदना सहता हुआ भी, उसकी आशा में लालायित बना ही रहे तो क्या आश्चर्य है। इसमें अपूर्वता यह है कि इतनी कठिन वेदना होने पर भी प्राणी उस आनंद का स्मरण करके उस वेदना ही में आनन्द का अनुभव करने लगता है और उस वेदना को वेदना ही नहीं समझता। फिर जिस समय वह उस आनन्द में गोता लगाता है उस समय का आनन्द उसे सहस्रों गुना अधिक जचने लगता है, बड़ा प्यारा मालूम होता है। जिस समय विष व अमृत दोनों मिलकर एक मेल हो जाते हैं, उस समय उस आनन्द भोगी प्राणी से ही पूछा जाय तो उस प्राप्त आनन्द का बखान वह स्वयं भी कदाचित् ही

अपने मुख से कर सके। देवताजी अब तुमने समझा होगा कि क्यों मनीराम इतना पीड़ित होने पर भी मेरी शरण छोड़ कर तुम्हारा उपदेश अंगीकार करने को तैयार नहीं है। इसे उस आनन्द की आशा तड़पा रही है, जो सब सुखों का सार है, जिसकी प्राप्ति के लिए ज्ञानी-ध्यानी, समझदार-नासमझ, राजा-रंक, स्वस्थ-रोगी कोई भी क्यों न हो, नाहीं नहीं कर सकता। अन्त में तुम मनीराम से कहते हो कि मैं निष्प्रयोजन हूँ, मैं सबको पीड़ित करता रहता हूँ अतएव दुखदायी होने से मैं त्याज्य हूँ?

मैंने अपनी पीड़ा का दृश्य तो दिखा ही दिया कि मेरी दी हुई पीड़ा को कोई पीड़ा ही नहीं मानता, परन्तु उस पीड़ा के उपरांत प्राप्त सुख में जो विशेषता अनुभव करता है, उसमें वह उस पीड़ा को ही कारण मान कर परम संतुष्ट हो जाता है। अब यदि इस आनन्द को एक ओर रख कर मेरी उपयोगिता पर ध्यान दिया जाय तो मैं बलपूर्वक कहता हूँ, कि इस मायापुरी की स्थिति का मैं ही परम कारण हूँ। सबकी दृष्टि में मैं केवल इसीलिए मान्य नहीं हूँ कि केवल आनन्ददाता ही हूँ, वरन् इसलिए भी कि मैं सृष्टि का उत्पादक भी हूँ। लोग अपने पास सुन्दर-सुन्दर नए-नए सजीव खिलौने देखने के इच्छुक होते हैं, तो इधर तो मेरे ही द्वारा उनको अनुपम सुख की प्राप्ति होती है, और उधर सजीव खिलौने मिलते रहते हैं। कुछ समय के पश्चात् फिर वे ही नन्हे-नन्हे खिलौने इस योग्य हो जाते हैं कि वे भी अपना पार्ट खेलते

हुए इस रंगभूमि की शोभा बढ़ावें। यदि सब तुम सरीखे ही त्यागी हो जायँ तो यहाँ का सारा खेल ही समाप्त हो जाय। बाबाजी तुम्हारी सीख चौपट करने वाली है। यदि मुझ में यह प्रबलतम शक्ति न होती हो तो तुम निश्चय ही सबको अपना सरीखा लँगोटिया बाबाजी बना डालते। परन्तु तुम सदा मेरी शक्ति के सामने हारते रहते हो और बार-बार बेहयाई से मेरे सम्मुख युद्ध करने को चले आते हो।

ब्रह्मचर्य

२७

वही रण-स्थल है, वे ही दोनों सेनापति ब्रह्मचर्यदेव और कामासुर निज सेना सहित खड़े हैं। सेनाओं के मध्य में मनी-राम आदि बैठे हैं। कामासुर अपनी विजय पर प्रसन्न होता हुआ ब्रह्मचर्यदेव को तिरस्कृत दृष्टि से देख रहा है। आज इस समय ब्रह्मचर्यदेव के सम्मुख दो पुरुष और भी बैठे हैं। उनमें से एक तो बड़े शान्त भाव से बैठा है, उसके बड़े-बड़े नेत्रों में गम्भीरता दिखाई दे रही है, मुख पर कान्ति विराजने से वह दमक रहा है, सारे शरीर में स्फूर्ति भरी हुई है। सब के चित्त उसकी ओर आकर्षित हो रहे हैं, और सब कोई उसके प्रभावशाली एवं गम्भीर मुख को आदरणीय दृष्टि से देख रहे हैं।

विपरीत उसके दूसरे पुरुष का मुख निरे फीके रंग का दीख रहा है, कांतिहीन है, नेत्र गड्ढों में धँस गए हैं, गाल पिचक गए हैं, शरीर कृश हो रहा है। वह आलस्य की मूर्ति बन रहा है। निराशा, शोक, चिन्ता आदि ने मानो उसके हृदय में घर कर लिया है। ऐसा प्रतीत हो रहा है, मानो ज्वारी सर्वस्व हार कर महा चिन्तित हो रहा है। अनेक रोगों ने भी उसके शरीर में अड्डा जमा लिया है। वह हाथ जोड़े ब्रह्मचर्यदेव के सम्मुख बैठा हुआ कामासुर की ओर कुपित दृष्टि से देख रहा है।

उसी समय ब्रह्मचर्यदेव ने कामासुर की ओर लक्ष्य करके कहा, कि कामासुरजी अपने परम भक्त की ओर तनक दृष्टि तो करो। ये तुमसे रूठ कर मेरे पास आए हैं, इनको मनाओ। तुमने अपने इन भक्त का सर्वस्व हरण कर लिया है अथवा इन्होंने ही तुम्हारी भक्ति में अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया है। फिर उस व्यक्ति को सम्बोधित करते हुए पूछा—"बोलो जी बोलो, तुम अब मेरे पास क्यों आए हो, कामासुर पर क्यों क्रोधित हो रहे हो। इन्होंने तो तुम्हें नाना प्रकार के आनन्द भुगाए थे, अब तुम इनसे क्यों रूठ गए हो।"

वह व्यक्ति ब्रह्मचर्यदेव से रोकर अति कातर स्वर में कहने लगा, कि श्रीमहाराज मेरी दुख-कहानी सुन लीजिए और मेरा दुख दूर कीजिए। मैं आपकी शरण में आया हूँ। ये जो दूसरे पुरुष आपके पास बैठे हैं, मेरे सहोदर भ्राता हैं। इस दुष्ट कामासुर ने हम दोनों पर अपने पुष्प बाण चलाये थे। मैं उन बाणों की चोट को न सह सका, घायल होकर वेसुध हो गया। ये मेरे भ्राता सावधानी से इसके वार को बचा गए। इन्होंने मुझे भी सावधान किया था, परतु मैं ऐसा अचेत हो गया कि मुझे तन-वदन की भी सुधि नहीं रही। इसके बाण ऐसे तीक्ष्ण विष में बुझाए हुए थे कि वह विष मेरे सारे शरीर में प्रविष्ट हो गया। मेरे भाई मेरी यह दशा देख उस विषैले स्थान से परे भाग गए। मैं अभागा विष पर विष ग्रहण करता रहा। इसने एक सुन्दरी

रमणी रूपी विषधर सर्पिणी मेरे पास भेजी, जिसने मुझे भरपूर डस लिया। इधर तो वह अपनी करनी में कुछ भी कसर नहीं कर रहा था, उधर मैं इसका परम भक्त होता चला जा रहा था। मैं उस सुन्दरी के जाल में फँस कर जो कृत्रिम आनन्द अनुभव कर रहा था, वह आनन्द विष रूप होकर मेरा तन-मन जलाये डाल रहा था। होते-होते मुझे उस आनन्द की दिन दूनी रात-चौगुनी इच्छा बढ़ने लगी। फिर क्या था, इसी दुष्ट की करतूत से मुझे और भी अनेक सुन्दरी रूपी नागिनें डसने लगीं। मैं प्रसन्नता पूर्वक अपने को उनके सुपुर्द करता रहा और मेरी भक्ति भी इस पिचाश के प्रति अधिकाधिक बढ़ती गई; यहाँ तक कि मैं उस विषैले आनन्द में इतना मग्न हो गया कि आखिर एक दम विक्षिप्त जैसा बन गया।

उस पुरुष ने एक ठंडी साँस लेकर फिर कहा, कि हाय इस निर्दयी ने मेरी भक्ति का तनक भी विचार न करके अपने अस्त्रों द्वारा मेरे अमूल्य जीवन को नष्ट कर दिया। तन-मन तो भस्म हो ही चुके थे, अब मेरे प्राणों पर भी आ बनी, क्योंकि मेरी वीर्य रूपी जीवनी शक्ति का ह्रास अधिकाधिक होने लगा था, तथा उन विषैली स्त्रियों के संसर्ग से नाना प्रकार की व्याधियाँ लग कर मुझे पीड़ित करने लगी थीं।

यह दुष्ट इतने पर भी नहीं माना, क्योंकि वह तो मेरी भक्ति पर अत्यन्त रीझ रहा था। इस पतित अवस्था में भी वह मुझे

सताने लगा। यद्यपि मैं व्याधि ग्रसित होकर नितांत ही अशक्त हो रहा था तो भी यह मेरे समीप आकर मुझे फुसलाने लगा और अपने अस्त्रों द्वारा मुझे कोंचने लगा। जिस समय मैं उन नागिनों को देखकर इसके प्रभाव में आजाता उस समय मैं अधिकाधिक जला जाता था। उस आनन्द के उपभोग की तो मुझ में शक्ति रही ही नहीं थी, परन्तु उसका स्मरण जिस समय यह निर्दयी मुझे करा देता था, मेरी बड़ी बुरी दशा हो जाती थी। केवल पापी प्राण ही नहीं निकलते थे और सब कुछ हो जाता था।

जब मेरे भाई को मेरी यह दुर्दशा ज्ञात हुई, तो वह दयार्द्र हृदय हो मेरे पास आकर मुझ से कहने लगे, कि अरे तुम जिस कपटी के भक्त बन रहे हो, उसने तुमको अपनी कपट चातुरी से ऐसा ठग लिया है, कि तुम्हारा सर्वस्व हरण करके किसी अर्थ का नहीं रक्खा। अब तुम मेरे गुरुदेव के पास चलो तो मैं उनसे तुमको संजीवन बूटी दिला कर नीरोग कराऊँगा। उस समय तुम तो अचेत हो गये थे, परन्तु मैं वहाँ से भाग कर अपनी रक्षा के हेतु गुरुदेव के पास पहुँच गया था। उन्होंने कृपा कर मेरी रक्षा की जिससे मुझे इतनी प्रसन्नता हुई कि मैं उसका बखान नहीं कर सकता। मेरे वीर्य-रक्त में काम-विष न मिलने से वह मेरे मन में ऐसा रस गया है, कि उसमें मैं सदा स्थायी आनन्द की हिलोरें लिया करता हूँ। और तुमने अपने रक्त को दूषित करके अपने जीवन को ही दूभर बना लिया है। अब भी समय है,

चलो मेरे साथ, गुरुदेव अवश्य कृपा करेंगे।

स्त्री हे स्वामिन् रक्षा करो, यह दुष्ट अब भी मुझ पर आक्रमण कर रहा है। देखिये यह पामर अब भी मुझे अपने पास बुला रहा है। मैं अशक्त हुआ जाता हूँ, मैं पतंग की भाँति अपने काल-दीपक पर पुनः गिरा चाहता हूँ। मुझे भय है, जैसे अजगर अपनी भयंकर स्वाँस से विवश करके अपनी ओर खींच लेता है, वैसे ही कहीं मैं भी इसके समीप खिंच कर न चला जाऊँ, और रहे सहे जीवन को भी नष्ट कर लूँ। भगवन् रक्षा करो, मुझे बचाओ।

ब्रह्मचर्यदेव ने मनीराम की ओर देखकर कहा, कि मनीराम तुमने देखी अपने परम हितू की करतूत। यह मनुष्य उसका परम भक्त बन गया था। इसने अपने को उसके समर्पण कर दिया था। उस तपस्या का इसको यह फल मिला कि यह अपने प्यारे जीवन से हाथ धो बैठा है। अभी-अभी यह कामासुर तुम्हारे सामने कैसी शेखी मार रहा था, डींगें हाँक रहा था। अपने विषैले आनन्द का कैसा चित्र खींच रहा था, मानो संसार के अन्य आनन्द उसके सामने अति तुच्छ हैं। परन्तु तुम तो इतने अचेत हो जाते हो कि इस बात की छान बीन ही नहीं कर सकते कि वहाँ आनन्द है कहाँ। सोचो तो सही, कभी राक्षस किसी को सुख दे सकते हैं। इनके संसर्ग से कभी आनन्द के दर्शन भी हो सकते हैं। यह सीधी सी बात है जो सदा अनुभव में आती

रहती है, कि राक्षसों की सृष्टि ही दुख देने के लिये हुई है। ये भयंकर व्याल हैं जो केवल डसने ही का काम करते हैं। आनन्द-दाता तो देव ही हैं, और वह आनन्द स्वयं तुम्हारे ही में हैं। सोचो और समझो कि सुख को देने वाली वस्तु तो तुम्हारे पास है, यदि उसकी रक्षा करोगे, सुख पाओगे; उसे फेंक दोगे सुख भी भाग जायगा। यह कामासुर उसी तुम्हारे वीर्य-रत्न पर कुठाराघात करता है, और इतनी शीघ्रता से उसका व्यय कराता है कि अंत में तुम्हारे जीवन का ही अंत हो जाता है। हाय, जिस पिशाच के द्वारा तुम्हारी अमूल्य जीवनी शक्ति का नाश हो, जो घुन के समान लग कर तुम्हें खोखला कर दे, वही, तुम को ऐसा प्रिय लगे कि उसके सामने तुम कठपुतली के समान सदा नाचते रहो, उसके दासानुदास बने रहो ! कारण स्पष्ट है, कि तुम मेरा सहारा लेना पसन्द ही नहीं करते, क्योंकि मेरे पास तत्कालीन अस्थिर आनन्द नहीं है। मैं तुम्हारे शरीर में तुम्हारे अमूल्य रत्न को स्थिर देखना चाहता हूँ, जिससे तुम्हें सदा एक रस टिकाऊ आनन्द मिले। यह कामासुर उस रत्न को अकस्मात् फिसलाता है। जिस समय वह अपने स्थान को छोड़ कर बाहर निकलता है, और उससे पूर्व संघर्षण द्वारा पिघलाया जाता है, उस समय कुछ अधिक मात्रा में आनन्द देता है, यद्यपि वह आनन्द इस कामासुर में नहीं है, वह तो स्वयं तुम्हारे में ही है। यह तो तुम्हारे चित्त को केवल उत्तेजित करता है। कामिनी आदि में भी आनंद

नहीं है, उनके द्वारा केवल संघर्षण होता है। परन्तु जैसे श्वान अस्थि चचोरता हुआ, निजमुख से निकले हुए रक्त के स्वाद को न जानता हुआ उसी अस्थि में स्वाद समझने लगता है, उसी प्रकार तुम्हारा ध्यान भी निजी आनन्द से हटकर उन पिशाचिनियों की ओर चला जाता है। तुम यह नहीं समझते कि वे तो केवल संघर्षण की एक मशीन के समान हैं। वास्तव में आनन्द स्वयं तुम्हारे पास है, जिसको अत्यन्त संघर्षण द्वारा पिघला कर तुम बाहर फेंक रहे हो।

अब तुम मेरा व इस असुर का भेद भली भांति समझ लो। मैं वीर्य-रत्न का तुम्हारे में सदा संचय देखना चाहता हूँ, जो तुमको स्थाई आनन्द देता हुआ तुम्हारी जीवनी-शक्ति की वृद्धि करता रहे। और यह पामर लगातार संघर्षण द्वारा उसको पिघला कर एक ही समय में कुछ अधिक आनन्द दर्शाता हुआ उसका क्षय कराता है, जिससे तुम अनेक कष्ट भोगते हुए अपना नाश कर लेते हो। इसका ज्वलंत दृष्टांत ये दोनों पुरुष तुम्हारे सामने बैठे हैं। एक तो मेरा सहारा लेने वाला मेरा भक्त है, जिसने मेरी सलाह से इतनी शक्ति संचय कर ली है कि जिसके द्वारा वह उस अटूट आनन्द का सदा अनुभव करता रहता है। दूसरा इस राक्षस का भक्त बन कर अपनी शक्ति को गँवा बैठा है, और नाना व्याधियों से ग्रसित होकर परम दुखी हो रहा है। यद्यपि इसने कभी-कभी उस आनन्द के दर्शन कर लिए थे, परन्तु अब

वह इसको स्वप्न के समान हो गया है। और रोने-विलखने के अतिरिक्त इसके पास कुछ भी शेष नहीं रहा है। क्या तुम समझते हो, कि तुम्हारी भी ऐसी दुर्दशा नहीं होगी? अवश्य होगी। मनीराम तुम भी ऐसे ही झींकोगे। पछतावे के सिवा तुम्हारे हाथ कुछ भी नहीं आवेगा। देखो सत्यदेव तुम्हारे सामने खड़े चिल्लाकर कह रहे हैं, "कभी राक्षसों का विश्वास मत करो, ये तुम्हारा सर्वनाश कर देंगे।" इन दोनों पुरुषों को तुम्हारे सामने उपस्थित करके कैसा निर्मल प्रकाश तुम्हारे ऊपर डाल दिया है। तुम यदि अब भी अंधे बने रहो तो यह केवल तुम्हारे भाग्य का दोष है। यदि उलूक पक्षी को दिन में नहीं दीखता, तो इसमें सूर्य का क्या दोष है।

मनी०—आपकी सब बातें समझ में आगईं, परन्तु कामासुर का सहारा लिए विना प्रजोत्पत्ति कैसे होगी, अतः उसके लिए उसका सहारा लेना ही पड़ेगा।

ब्रह्म०—प्रजोत्पत्ति में कारण तो तुम्हारा वीर्य है, कामासुर नहीं। यदि तुमने मेरा सहारा लेकर वीर्य संचय नहीं किया है, शुद्ध वीर्य की रक्षा नहीं की है, तो कामासुर सिर पटक कर मर जाय तुम संतानोत्पत्ति कर ही नहीं सकते।

मनी०—परन्तु वह स्त्री-पुरुष को उत्तेजित करके संयोग तो करा देता है।

ब्रह्म०—मैं पूर्व ही कह चुका हूँ कि कामसुर क्षणिक आनन्द का लालच देकर, काम-वासना को अधिक उत्तेजित कर के, वीर्य का निरन्तर क्षय कराता हुआ तुम्हारे सर्वनाश का कारण है, अतः असुर द्वारा संयोग निन्दनीय है। परन्तु मैं तुम में शुद्ध वीर्य संचय कराकर, कामदेव का रूप धारण करके तुमको चेत में रखता हुआ, आवश्यकतानुसार वीर्य दान रूपी एक परोपकारी कार्य में लगा देता हूँ। उस दशा में भी तुम ब्रह्मचारी ही कहे जा सकते हो, क्यों कि वह दान तुम देव-प्रेरणा से करते हो न कि असुर-प्रेरित काम-वासना से। उस समय का वह वीर्य-क्षय क्षय ही नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उस क्षय की पूर्ति में शीघ्र ही करा देता हूँ। दानी इस दान को स्वेच्छा पूर्वक संतानोत्पत्ति का ध्यान रखता हुआ करता है, जिससे काम-वासना किंचित् काल भी उसके हृदय में नहीं ठहरने पाती। संयोग के पश्चात् वह उसका ध्यान एक दम भुला देता है, क्यों कि क्षणिक आनन्द को अपना उद्देश्य बना कर वह उस कार्य में प्रवृत्त नहीं होता।

अब तुम सत्य के निर्मल प्रकाश में स्पष्ट देख रहे होगे, व निर्भ्रम समझ रहे होगे, कि यह तुम्हारा परम वैरी कामासुर तुमको केवल चौपट ही करने वाला है। जिन साधनों से वह तुम्हारी कामाग्नि को प्रज्वलित करता है, वे सब केवल ऊपरी चटक-मटक दिखाने वाले तिरस्करणीय हैं। यदि तुम उनकी वास्तविकता पर सदा ध्यान धर कर सावधान रहोगे, तो वे कभी

तुमको विचलित नहीं कर सकेंगे, कभी उन्मत्त नहीं कर सकेंगे, जिससे कि तुम अपनी विचार-शक्ति को खो कर अपने वीर्य रूपी मूल को उखाड़ कर फेंक दो और अपने जीवन को नीरस तथा दूभर बना लो। अतः तुम समझ गये होंगे कि इस दुरात्मा के पास जाना तो क्या इसकी ओर दृष्टि उठा कर देखना भी तुम्हारे लिए घोर अभिशाप होगा।

मनीराम अब चेत में आगये थे, ब्रह्मचर्यदेव ने काम-विष इनके शरीर से दूर कर दिया था। उन्होंने सत्य के प्रकाश में देखा कि तमासुर एक दम विलीन हो गया, और कामासुर भी अपनी समस्त सेना सहित भागा चला जा रहा है। यह दृश्य देख मनीराम भी ब्रह्मचर्यदेव के पीछे-पीछे परहित-मार्ग पर यात्री के पास पहुँच गये। असुरों का वहाँ किंचित् भी संसर्ग न होने से देवों के मध्य में मुसकराती हुई वही देवी पूर्व की भाँति इनको दर्शन देने लगी, तथा उसके साथ में तीन अद्भुत देव भी अपनी झलक दिखाने लगे। उक्त देवी-देवों के दिव्य दर्शन होते ही मन्त्रि-मण्डल समेत यात्री की विचित्र दशा हो गई। वे अद्भुत आनन्द-सागर में गोते लगाने लगे और कुछ समय के लिए एकदम अपने को भूल-से गये। यह दशा थोड़े ही समय रहने पाई थी, कि सहसा वही कृष्णवर्णा पिशाचिनी दृष्टिगोचर हुई। वह रतिरानी को संग लिए हुए झपट कर मनीराम से यह कहती हुई निकल गई, कि "क्या मुहब्बत इसी का नाम है,

क्या मर्दानगी वाद़ा खिलाफ़ी ही में है।" मनीराम रतिरानी की सूरत देखकर एक बार फिर तड़फा, परन्तु तुरन्त ही ब्रह्मचर्यदेव के सहवास से सावधान हो गया। ऐसा दृश्य कई बार हुआ। इसी बीच में वह देवी देवों समेत अदृश्य हो गई। यह चरित्र देखकर ब्रह्मचर्यदेव ने कहा, कि हमारी जीत तो हुई परन्तु अधूरी ही रही।

राग-द्वेष

२८

एक निर्जन स्थान में कुछ मनुष्य बैठे हैं, और अपने-अपने विचारों में तल्लीन हो रहे हैं। सन्नाटा छा रहा है, उनके माथे पर चिन्ता की रेखाएँ देख पड़ रही हैं। बड़ी देर के बाद उनमें से एक स्त्री ने यह कह कर, कि "मदासुरजी अब तो आपकी बारी है, क्या आप तैयार हैं?" निस्तब्धता को भंग कर दिया।

मदासुर—हाँ मालकिन, मैं बिल्कुल तैयार हूँ। मेरी सुदृढ़ सेना भले प्रकार सुसज्जित हो चुकी है, केवल आज्ञा की देर है।

माल०—मुझे चिन्ता हो रही है, कि मेरे कामासुर सरीखे रणवीर सेनापति जहाँ जाकर पराजित हो गए, वहाँ पर तुम अकेले कैसे देवों के सन्मुख डट सकोगे। कामासुर ने मनी-राम को बड़ी चतुराई से अपनी ओर ऐसा आकर्षित कर लिया था, कि उसकी ओर से मैं एक प्रकार से निश्चिन्त सी हो गई थी। मनीराम ही को नहीं, उसने तो सब मन्त्रि-मण्डल को वश में कर लिया था, परन्तु शोक है ब्रह्मचर्यदेव ने समस्या को ऐसा पलट दिया, कि सब बना बनाया काम चौपट हो गया।

प्यारे मदासुर, बुरा मत मानना। मैं तुम को निरुत्साह नहीं करना चाहती, प्रत्युत स्थिति को स्पष्ट कर रही हूँ। अब हम को पूर्ण बल लगा कर लड़ना है, जिससे मनीराम हमारे फन्दे में

फँस कर किसी प्रकार भी निकलने न पावे। अतः मेरा विचार है कि आज मोहासुर को भी तुम्हारे साथ भेजूँ, क्योंकि मैं समझती हूँ कि तुम्हारा व उनका साथ अच्छा बनेगा। इधर तो वह अपना मोह-जाल डाल कर मनीराम को फाँस लेंगे, उधर तुम उसे मदहोश कर दोगे। तमासुर भी तुम्हारे साथ रहेंगे। वह उसे देव-दर्शन ही न होने देंगे। इस प्रकार की व्यूह रचना से मनीराम ऐसा घिर जायगा, कि देव उसे कहीं भी न पा सकेंगे। वह व्यूह से निकलने ही न पावेगा। फिर तुम कल-बल-छल से चेतनदास आदि को भी घसीट कर ले आना, जिससे सबके सब मोह-जाल में पड़ कर मदहोश हो जायँ।

मैंने अपने दोनों दूत रागासुर व द्वेषासुर को पूर्व ही से शत्रु-दल में भेज रक्खा है। वे अपनी माया फैलाकर मनीराम को उकसा रहे होंगे। वे अपने कार्य में बड़े दक्ष हैं। मुझे उनका बड़ा भरोसा है। देखो वे दोनों आ रहे हैं। मालूम होता है कि कुछ समाचार लाये हैं। उन दोनों ने आकर मालकिन को प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहने लगे, कि बड़ी अच्छी आशा है। हमने बड़ी चतुराई से मनीराम को—जो देवों से घिरे बैठे थे खींचना आरम्भ किया। वे उठकर हमारे पास आये। हमने उनसे कहा, कि आप तो अब बंदी हो गये हैं। क्या देवों ने आपको आज्ञा दे दी है कि कहीं मत जाओ, किसी से मत मिलो, अपनी सारी स्वतंत्रता खो दो? हम आपके हितू हैं। देखो,

स्वेच्छा-चारिता में बड़ा आनन्द है, तुम तो स्वाभाविक स्वेच्छा-चारी हो, इतना किसी के अधीन नहीं हो जाना चाहिये। हित की बात सबकी सुननी चाहिये। परतंत्रता में जकड़ नहीं जाना चाहिये। हमारी उक्त बातें सुनकर उनको धीरे-धीरे राग होने लगा। राग होते ही देवों से किंचित द्वेष भी हुआ, कि ये देव-मुझे क्यों बन्दी बना रहे हैं, मैं तो स्वतंत्र हूँ। जब वे हमारे राग-द्वेष के चक्र में आ गये, तब हमने उनसे कहा, कि हम फिर आप से मिलेंगे, अपने हित पर दृष्टि रखना। किसी के बँधुआ हो कर रहना मनुष्य के लिए घोर अभिशाप है। हमें आपका इस प्रकार बंदी होकर रहना नहीं सुहाया, इसी से हम आपको सावधान करने आए थे। बस मालकिन यही सुसमाचार देने आपके पास आए हैं, हम पूर्ण आशा करते हैं कि अब मनीराम को सहज ही अपने व्यूह में खींच लावेंगे। आप चिंता न करें, युद्ध की तैयारी करें।

मालकिन ने उन दोनों को शाबासी देते हुए कहा, कि इसबार युद्ध में मोहासुर व मदासुर दोनों सेनापति इकट्ठे जायँगे। एक दम धावा बोल देंगे। तमासुर भी गुप्त रूप से उनके साथ होंगे। तुम दोनों भी मनीराम के आस-पास बने रहना। अबकी हमारी व्यूह-रचना अनोखे प्रकार की होगी। सब लोग तमाशा देखेंगे कि किस प्रकार मनीराम हमारे व्यूह में फँसाया जाता है।

मुझे समाचार मिला है कि उधर से सेनापति प्रेमदेव मोहासुर के सम्मुख आवेंगे, और भक्तिदेवी मदासुर का सामना करेंगी।

रणस्थल में उनके बल की परीक्षा होगी। मैं देखूँगी कि तुम दोनों के चक्र में पड़ा हुआ मनीराम प्रेमदेव द्वारा किस भाँति उद्धार पाता है। अच्छा फिर तुम वहीं पहुँच जाओ और उसे ऐसा चक्र में डालो कि तुम्हारे बिना उसे चैन ही न पड़े। उसके जी में उलझन उत्पन्न कर दो।

इधर देव-सेना में एक ओर प्रेमदेव और दूसरी ओर भक्ति-देवी विराजमान हो रहे हैं। वहीं पर वे दोनों असुर भी गुप्त रूप से मनीराम के आस-पास जाकर खड़े होगए। यात्री परम प्रफुल्लित होरहा है, और मित्र विवेकानंद को धन्यवाद दे रहा है।

विवेकानन्द ने मनीराम से कहा—"क्या तुमको ज्ञात है कि अब हम पर मोहासुर व मदासुर दोनों मिलकर आक्रमण करेंगे। हमारे भी सहायक प्रेमदेव व भक्तिदेवी उनका सामना करने को आगए हैं। यद्यपि दोनों असुर अति भयंकर हैं, तथापि हमारे सेना-नायकों के सामने वे कदापि न ठहर सकेंगे। वे दोनों शीघ्र परास्त होकर भाग जायँगे। परन्तु तुम सावधान रहना, विच-लित मत हो जाना।"

मनी०—मैं सावधान हूँ, परन्तु यह बताइए कि आप लोग मेरे ऊपर इतनी कड़ी दृष्टि क्यों रख रहे हैं। मैं देखता हूँ कि एक प्रकार से बंदी होगया हूँ। मैं इतना मूर्ख नहीं हूँ कि अपना हिता-हित ही न समझूँ।

वि०—तुम बाल-स्वभाव हो, तुमको फिसलते देर नहीं लगती

अतः हमारी सत्संगति की तुमको परम आवश्यकता है। हम चाहते हैं कि तुम देव-संगति में सदा रहा करो। तुम तो यात्री के प्रिय पुत्र हो, तुमको कौन बंदी बना सकता है। परन्तु मैं देखता हूँ, कि तुम अभी से विचलित होने लगे। मालूम होता है कि शत्रु का कोई गुप्तचर यहाँ आ पहुँचा है, जिसका प्रभाव तुम पर पड़ रहा है। नहीं तो तुमको ऐसा भ्रम क्यों हुआ, कि तुम बंदी बना लिए गए हो। लक्षण बुरे दीख रहे हैं; तुम्हारा बहकना आरम्भ होगया है। यही तो युद्ध का सूत्रपात्र हुआ। तुम कहते हो कि तुम सावधान हो, परन्तु मुझे यह बात नहीं दिखाई पड़ती। तुम में विपरीत विचारों का उत्पन्न हो जाना ही सिद्ध करता है, कि युद्ध का श्रीगणेश होगया। अब हम लोगों को भी सावधान होना चाहिए।

मोह-मद

२६

विवेकानन्द के समझाने पर भी मनीराम नहीं समझे। वे उन दोनों राक्षसों के चक्र में आ ही तो गये। उनको अब इस बात से राग होने लग गया है, कि वे स्वतंत्रता पूर्वक सब कहीं घूमें। राग के होते ही द्वेष भी उनके पीछे लग गया, कि ये देव ही हमारी इस स्वतंत्रता में बाधक हैं। परन्तु जैसे एक अबोध बालक स्वेच्छाचारी होने से बिगड़ जाता है, इसलिए उसके गुरु-जन उस पर अंकुश रखते ही हैं। उसी प्रकार परम हितैषी विवेकानन्द ने उचित समझा था, कि बाल-स्वभाव मनीराम को अपनी सत्संगति में रक्खा जाय, जिससे उसे असुरों की कुसंगति में जाने का अवकाश ही न मिले। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। रागासुर व द्वेषासुर ने देव-सेना में गुप्त रूप से प्रवेश करके उनको स्वार्थ-मार्ग पर खींच लिया। और अपने इन्हीं दोनों चरों की सहायता से आज मोहासुर और मदासुर ने यात्री पर चढ़ाई कर दी है। मनीराम खिंच गये, देव देखते के देखते ही रह गये। युद्ध आरम्भ हो गया है, उभय पक्ष की सेना डटी खड़ी है, मोहासुर प्रेमदेव का, और मदासुर भक्ति देवी का सामना करने को उपस्थित हैं।

मोहासुर मनीराम से कह रहा है, कि मनीराम यद्यपि तुमने

मेरे साथियों का घोर तिरस्कार किया है, परन्तु तुममें इतनी शक्ति नहीं है, कि तुम हम दोनों का निरादर कर सको। तुम पूछोगे यह कैसे? इसका मेरे पास अकाट्य उत्तर है। वह यह कि जब तक तुम इस मायापुरी को छोड़ कर कहीं अन्यत्र न भाग जाओ, बिना मेरा आश्रय लिये रह ही नहीं सकते। तुम अपना अस्तित्व स्थिर रख ही नहीं करते। यदि भागना चाहोगे, तो बताओ वह स्थान कौनसा है, जहाँ हमारी अधीश्वरी रानी का राज्य नहीं है। फिर जब तुम्हें इस राज्य में रहना ही पड़ेगा और हमारी रानी ने जो-जो पदार्थ तुम्हारे निर्वाह के लिये प्रस्तुत कर दिये हैं, उनकी रक्षा करनी ही पड़ेगी, तब बिना मेरा सहारा लिये, बिना उनसे मोह किये तुम्हारा काम कैसे चलेगा। तुमको शरीर का, गृह का, स्वजन का, मित्र का एवम् प्रत्येक वस्तु का, जिसको तुम्हारे अधिकार में किया गया है, मोह करना ही पड़ेगा। करोगे कैसे नहीं, मायापुरी में बसने के नाते से मैं विवश उनका मोह तुम में उत्पन्न कर दूँगा, अतः मैं बल पूर्वक कहता हूँ कि तुम मुझे छोड़ ही नहीं सकोगे।

मदासुर ने कहा कि जब तक तुमको अपनपे का मद नहीं होगा, अर्थात् जब तक तुम अहंकारी को यह ध्यान न बँधाते रहोगे, कि उसकी भी इस मायापुरी में कुछ हस्ती है, तुम इस नगरी में रहने के योग्य ही न रह जाओगे।

मोहा०—और भी सोचो, कि यदि तुम हमारा तिरस्कर करके

देवों का सहारा लोगे, तो फिर तुम्हारी क्या दशा होगी। जब तुम्हें किसी का मोह ही न रहेगा, तो कैसे अपने शरीर की रक्षा करोगे, कैसे अपनी सन्तान का पालन-पोषण कर सकोगे। फल यह होगा कि मायादत्त सम्पूर्ण पदार्थों को नष्ट-भ्रष्ट करके कोरे ठंठनपाल रह जाओगे और दूसरों के पास बहुमूल्य सुन्दर-सुन्दर पदार्थ देखकर सदा कुढ़ा करोगे। क्योंकि जाओगे कहाँ, रहोगे तो यहीं न। क्या तुम्हारी समझ में अन्य ऐसा स्थान आता है, जहाँ भाग कर हम से पीछा छुड़ा लोगे? यदि कोई स्थान ऐसा हो भी, तो उसका मार्ग तुम्हें कहाँ मालूम है। उसके खोजने में रात-दिन भटकोगे। ये देव ही तुम्हें भटकाया करेंगे। तुम्हारी दृष्टि के सम्मुख मिथ्या कल्पित चित्र खींचा करेंगे। कभी कहेंगे कि हम तुम्हें एक ऐसे स्थान पर पहुँचा देंगे, जहाँ तुम्हें अटूट सुख मिलेगा, जहाँ दुख का लेश भी नहीं है। कभी कहेंगे, कि तुमको एक ऐसे आनन्द के समुद्र में डुबो देंगे, जिसमें डूब कर फिर तुम अपना अस्तित्व तक भूल जाओगे। कभी कहेंगे, कि जिन भोगों को तुम यहाँ पर इन्द्रियों द्वारा भोग कर रसास्वादन करते रहते हो, उन्हीं को तुम्हें बिना इन्द्रियों की सहायता के ही भुगाया करेंगे, जिनको भोगकर तुम सदा तृप्त बने रहोगे। ऐसी-ऐसी अनेक कल्पित बातें बना कर उपस्थित पदार्थों का, जो तुम्हें साक्षात् आनन्द दाता हैं, मोह हटाने का प्रयत्न करेंगे। पर मेरा यह कहना है कि जो कोई इन देवों के बहकाने में आ

गये हैं, वे सब उन कल्पित आनन्दों की आशा ही आशा में इन प्रत्यक्ष आनन्दों का तिरस्कार करके सदा दुख ही उठाया करते हैं। यह कितनी बड़ी मूर्खता है, कि प्रत्यक्ष आनन्द को ठोकर मार कर कल्पित, अनिश्चित आनन्द की आशा में दुख पर दुख उठाते रहना?

इनका यह भी कहना है, कि हमारे इन्द्रिय-जन्य सुख दुख-मिश्रित होने से फीके हैं। तुम सोचो तो सही, कि जो सुख दुख उठाकर प्राप्त किया जाता है, वही तो विशेष आनन्द-प्रद होता है। यदि तुमने कभी दुख का अनुभव नहीं किया है, तो तुम्हें कोरा सुख क्या अच्छा लग सकता है? जो मनुष्य यह पहचान नहीं कर सकता, कि गुड़ की मिठास इस कारण अच्छी है, कि नीम खाने से मुख कड़ुआ हो जाता है। अर्थात् जिसे कड़ुए-मीठे की, पहचान ही नहीं, वह मीठे की मिठास में क्या आनन्द पा सकता है। वह एकरस मिठास उसे आनन्द-प्रद हो ही नहीं सकता, दुख सुख की पहचान कराता है और सुख के स्वरूप को अनुभव कराता है। अतः हमारा दुख-मिश्रित सुख ही आनन्द-वर्धक है। उनका कपोल कल्पित सदा टिकाऊ सुख—जैसा कि वे कहते हैं—एक रस होने से फीका है।

सो हे मनीराम, तुम इन ढोंगी बावा-बाई के चक्र में मत पड़ो और प्राप्त सुख पर लात मत मारो। मैं नहीं समझता कि तुम इनके कहे में आकर अपनी देह का, अपने स्वजनों का और

अपने सारे के सारे अपूर्व आनन्ददायी पदार्थों का मोह कैसे परित्याग कर सकोगे। अपनपे का अहंकार कैसे छोड़ सकोगे। तुमको कहीं से प्रतिष्ठा मिल रही है, क्या उसको अपने ध्यान से हटा सकोगे, अपने शरीर का मोह छोड़ कर उसको मिट्टी में मिला सकोगे? नहीं-नहीं, तुम ऐसा कदापि नहीं कर सकोगे! फिर तुम ऐसी असम्भव बातों का स्वप्न देख कर क्यों अपने आपको भ्रम-जाल में फँसा रहे हो। मेरी शक्ति अपार है, मदासुर बड़ा बलवान है, हम दोनों तुम्हें निज शक्ति द्वारा—तुम्हारे ही हित के लिए—कभी अपने हाथ से नहीं जाने देंगे। हम शत्रुओं को, ललकारते हैं वे अपना पूर्ण बल लगा कर भी तुम्हें हमारे हाथ से निकाल तो ले जायँ!

जिस समय ये दोनों असुर प्रबल युक्तियों द्वारा मनीराम पर अपना-अपना प्रभाव डाल रहे थे, और मनीराम राग-द्वेष के चक्र में पड़े होने के कारण उनकी ओर खिंचते चले जा रहे थे, उस समय हमारे देवगण मौन धारण किए यह सब कौतुक देख रहे थे। उन्होंने देखा कि मोहासुर का मोह व मदासुर का मद मनीराम को स्वाभाविक रूप से खींचे लिए चला जारहा है। वे विवश हो गए हैं, उनको माया-कृत सब पदार्थों का प्रबल मोह होगया है। उनको 'मैं' का भी मोह उत्पन्न हो गया है और 'मेरे' का भी। सहसा उन्होंने देखा कि मनीराम के खिंचते ही चेतनदास, बुद्धिप्रकाश और अहंकारी भी खिंचने लगे हैं।

उसी समय अहंकारी उच्च स्वर में कहने लगा, कि चेतन-दास, वास्तव में मैं कुछ हूँ। मेरा राज्य, मेरा धन, मेरी सेना, मेरा शरीर, मेरा घर, मेरा पुत्र, मेरा मित्र, मेरा कुटुम्ब, मेरा परिवार, सब कुछ मेरा है, यह बात मिथ्या नहीं हो सकती। अवश्य मैं कुछ हूँ। दूसरों से अथवा दूसरों की वस्तु से पृथक करने में 'मैं' व 'मेरा' शब्द ही तो मैं प्रयोग में ला सकूँगा। मैं अन्यों की वस्तुओं को मेरी कैसे कह सकूँगा। और जब तक इन सारी की सारी वस्तुओं से मोह नहीं करूँगा, इनका मुझको अहंकार नहीं होगा, तब तक मैं स्वयं अपने ही को भूला रहूँगा।

बुद्धिप्रकाश, क्या यह बात निर्मूल है, क्या हम अंधकार में हैं, क्या इस मायापुरी में ये सब पदार्थ हमारे लिए प्रस्तुत नहीं किए गए हैं? इन सब का मोह हम कैसे परित्याग कर सकेंगे। हमारी प्यारी माता, जिसने अनेक कष्ट उठा कर हमको जन्म दिया है, हमारा लालन-पालन किया है, उसका यह कह कर, कि यह हमारी नहीं है, हम मोह कैसे छोड़ सकेंगे। हमारा पुत्र, जो हमारी आँखों का तारा है, उसका मोह तो हमारे जीवन का एक-मात्र कारण है। हमारी स्त्री, हमारी अर्धांगिनी, हमारी सदा की सुख-दुख की संगिनी, हमें नाना प्रकार के सुखों की भुगाने वाली, उसका मोह त्याग कर उसको अपनी न समझना, क्या हमारे लिए कभी संभव है? हमने बहुत धन व्यय करके एक सुन्दर महल बनवाया, क्या तुम कह सकते हो कि उसको अपना मत

कहो। हमसे कहा जाता है कि ये मोहासुर व मदासुर राक्षस हैं, इनकी मत सुनो। मोह-मद का सर्वथा परित्याग करो। बुद्धि-प्रकाश, तुम्हीं निर्णय करो, कि इसमें कौनसी प्रबल युक्ति है जिससे हम विवश होकर अपने चिर संगी मोह-मद का परित्याग कर सकेंगे।

बुद्धिप्रकाश आदि सब एक स्वर में चिल्लाकर कहने लगे—"हम ऐसा कदापि न कर सकेंगे।" अपनों की यह दशा देख कर यात्री भी किंचित डाँवाडोल होने लगा। तुरन्त ही मित्र विवेकानंद वहाँ पहुँच गए और बोले—मित्र, इस समय तुम कहाँ हो। सावधान, परहित-मार्ग से पग न हटने पावे। जो फिसल गए उन्हें जाने दो। सत्य का प्रकाश फैल रहा है, नेत्र खोल कर देखो कि तुम्हारे चारों साथी, जिनके फिसलने से तुम विचलित हो उठे हो, तुम्हारे वास्तव में कौन हैं! यह सत्य है कि उनके खिंचने से विवश होकर तुम खिचने लगते हो; परन्तु यह भी निर्विवाद है, कि जो यात्री अपने को व निजी शक्ति को समझ कर उससे काम लेना जानता है, वह कभी इन माया-कृत अहंकारी आदि के—जो स्वभावतः माया-कृत पदार्थों की ओर खिंच जाते हैं-पीछे नहीं लग सकता। वह स्वयं ही अपनी रक्षा करता हुआ उनको भी कुमार्ग से दूर घसीट लाता है, और उन सेवकों से सेवकों की ही भाँति काम लेता रहता है। हे यात्री, जिस समय भी तुमको मालूम पड़े कि तुम इनके संग खिंचने लगे हो, उसी समय ध्यान-

देव के सहारे सत्यदेव के दर्शन करने लगो, जिससे तुम्हारा यथार्थ स्वरूप तथा तुम्हारी वास्तविक शक्तियों की स्मृति जाग्रत हो उठे। फिर यदि तुम सम्हले रहे, तो ये देवगण भी तुम्हारी सहायता को अपना-अपना कार्य करने लग जायेंगे।

अब देखो, सत्य देव तुम्हारे सामने हैं, उन्हीं के प्रकाश में निश्चिन्त होकर देखो, कि हमारे सेना-नायक किस प्रकार असुरों का मद चूर्ण करके मनीराम आदि का उद्धार करते हैं। यदि तुम गिर जाओगे तो फिर कोई भी तुम्हारी सहायता करने को प्रस्तुत नहीं होगा। सत्य का प्रकाश तुम को ध्यानदेव की सहायता से पूर्व ही मिल रहा है। तुम उसकी अवहेलना करके क्यों गिरना चाहते हो? तुमने सत्यदेव को इतना प्रसन्न कर लिया है, कि मायाकृत मन्त्रीगण के विचलित होने पर, जिस समय तुम्हारा खिंचाव भी उस ओर होने लगता है, तुम्हारे उपास्य देव तुरन्त ही तुम्हारे पास पहुँच कर, उसी अँधेरे मार्ग में प्रकाश फैलाकर तुमको परिस्थिति के उजागर कराने में सहायता देने लगते हैं। तुम धन्य हो जिन पर सत्यदेव की परम कृपा है।

वह देखो, प्रेमदेवजी मनीराम को क्या संकेत कर रहे हैं। वह देखो सामने से स्त्री-पुरुषों की भीड़ की भीड़ चली आ रही है। प्रेमदेव के संकेत से मनीराम उस ओर देख रहा है। चेतनदास, बुद्धिप्रकाश और अहंकारी का ध्यान भी उसी ओर आकर्षित हो रहा है। तुम भी सावधान होकर देखो।

सबने आश्चर्य के साथ देखा कि उस जन-समूह में भारी कोलाहल हो रहा है। त्राहि-त्राहि के शब्द कान फोड़े डाल रहे हैं। ऐसे चिल्लाने-चीखने के शब्दों को सुन कर हृदय करुणा से भरा जा रहा है।

प्रेमदेव ने उच्च स्वर में कहा, कि मनीराम, देखते हो, यह भीड़ जो तुम्हारे सम्मुख खड़ी है, उसमें यह सब क्या कोलाहल हो रहा है। ये लोग क्या कह रहे हैं। क्यों बिलख-बिलख कर रो रहे हैं। देखो और उनकी बात-चीत सावधान होकर सुनो।

मनीराम आदि ने देखा कि उस जन-समुदाय में बहुत से हृष्ट-पुष्ट मनुष्य खड़े हैं। उन्हीं में एक वृद्ध पुरुष भी है, जो कि चिल्ला कर कह रहा है—"भाई लोगो तुम्हारी दुहाई है, मैं बड़े संकट में हूँ। मेरी सारी शक्ति जाती रही है, मेरी सब इन्द्रियाँ शिथिल हो गई हैं, यह शरीर सूख कर काँटा हो गया है, रक्त-मांस की अधिक न्यूनता है, नेत्रों से सूझता नहीं, अन्य इन्द्रियाँ भी जवाब दे चुकी हैं। हा ! इसी विश्वासघाती शरीर को मैंने बड़े यत्न से पाला-पोसा था, इसका मैं बड़ा मोह करता था, सुन्दर-सुन्दर सुगन्धियों से इसे सुवासित रखता था, अनेक पौष्टिक, स्वादिष्ट भोजनों से इसको दृढ़ बनाता था और इसकी रक्षा के हेतु मैं रात-दिन इसका ध्यान रखता था। अपने इसी पुष्ट व दृढ़ शरीर के मद में सदा चूर रहा करता था, सो हाय वही मेरा यह शरीर है, जिसको तुम सब देख रहे हो। कैसा जीर्ण-शीर्ण

होकर अब निकम्मा हो रहा है और निरर्थक होकर मुझे कष्ट दे रहा है। हाय मैं कभी यह ध्यान में भी नहीं लाया था, कि यह मेरा झूठा मोह है, जो धोखा देगा। यह मुझे कष्ट-पीड़ित कर रहा है। और ये जो मेरे सामने खड़े हैं, मेरे ही निजी सम्बन्धी हैं। मैं सदा इनको भाँति-भाँति के दुलारों से प्रसन्न रख कर इनसे बड़ा मोह करता था, इनको अपना समझता था। सो ये सब के सब इस समय मेरी पतित अवस्था में मुझे अनेक कष्ट दे रहे हैं। मेरा घोर अनादर करते हैं, और चाहते हैं कि यह बुड्ढा खूसट किसी भाँति मर जाय। पर मुझको मृत्यु भी नहीं आती। मेरी यह दुर्दशा इसी दुष्ट मोह के कारण हो रही है। यह मोह बड़ा छलिया है। मैं नहीं समझता कि इसने वृथा झूठे पदार्थों का मोह लगा कर मुझे वास्तविकता के जानने से क्यों वंचित रक्खा।

मनीराम आदि ने और भी देखा कि किसी को ज्वर चढ़ा हुआ है और वह उसके संताप से छटपटा रहा है। कोई दुर्गन्ध-युक्त व्रणों की पीड़ा से चिल्ला रहा है। अनेक ऐसे व्याधिग्रसित देखे कि, जिनकी शारीरिक वेदना को देखकर रोमांच हो आता था। अंत में सबने एक दृश्य देखा कि लोग एक मृतक के पास बैठे नाना विधि विलाप कर रहे थे। छाती कूट-कूट कर रो रहे थे और कह रहे थे, कि हाय, यदि हम जानते कि इससे हमारा प्यारा इस भाँति छुट जायगा तो हम इससे मोह क्यों करते।

हमको मद था कि वह हमारा प्यारा, आँखों का तारा हमारे पास सदा रहेगा। आज हमारा मद दूर हो गया, हमारा प्रति-पालित मोह ही आज हमारा कलेजा मसोसे डालता है। दुष्ट छलिया मोह, तेरा सत्यानाश हो। इसी प्रकार की अनेक बातें अनेक लोगों के मुख से मोहासुर के विपक्ष में मनीराम आदि ने सुनी, और समझा कि मोहासुर ही की कृपा से वे सब के सब परम दुखी हो रहे थे।

मनीराम आदि का इस प्रकार ध्यान आकर्षित करके और ये सब अनोखे दृश्य दिखा के प्रेमदेव उच्च स्वर में बोले, कि देखीं तुमने इन असुरों की करतूतें। इन्होंने इन मनुष्यों को मिथ्या वस्तुओं से निरर्थक मोह जुड़वा कर किस बुरी तरह से सताया है। क्या अंत में फिर तुम्हारी भी यही दशा नहीं होगी। वह शरीर, जिस पर कि अहंकारी लट्टू होकर अहंकार कर रहा है, क्या जरावस्था को प्राप्त नहीं होगा, और वह नाना प्रकार के क्लेश नहीं पावेगा। उसी अस्थिर शरीर को अपना के, उससे मोह जोड़ के दुखी नहीं होगा। किसी प्रकार का शरीर में रोग हो जाने पर मोह ही के कारण उस शरीर की व्यथा को अपनी ही व्यथा समझ कर नहीं रोवेगा। और क्या अंत में इसी शरीर से वियोग होने पर अपना ही नाश समझ कर तड़पता हुआ प्राण नहीं छोड़ेगा। और भी अन्य सम्बन्धियों तथा अन्य वस्तुओं को अपना ही समझने के कारण, उनसे भी

वियोग होने पर विकलता नहीं प्रकट करेगा। मनीराम, सत्य का उज्ज्वल प्रकाश हो रहा है, सत्यदेव की यात्री पर पूर्ण कृपा है, उन्होंने सम्पूर्ण माया-कृत पदार्थों पर प्रकाश डाल रक्खा है। नेत्र खोल कर देखो, क्या यह सब वस्तुएँ—धन-धान्य आदि, सम्पूर्ण सम्बन्धी, तथा तुम्हारा शरीर भी क्या तुम्हारा है, क्या तुमको 'मैं' और 'मेरा' कहने का अधिकार है।

आज यदि तुम उनकी वास्तविकता पर ध्यान धर कर 'मैं' व 'मेरे' शब्द का प्रयोग छोड़ दो, तो यह मोहासुर तुम्हारा कुछ भी बिगाड़ नहीं सकेगा। ये ही इसके पैने शस्त्र हैं, जो मिथ्या हैं। इन्हीं के द्वारा तुम इसके जाल में फँस रहे हो, जिसका परिणाम तुम इन उपस्थित पुरुषों के दृश्य में देख रहे हो। मोह के कठिन फँदे लगाकर 'मैं' व 'मेरे' का ऐसा जाल तुम्हारे ऊपर फेंका जाता है, कि तुमको सत्य में असत्य व असत्य में सत्य दीखने लगता है। तुम अपने-विराने के समझने में भूल कर जाते हो। सत्य तो यह है कि यह मोहासुर ही तुम्हारे पीछे ऐसा पड़ा रहता है कि चौपट करके ही छोड़ता है।

उसका यह कहना कि इस मायापुरी में विना उसका अवलंब लिये तुम्हारा गुजारा हो ही नहीं सकता इतना निर्मूल है, कि कोई भी बुद्धिमान इसको अंगीकार नहीं कर सकता। क्या तुमको यह स्मरण नहीं रहा, कि यह मायापुरी सदा टिकने का स्थान नहीं है। यह तो तुम्हारे राजा यात्री की केवल यात्रा का

स्थान है। यहाँ शरीर आदि जो कुछ भी उसे प्राप्त हुआ है, वह सब किंचित काल के लिये—केवल उसकी यात्रा पूर्ण करने के लिए ही मिला है। और यह सब सदा टिकाऊ न होने के कारण उसका नहीं है। फिर उसको अपना कह कर या समझ कर उससे दुख-दायी मोह जोड़ लेना मूर्खता नहीं तो क्या है। मोह का काम है विरानी वस्तु को, जो कभी अपनी नहीं हो सकती, भ्रम से अपनी बता कर चित्त में सदा वैसा ही ध्यान बँधाते रहना। फिर जब वह स्वाभाविक रूप से छूट जाय तब पश्चात्ताप कराना, कि हाय हमसे हमारी वस्तु छीन ली गई। परन्तु जब वास्तव में वह वस्तु तुम्हारी थी ही नहीं, वह मायाकृत होने से सदा अस्थायी ही थी और इसीसे उसका तुमसे पृथक् हो जाना अनिवार्य था, तो फिर उसमें पश्चात्ताप करने की कौनसी आवश्यकता है। परन्तु नहीं, मोहासुर ऐसा ही विपरीत ध्यान बँधा कर यात्री को सदा धोखा देता रहता है। क्योंकि वह वास्तव में ठग है, छलिया है, बट मार है। तुम लोग भी कितने मूर्ख हो, जो ऐसे ठग के जाल में फँस कर स्वयं खिंचे चले जाते हो और यात्री को भी फँसाना चाहते हो। उसको उसकी यात्रा के सरल व सीधे मार्ग से हटा कर, कुमार्ग में लेजाकर भटकाना चाहते हो। उसके गन्तव्य स्थान पर पहुँचने में रोड़ा अटकाते हो। यह भ्रम दूर करने को सत्य ने ये दृश्य तुम्हारे सम्मुख उपस्थित कर दिये हैं, जिससे तुम कर्त्तव्य-पालन से डिग न जाओ।

श्रीभक्तिदेवी ने कहा, कि मदासुर भी तुमको ख़ूब फाँस रहा है। इन्हीं झूठे पदार्थों को तुम्हारा बता कर तुम में अपनपे का मद उत्पन्न करा रहा है। तुमसे कहता है कि यह शरीर मेरा है, मैं बहुत रूपवान् हूँ, हृष्ट-पुष्ट हूँ, यौवन-सम्पन्न हूँ। मेरा राज्य है, मेरी सेना है, मेरा कोष है और मेरा बहुतसा कुटुम्ब है। वाहरे मैं; वाहरी मेरी पाशविक शक्ति, जो कुछ भी हूँ सो मैं ही तो हूँ। इसी मद में तुम बहे चले जाते हो, अकड़ने लगते हो, सदा अंधे बने रहते हो। फिर जब तुम्हारा वह सब तुम्हारे पास से चला जाता है, तुम्हारी सारी शेख़ी मिट्टी में मिल जाती है, तुम खिसिया कर रह जाते हो, तब बुद्धिमान तुम्हारी खिल्ली उड़ाते हैं। वे कहते हैं, कहाँ गई अब वह अकड़। अब न वह रूप है, न यौवन है और न शक्ति ही है। "चार दिन की चाँदनी बहुरि अंधेरो पाख।" उस समय तुम पछताते हो, कि हाय हमने बड़ी मूर्खता की, जो इस मदासुर के कहे में आकर अकड़ ही अकड़ में अपना बहुमूल्य समय नष्ट कर दिया। हम अपने मार्ग से पतित हो गये, जिससे गन्तव्य स्थान बहुत दूर हो गया। समझो, ख़ूब समझो, सत्य के प्रकाश में वस्तुओं के वास्तविक रूप को देखो, और मद से प्रेरित होकर, अपने कर्त्तव्य-पालन से मत डिगो। शत्रु-मित्र को ठीक-ठीक पहचानने की कोशिश करो, यही मेरा सर्वोत्तम मत है।

मोहासुर व मदासुर, जो यह सब सुन रहे थे, चिल्ला कर बोले—"मनीराम ये दोनों तुमको धोखा देते हैं, इनके धोखे में

मन आना। ये लोग कर्तव्य पालन का मिस करके तुम्हारे इच्छित पदार्थ आनंद से तुमको वंचित रखना चाहते हैं। अरे हम भी तुम्हें कर्तव्यों से कब हटाते हैं? यह मायापुरी तो कर्तव्यों के पूर्ण करने को ही है। तुम्हें अपने प्रत्येक पग पर कर्तव्य का ध्यान रखना होगा, और कर्तव्य-पालन करते हुए ही तुम यहाँ पर आनन्द भी भोग सकोगे। परन्तु हमारा यह कहना है, कि तुम बिना हमारी सहायता के, बिना हमारा अवलंब लिये, न तो कर्तव्य ही पालन कर सकते हो और न आनंद ही प्राप्त कर सकते हो। तुम्हारी प्यारी माता है, तुम्हारी अर्धाङ्गिनी है, तुम्हारा पुत्र है, उनसे मोह जोड़े बिना, उनको अपना समझे बिना तुम उनके प्रति अपना कर्तव्य कैसे पूरा कर सकोगे? माता पुत्र के लिए बिना उससे मोह हुए कभी कष्ट उठाने को तैयार नहीं हो सकती। पुरुष को स्त्री का मोह न हो तो वह अपनी स्वार्थ-सिद्धि कर लेने पर उस स्त्री को अवश्य ही निरावलंब छोड़ देगा। वह उनमें भरा हुआ मोह ही है, जो उन्हें स्त्री-पुत्रादि के लालन-पालन और भरण-पोषण के लिए विवश करता है। हमारा मद ही शक्ति को समझता हुआ काम कराता है।

सारांश यह है कि बिना हमारा सहारा लिये तुम कर्तव्य-पालन नहीं कर सकते। हाँ, मद व मोह न रहने पर लँगोटिये बाबाजी बन सकते हो, और किसी अदृश्य आनन्द के धोखे में अपने एक मात्र इच्छित पदार्थ आनंद का सर्वनाश कर सकते हो।"

३०

एक अल्प वयस्क सुकुमार बालक खड़ा है, उसका सारा शरीर काँप रहा है, नेत्रों से अश्रु-प्रवाह चल रहा है, सम्मुख ही एक दीर्घकाय स्त्री खड़ी है, जिसके कर में एक कृपाण है। वह उस बालक से कह रही है, कि देवी के सम्मुख शिर झुकाओ। बालक एक पत्थर की बनी हुई मूर्त्ति को सामने देख रहा है, और समझ रहा है कि शिर झुकाते ही वह कृपाण उसकी ग्रीवा के ऊपर पड़ कर उसको तन से पृथक कर देगी। उसी समय एक अन्य स्त्री ने उस बालक को पकड़ कर बलात् उसका सिर नीचे को कर दिया, जिससे वह बालक चीख कर नीचे गिर पड़ा। तुरन्त ही उस भयंकर स्त्री ने एक ही हाथ में उसका काम तमाम कर दिया। यह दृश्य कहाँ दिखाई पड़ता है ? उसी रणस्थल में। मनीराम आदि सब देख रहे हैं। इस क्रूर अमानुपिक कार्य को देख मनीराम विकल होगए और प्रेमदेव से पूछने लगे, कि इस स्त्री ने यह घोर कुकर्म क्यों किया है।

प्रेम०—इसका पुत्र मृत्यु-शैया पर पड़ा है। उसको किसी ने विश्वास दिला दिया है, कि किसी बालक का बलिदान करने से उसके पुत्र के जीवन की आशा है।

अकस्मात् मनीराम ने दूसरा दृश्य देखा, कि एक नवयुवक ने एक वृद्ध पुरुष को मार कर धराशायी कर दिया है, और वह तड़पता हुआ प्राण छोड़ रहा है। उन्होंने पुनः प्रेमदेव से पूछा कि यह हत्याकांड क्यों हुआ ?

प्रेम०—यह युवक एक स्त्री पर आसक्त है, उसके मोह-जाल में पूर्ण बिद्ध होरहा है। यह मृतक वृद्ध जो इसका पिता था, उसमें बाधक था, अब उसने अपना कंटक दूर कर दिया। मनीराम को उस समय ऐसे ही और भी अनेक रोमांचकारी दृश्य दिखाई पड़े, कि जिनमें धन के मोह से, पृथ्वी के मोह से तथा स्त्री के मोह से ऐसे-ऐसे भारी अमानुषिक कर्म किए गए थे, जिनको देखकर वह ऐसे विचलित होगए कि उनसे वे दृश्य देखे भी न गए। उन्होंने प्रेमदेव से पूछा, कि महाराज यह सब क्या हो रहा है।

प्रेम०—सत्य के प्रकाश में मोह-जाल में फँसे मनुष्यों के दृश्य देखते चलो, अभी से क्यों घबरा गए।

मनी०—क्या यह सब मोहासुर की करतूतें हैं ?

प्रेम०—हाँ-हाँ, मोहासुर कर्त्तव्य-पालन करा रहा है। देखा कैसा सुन्दर कर्त्तव्य-पालन है। माता को पुत्र के साथ, पुत्र को पिता के साथ कर्त्तव्य-पालन करा रहा है। हा दुष्ट मोहासुर, तू अपने प्रबल मोह में क्या कर्त्तव्य-पालन करा सकेगा, क्यों धोखा देता है। तू तो मनुष्य को अंधा बना देता है। मनीराम, समझो और चेतो, कर्त्तव्य-पालन हमारे दैवी गुण प्रेम व भक्ति

द्वारा ही हो सकता है, मोह व मद द्वारा कभी नहीं हो सकता।

उस माता को अपने पुत्र का इतना प्रबल मोह होगया था, कि वह यथार्थ कर्त्तव्य को एक दम भूल गई। इस पिशाच मोहासुर ने उसके हृदय में अपना गहरा प्रभाव डाल कर यह ध्यान बँधा दिया था, कि वह पुत्र उसका है। परन्तु सोचो तो सही, जब एक न एक दिन उसका वियोग निश्चित ही था, तो वह उसका कहाँ था। उसने अपने पुत्र की प्राण-रक्षा कर्त्तव्य-पालन के लिए नहीं करनी चाही थी, किंतु प्रबल मोह के वशीभूत हो, उसको बचाना चाहा था। यदि उसको मोह के स्थान में प्रेम होता, तो वह इस भाँति अंधी न बन जाती। वह उस प्रेम से यह पाठ सीखती, कि प्रेम एक स्वर्गीय पदार्थ है और वह निज पुत्र तक ही सीमित नहीं है। वह विश्व-प्रेम का मन्त्र सीखती। यदि उसने उस पुत्र को अपना समझ कर दूसरे के पुत्र की हत्या की, तो प्रेम खंडित हो गया, वह विश्व-प्रेम नहीं रहा।

मनोराम समझो, कि इस मायापुरी में जितने सजीव खिलौने दृष्टि-गोचर हो रहे हैं, वे निश्चय किसी अगोचर खिलाड़ी की विभूति हैं, जो उनका रचयिता होना चाहिये। क्योंकि स्वतः कोई वस्तु नहीं बन सकती। तो उस खिलाड़ी अथवा इस खेल के रचयिता को जिसको, मायारानी ने अपना स्वामी बता कर उसके अस्तित्व का संकेत किया था, अपने सब खिलौने एक समान होने चाहियें। और यह भी देखते रहते हो, कि ये खिलौने किंचित

काल के लिये प्राप्त हुआ करते हैं, कभी न कभी वे छिन जाते हैं। ऐसी दशा में उस मूर्ख माता को क्या अधिकार था, कि एक खिलौने को बिगाड़ कर दूसरे को स्थिर रखती। यह अधिकार तो रचयिता को है। वह जिसको चाहे बनावे, जिसको चाहे बिगाड़े। वह उचित उपायों से उसकी रक्षा अवश्य करती, परन्तु मोह में अंधी होकर इस प्रकार अनर्थ न कर बैठती। खूब समझो, मोह अंधा बना देता है, कर्त्तव्यों से डिगा देता है; और विश्व-प्रेम सावधान रखकर कर्त्तव्य-पालन कराता है।

जिस समय तुम पवित्र प्रेम की दीक्षा लेलोगे, तुम में प्रेम लबालब भर जायगा। फिर विश्व-भर से प्रेम होने के कारण विश्व की सम्पूर्ण शक्तियाँ तुम्हारी सहायता करने को स्वतः ही दौड़ पड़ेंगी। क्योंकि जब तुम्हारा विचार किसी को भी दुख देने का न रह जायगा, फिर प्रेम के राज्य में तुम्हें कोई कैसे दुख पहुँचावेगा। प्रेम की सहानुभूति तुम्हें चारों ओर से घेरे खड़ी दिखाई देने लगेगी। मोहासुर तुम्हें एक खिलौने को अपनाने को कहेगा, जिससे तुम निज स्वार्थ में अंधे होकर अन्यों का अपकार करने को तैयार हो जाओगे। मैं तुम्हें तुम्हारे ही सजातीय इन खेलों के रचयिता को अपनाने को कहूँगा, जिससे उसकी सारी विभूति तुम्हारी ही बन जावेगी और फिर तुम किसी के भी अशुभ-चिंतक न हो सकोगे।

भक्तिदेवी बोली, कि हृदय में प्रेमदेव का संचार होने पर मैं

अपनी बहन श्रद्धादेवी के सहारे तुम में अपनी स्वतन्त्र भक्ति का उदय कर दूँगी। क्योंकि जैसे मोहासुर के पीछे-पीछे मदासुर रहा ही करता है, वैसे ही मैं भी बिना प्रेमदेव के कभी नहीं रह सकती। जिस समय सजातीय के नाते से तुम को उस खिलौने वाले से प्रेम उत्पन्न हो जायगा, फिर मैं तुम्हारे सम्मुख सदा नृत्य किया करूँगी और असत् पदार्थों से मोह हटा कर उनका मद चूर-चूर कर दूँगी।

मदासुर तुमको यह सीख दे रहा था, कि तुम अपनी पाशविक शक्ति से सब कुछ करने योग्य हो। मैं तुम्हारा ध्यान बँधाऊँगी कि तुम्हारी पाशविक शक्ति, जिसके द्वारा मदांध होकर तुम अनर्थ करना चाहते हो, कुछ भी नहीं हैं। तुम उसी खिलौने वाले सर्व शक्तिमान की भक्ति करके, अपनपे के मद को भूल, उसी की इच्छा की प्रबल धाराओं में बह जाओ, तुम्हारी यात्रा स्वतः ही पूरी हो जायगी। अपने खेल रूपी कर्त्तव्यों का, कि जिनको पालन करने से ही तुम को अपने गंतव्य स्थान पर पहुँचने में सहायता मिलेगी, पूर्ण ध्यान रक्खो। जिनको तुमने अपना समझ रक्खा है, उनका पालन भी तुम इन असुरों के सहारे नहीं कर सकोगे। क्योंकि जब अपनों के हित के लिए दूसरों का अहित करोगे, तो तुमको द्वेष के बदले द्वेष व अहित के बदले अहित ही मिलेगा। द्वेष के बदले द्वेष व प्रेम के बदले प्रेम मिलना अनिवार्य है। क्योंकि सजातीय वस्तु के

पास ही तो सजातीय जाती है। वह विजातीय के पास कभी नहीं जाती, मोहासुर व मदासुर जो छल से देव-रूप धारण करके धोखा दिया करते हैं, उनकी यहाँ आकर कलई खुल जाती है; क्योंकि यदि उनका रूप वास्तविक प्रेम व भक्ति का होता तो उसके बदले में प्रेम व भक्ति ही मिलती; परन्तु यदि तुम सच्चे हृदय से अपने में टटोलोगे तो तुमको मोह-मद के राज्य में कहीं भी प्रेम व भक्ति के दर्शन नहीं होंगे। वहाँ तो द्वेष, ईर्ष्या आदि, जो मोह-मद के सजातीय हैं, तुम्हारे हृदय में लबालब भरे पड़े दिखाई पड़ेंगे। अतः हम दोनों तुमको सलाह देते हैं, कि तुम अपने यात्री के सजातीय उस खिलाने वाले की भक्ति में ऐसे डूब जाओ, जिससे तुम्हें उससे ऐसा प्रेम, हो जाय, कि सारे विश्व में तुम्हें केवल वह ही वह दीखने लगे। अर्थात् कारीगर की कारीगरी ही में कारीगर दिखाई पड़ने लगे। इस प्रकार ये दोनों असुर तुम्हारे पास फटकने भी न पावेंगे।

यह सुनकर वे दोनों राक्षस तुरन्त ही वहाँ दौड़ कर आ गए और कहने लगे—मनीराम देखो हमने तुमको पहले ही सचेत किया था, कि ये देव किसी कल्पित व अनिश्चित तत्त्व का झूठा ध्यान बँधा कर तुम्हारी सारी स्वतन्त्रता छीनना चाहते हैं, और तुमको तुम्हारे इष्ट आनन्द से जीवन पर्यंत दूर रखना चाहते हैं। स्मरण रक्खो, सच्चा आनन्द स्वतन्त्रता में है, पर ये देव तुम्हें नाना प्रकार के बंधनों में फसाने के लिए किसी अदृष्ट वस्तु को

तुम्हारा स्वामी बता कर, तुम्हारी स्वाधीनता को मिट्टी में मिलाना चाहते हैं। कहाँ तो हमारा यह कहना, कि जो वास्तव में अपने हैं–चाहे वे जन्म के कारण हों चाहे किसी अन्य सम्बन्ध के कारण वे—ही अपने सच्चे हितू हो सकते हैं। हम दोनों उनके साथ तुम्हारी इतनी घनिष्ठता उत्पन्न कर देते हैं, कि फिर तुम परस्पर सुख-दुख के साथी बने रहते हो। यदि हम ऐसा न करें, तो तुम हमारे पूर्व कथनानुसार अपना स्वार्थ-साधन करके दूसरे के संकट के समय उसका सर्वथा परित्याग कर दोगे। यह माना कि वह तुम्हारा सम्बन्ध अनिश्चित काल के लिए होता है, परन्तु जो कुछ काल के लिए भी हो उतने ही काल के निर्वाह के लिए भी तो तुम्हें उन सम्बन्धियों के संग सुखपूर्वक रहने की आवश्यकता होती है। आगे का हाल अज्ञात है। जाने वाला कोई भी लौट कर नहीं बताता कि आगे क्या हुआ। जब वह अज्ञात है, तब हम फिर क्यों अपने को वृथा किसी अदृश्य शक्ति के अधीन कर दें, और क्यों अपनी प्यारी स्वाधीनता खोकर उनके बताए हुए विश्व-प्रेम में पराधीनता रूपी बेड़ी डाल कर प्रत्यक्ष मिलते हुए आनन्द को खो बैठें। हम अखिल विश्व के हित का ध्यान रखकर अपने निकटस्थ, सुख दुख के साझी, सम्बन्धियों के हित में असावधानी करके उनकी सहानुभूति से क्यों वंचित रह जायँ।

भक्तिदेवी ने ललकार कर कहा, कि मनीराम, दूर भागो इन पामरों से, ये तुम्हारा चौपट करना चाहते हैं। तुम स्मरण करो,

कि कितने काल से तुम यात्री के साथ में हो। क्या यात्री ने अपने अनुभव से तुमसे बारम्बार नहीं कहा है, अथवा तुम में स्वतः ही यह बात स्फुरित नहीं हुई है, कि तुम अपनी यात्रा में दीर्घ काल से दुख पर दुख उठाते चले आरहे हो। क्या उस दुख का कारण यह नहीं समझा गया है। अनुभव किया गया है कि तुम लोग अपने निर्दिष्ट मार्ग से विचलित हो गए हो, अर्थात् मार्ग भूल गए हो। यात्री समझ रहा है, कि वह बहुत काल से यात्रा में लग रहा है। पूर्व काल की घटनाओं के समय-समय के स्मरण ही उसको बताते रहे हैं, कि वह कोई नया यात्री नहीं है। और यह भी उसको अनुभव होता रहा है, कि प्रस्तुत पदार्थों से उसकी कभी भी तृप्ति नहीं हुई। एक पदार्थ से किसी समय सुख मिला, थोड़ी देर विश्राम मिला और फिर वही घुड़दौड़। फिर मिले, फिर मिले। यदि नहीं मिला तो वही दुख का कारण हुआ। बस ऐसे ही अस्थिर सुखों को तुम्हारे सामने उपस्थित कर के ये असुर तुमको रात-दिन ललचाया करते हैं; परन्तु उनका नाम सुख है ही नहीं जिनके छिन जाने या छूट जाने का तुम को भय बना रहे। हमारे सुख कल्पित नहीं हैं, अनुभव सिद्ध हैं। केवल इन अस्थिर सुखों से चित्त हटाने की देर है। यात्री समझ गया है कि यदि वह इन अस्थिर सुखों को गले लगावेगा तो अपने गंतव्य स्थान को कोसों दूर कर देगा। हम तुमको उनकी सलाह मानने के लिए कभी मने न करते, यदि वे उनके बताए

हुए सुख तुम्हें संतुष्ट कर सकते। संतुष्ट करना तो दूर वे तो उलटे तुमको ऐसे-ऐसे कठिन दुःखागारों में ढकेल देते हैं, कि जहाँ का फँसा हुआ कठिनाई से छुटकारा पा सकता है। अतः तुम इनके बहकाने में मत आओ। यहाँ की क्षणिक अस्थिर वस्तुओं के मोह-मद में फँसाकर अपने स्वामी के मार्ग में रोड़ा मत अटकाओ। उसे मार्ग पर चलने दो। तुम्हारे ही अटकाने से वह अटक जाता है, उतनी ही देर हो जाती है। तुमने अब मोहासुर व मदासुर की खूब परीक्षा कर ली और सत्य के प्रकाश में उसके कपट-जाल को खूब समझ लिया, अब साहस करके मोह-मद का परित्याग करो, जिससे यात्री आगे बढ़े।

मनीराम प्रेमदेव व भक्तिदेवी के सदुपदेशों से चेत में आकर यात्री के समीप पहुँच गए, और वहाँ पर शुक्लवर्णा के दर्शन करने लगे। परन्तु वही डायन कृष्णवर्णा वहाँ मनीराम के पास तुरन्त ही पहुँच गई और मोहासुर व मदासुर की पुरानी प्रीति का स्मरण कराती हुई झपाटे से भाग गई। ऐसा कई बार हुआ।

यह दशा देखकर भक्तिदेवी ने कहा, कि हमारी जीत तो हुई परन्तु अधूरी ही रही।

तृष्णा

३१

हमारा यात्री आज रणस्थल में परहित-मार्ग पर सम्पूर्ण देवी-देवों सहित विराजमान हैं, चारों मन्त्री भी समीप ही बैठे हैं। वह अपने मित्र विवेकानन्द से कह रहा है, कि प्रियमित्र तुमने अपनी उदारता से मुझे इतना कृतज्ञ कर लिया है, कि मैं उसके भार से दबा जाता हूँ। मेरी इस विजय के एक मात्र कारण तुम्हीं हो। तुम्हारी समय-समय की उपयोगी सलाहें तथा इन सब देवों की गढ़ में उपस्थिति, तुम्हारी ही कृपा का फल है। आज यदि तुम मेरी सहायता पर आरूढ़ न होते तो अपने ही मन्त्रियों के खिंचाव के संग में भी स्वार्थ-मार्ग पर खिंच गया होता और इन दुराचारी असुरों द्वारा चौपट हो गया होता।

वि॰—मित्र का धर्म ही यह है जो मैंने किया है। इसमें विशेषता क्या हुई! परन्तु अभीतक तुम्हारे मन्त्री सुरक्षित नहीं हैं।

या॰—मैं समझता हूँ कि सब असुर निर्बल होकर भागगये।

वि॰—नहीं उन असुरों में पुनरपि बल का संचार करनेवाली, उनको उभाड़ कर पुनः तुम पर चढ़ा लाने वाली राक्षसी तो अभी तक मनीराम के पीछे बुरी तरह पड़ी हुई है।

या॰—महाराज वह कौनसी राक्षसी अभी शेष रह गई?

वि॰—वही असुरों की सिरधरी कृष्णवर्णा।

या०—आपको कैसे मालूम हुआ कि वह हमारे पीछे पड़ी हुई है, हम लोगों ने तो उसको कभी नहीं देखा।

त्रि०—जिस समय संतोषदेव ने लोभासुर को हराकर भगा दिया था, वह मनीराम में लोभासुर का प्रेम जाग्रत कर रही थी। जिस समय क्षमाशीलदेव ने क्रोधासुर को पराजित किया था; वह मनीराम को उकसा रही थी। जिस समय ब्रह्मचर्यदेव ने कामासुर का मानमर्दन किया था, वह मनीराम की कामवासना में नवीन जीवन डाल रही थी। और जिस समय प्रेमदेव व भक्तिदेवी ने मोहासुर व मदासुर को खदेड़ कर भगा दिया था, उस समय वही डायन थी जो मनीराम के हृदय में मोह-मद की गुदगुदी उत्पन्न करा रही थी। उस समय हमारे सेनापतियोंने अन्त में यही कहा था, कि हमारी जीत तो हुई परन्तु अधूरी ही रही वह अवश्य उपद्रव मचावेगी, हमको अभी असावधान नहीं रहना चाहिये।

या०—ठीक है, मैंने भी देखा था, कि अपनी विजय के समय हम लोग एक शुक्लवर्णा देवी के दर्शन करने लगते थे, परन्तु अकस्मात् उसी समय मनीराम विचलित हो उठते थे, और वह देवीजी तुरन्त ही अन्तर्धान हो जाती थी। कृपा कर यह बताइए कि ये दोनों शुक्लवर्णा व कृष्णवर्णा कौन हैं।

वि०-शुक्लवर्णा तो देवों की सिरधरी हैं, और कृष्णवर्णा असुरों की। देवी का नाम शांति देवी है, और आसुरी का तृष्णासुरी

अब जिस समय रणस्थल में तृष्णासुरी आवेगी, उसका सामना करने को हमारी शांति देवी अवश्य पधारेंगी।

यहाँ पर यह बात-चीत हो ही रही थी, कि इतने में बड़ा कोलाहल सुन पड़ा। सामने से बड़े वेग से आँधी के समान बड़ी विकट सेना आती हुई दृष्टि पड़ी। सब के आगे वही रणचंडी तृष्णासुरी नृत्य करती हुई दिखाई दी। पीछे-पीछे लोभासुर क्रोधासुर, कामासुर, मोहासुर व मदासुर पुनर्जीवित होकर अपने-अपने विकराल रूप में आरहे थे, और उनकी सेना भी सुसज्जित हो कर आरही थी, अर्थात् अबकी बार तृष्णासुरी की अध्यक्षता में सब असुरों ने मिल कर यात्री पर एक साथ धावा बोल दिया था।

यात्री यह देख कर एक दम चौंक पड़ा। विवेकानंद ने उसको ढाढस देकर समझाया, कि कुछ भय नहीं है, हम तो यह पहले ही से समझे हुए थे कि यह गुप्त पिशाचिनी बिना रंग लाये नहीं मानेगी। हमारी ओर भी शांति देवी आगई हैं, वे शांति की वर्षा करके मनीराम की रक्षा करेंगी। इसका नाश कर के फिर तुम लोग निष्कंटक हो जाओगे।

बात की बात में यह सेना सम्मुख उपस्थित हो गई, और मनीराम के सामने आकर तृष्णा ताण्डव नृत्य करने लगी। आँख-भौं मटका कर बोली, कि मन चले मनीराम क्या तुम मुर्दा बन गये। क्या तुम्हारे में धन-धान्य आदि का लोभ नहीं

रहा। क्या तुम्हारे में प्रिय वस्तु के छिन जाने पर क्रोध उत्पन्न होना बन्द होकर नपुंसकता छागई। क्या किसी छबीली मृगनयनी बाला को देख कर कामाग्नि का प्रज्वलित होना बंद हो गया। क्या अपने हितैषी सम्बन्धी का दृढ़ स्नेह होने के लिये उनकी मोह ममता तथा मद का सर्वथा अभाव हो गया। और क्या तुम्हारा अस्तित्व अब केवल निरर्थक ही हो गया? वह देखो लोभासुर आदि सबके सब तुम्हारे ही हित के लिये तुम्हारी सहायता करना अब भी नहीं छोड़ना चाहते। और यदि तुम्हारे भाग्य में यही लिखा है कि तुम संसार में मुर्दा हो कर ही रहो तो इसमें हमारा दोष नहीं है। परंतु हम भरसक तुम्हारी रक्षा करेंगे, और ढोंगी बाबा-बाई के चंगुल से बचावेंगे।

यद्यपि मनीराम असुरों का तिरस्कार कर चुके थे, तथापि तृष्णा के स्मरण कराने से, दीर्घ काल से मन में बसी हुई कामनाओं का लोभ संवरण न कर सके। उनमें उथल-पुथल होने लगी। कभी असुरों के दुर्गुणों को स्मरण करके दृढ़ हो जाते थे और कभी तृष्णा के भँवर जाल में पड़ कर विवश हो जाते थे। तृष्णासुरी ने यह सुयोग देख कर सम्पूर्ण असुरों को उनके सामने कर दिया, जो नाना भाँति के प्रलोभन दिखाकर उनको मथने लगे। मनीराम माया के समुद्र में डूबने उतराने लगे और कहने लगे कि हाय क्या सचमुच मैं मुर्दा बन जाऊँ, फिर मैं करूँ तो क्या करूँ; मेरा तो सब काम बंद हुआ जाता है तथा मेरा अस्तित्व

ही निरर्थक हुआ जाता है।

विवेकानंदजी, मैं तुम्हारा कहा नहीं करूँगा। मुझे छोड़ो, मुझे स्वतन्त्र विचरने दो, नहीं तो मैं भागा जाता हूँ। मैं शक्ति हीन हूँ-किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो रहा हूँ। मुझे अपनी प्रिय वस्तु का परित्याग सर्वथा असंभव प्रतीत हो रहा है। मुझे तृष्णा नितांत ही विवश कर रही है। हाय ! मैं जाऊँ तो कहाँ जाऊँ; मैं देवासुर के चक्कर में ऐसा उलझ रहा हूँ, कि मुझे कुछ भी नहीं सूझता। इन दोनों में कौन हितू है और कौन अहितू यह कुछ भी मेरी समझ में नहीं आता। यद्यपि असुरों द्वारा बताई हुई उपस्थित वस्तुओं द्वारा प्राप्त सुखों की अस्थिरता को मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ, तथापि उस सुदूर अप्रत्यक्ष सुख में भी तो मेरी पहुँच नहीं है। मैं वहाँ तक पहुँचने का प्रयत्न करता हूँ, परंतु घूम फिर कर इन्हीं सुखों में ही ज्यों का त्यों लौट आता हूँ। फिर यही विचारने लगता हूँ, कि अस्थिर होने पर भी इन्हीं को क्यों न भोगा जाय। इनके त्यागने का साहस होता ही नहीं। मेरा मन उन अप्राप्त सुखों को अंगीकार करता ही नहीं। जाने वे अज्ञात सुख कैसे हैं, कहाँ हैं और कब मिलेंगे। मैं तो सुखों का ही पुतला हूँ, सुख ही मेरा इष्ट है, मेरी घुड़दौड़ केवल सुख के लिये ही होती रहती है। वे ही सब के सब सुख मुझ से छीने जा रहे हैं।

नहीं-नहीं; हे कामासुर, हे मायासुर, हे क्रोधासुर, हे मोहासुर, और हे मदासुर आओ आओ मुझे गले से लगाओ। मैं तुम्हारा हूँ,

तृष्णा सुंदरी मुझे तुम से दूर नहीं रहने देगी। देखो तुम सब मुझे खूब कस कर पकड़ लो, जिससे देव छुड़ा न सकें; और मैं भी दृढ़ता पूर्वक तुम्हें पकड़े रहूँगा। मैं अपना अस्तित्व नष्ट नहीं करना चाहता। मैं अवश्य धन संग्रह करूँगा उसके बाधक को पीस डालूँगा। सुन्दर स्त्रियों के साथ रमण करूँगा, स्वजन व स्ववस्तु से मोह और मद द्वारा सम्बन्ध दृढ़ करूँगा। फिर चाहे जो हो।

मनीरामको इस प्रकार तृष्णा द्वारा अपने चंगुलमें फँसा देख असुर प्रसन्न हो मनीराम की ओर उसको पकड़ने के लिए दौड़े। तुरन्त ही देव भी सामने आगये और ललकार कर बोले—खबरदार, इधर मत बढ़ना! तुम रण से भागे हुए कायर हो, निर्लज्ज हो। अपनी हार स्वीकार करने पर भी फिर किस साहस से मनीराम को पकड़ना चाहते हो?

उसी समय शांतिदेवी तृष्णा को ललकार कर कहने लगीं, कि दूर हो डायन। तू छलिया है, रात-दिन हृदय को खाने वाली चण्डी, भला तू क्या किसी को सुख दे सकती है। फिर मनीराम की ओर प्रेम-दृष्टि से देख कर बोली, कि मनीराम तुम घबराओ मत, मैं तुम्हारी सम्पूर्ण उलझनों को समझती हूँ। उसका कारण केवल यही तृष्णा है। इसको मैं आज ही तुम्हारे सामने पराजित कर के तुमको सच्चे आनन्द के दर्शन कराती हूँ। जिसको तुम अदृश्य व दूर समझ रहे हो, वही तुमको पग-पग पर दृष्टिगोचर

होने लगेगा। देखो सामने देखो, सत्य के उज्ज्वल प्रकाश में देखो, वह कैसे अनोखे दृश्य दिखाई पड़ रहे हैं।

मनीराम ने देखा कि एक साधु बाबा लँगोटी लगाये बैठे हैं। सैकड़ों स्त्री-पुरुष उनको घेरे खड़े हैं। वे उनकी बातें ध्यान-पूर्वक सुनने लगे।

उनमें से एक हाथ जोड़ कर बाबाजी से कहने लगा, कि महाराज, मैं परम दुखी होकर आप के पास आया हूँ, परमेश्वर की दया से मेरे धन-धान्य किसी वस्तुकी कमी नहीं है, मैं लक्षपति मनुष्य हूँ, मेरे द्वार पर हाथी घोड़े बँधे हैं, सहस्रों सेवक मेरी आज्ञा पाकर प्राण देने को तैयार रहते हैं। राज्य दरबारमें भी मेरा बड़ा मान्य है, पर हाय दैव ने मुझे पुत्र-रत्न नहीं दिया। उसके बिना यह सब ठाठ फीका है। कृपा करके ऐसा आशीर्वाद दीजिए, जिससे मेरी मनःकामना पूरी हो, क्यों कि पुत्रेच्छा मेरे हृदय से किसी भाँति भी दूर नहीं होती, उसकी तृष्णा मुझे रात-दिन जलाया करती है और मैं परम दुखी रहा करता हूँ।

दूसरा—बाबाजी, मेरा बुरा हाल है, मेरे पूरा कुटुम्ब है, मेरे एक दर्जन पुत्र-पुत्री हैं परन्तु मैं निर्धन हूँ। मेरे पुत्र-पुत्री प्रत्येक वस्तु को तरसते रहते हैं। क्या हुआ जो रूखा-सूखा पेट में पड़ गया। मेरी कामना है कि मुझे धन मिले, सो ऐसा आशीर्वाद दीजिए जिससे मैं धनवान् बनजाऊँ। धन-तृष्णा मुझे रात-दिन व्याकुल रखती है और मैं अपने पुत्र-पुत्रियों को देख सदा अपने को

अभागा समझता रहता हूँ।

तीसरा—यद्यपि मैं भोग भोगते-भोगते वृद्ध हो गया, मैं संसार के आनन्दों का स्वाद अनेक भाँति ले चुका, तथापि मेरी विषय-वासना कुछ भी न्यून नहीं हुई। मेरी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ भी शिथिल हो गई हैं, जिससे मैं भोग भोगने में असमर्थ हूँ, सो कृपा करके ऐसा वरदान दीजिए जिससे मैं सामर्थ्यवान् हो कर नाना प्रकार के भोग भोग सकूँ। क्यों कि मेरी तृष्णा किसी भाँति भी दूर नहीं होती, जिससे मैं परम दुखी रहता हूँ।

चौथा—महाराज मुझे बड़ा दुःख है। यद्यपि मेरे पास धन की कमी नहीं है, परन्तु मेरा बड़ा भाई मुझसे भी अधिक धनवान् है, यह मुझको नहीं सुहाता। मेरा वस नहीं चलता नहीं तो उसका सर्वनाश करके मैं परम सुखी हो जाता। मैं उससे किसी बात में हेटा नहीं रहना चाहता, यही तृष्णा मुझे हर समय बेचैन रखती है, इसी के कारण मैं प्राप्त सुखों का उपभोग नहीं कर सकता।

पाँचवाँ—महाराज, मेरी आयु अब अस्सी वर्ष की हो चुकी है। समझ रहा हूँ कि अब चलने के दिन आ गए हैं। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों काल का ग्रास होना ही चाहता हूँ; सो कृपा करके ऐसा उपाय बता दीजिये जिससे मैं अभी बहुत दिनों जीता रहूँ। मुझे अभी पौत्र के पौत्र देखने की लालसा लग रही है, इसी तृष्णा-भँवर में मैं रात-दिन चक्कर खाया करता हूँ।

छठा—महाराज मैं एक देश का राजा हूँ। मुझे चक्रवर्ती बना दीजिए।

मनोराम लोगों की प्रार्थना सुनते-सुनते उकता गए, प्रार्थनाओं का अन्त ही नहीं आता था। सब कुछ प्राप्त होने पर भी एक-एक अभाव प्रत्येक को इतना दुखी बना रहा था, कि वे प्राप्त सुखों को सुख ही नहीं समझ रहे थे।

शांतिदेवी ने कहा कि मनोराम, अभी से क्यों घबरा गए। दृश्यों को देखते चलो इस डायन तृष्णा द्वारा ये सब कितने पीड़ित हो रहे हैं। धनवान पुत्र की कामना में, पुत्रवान् धन की लालसा में, रूपवान् स्वास्थ्य की इच्छा में और स्वास्थ्य-सम्पन्न रूपवान् बनने की तृष्णा में-अर्थात् प्रत्येक एक न एक नई कामना का अभिलाषी होकर प्राप्त सुखों को भूल गया है। देखो इनमें से कोई भी सुखी नहीं। उनको किसने दुखी बना रक्खा है? क्या नहीं कहा जायगा कि इसी पिशाचिनी तृष्णा ने।

३२

मनीराम को घबराया हुआ-विचलित हुआ देखकर तृष्णा-सुरी ने कहा कि मनीराम सावधान, यह देवी तुमको चकमा दे रही है और तुम्हारे साँसारिक सुखों के उपलब्ध कराने में रोड़ा अटकाती है। मुझे, जो तुम्हें सुखोंकी देने वाली हूँ, बदनाम करती है। देखो जब यहाँ सारे के सारे सुख तुम्हारे भोगने के लिए ही प्रस्तुत किए गए हैं, तो फिर प्राप्त सुखों को भोगते हुए अप्राप्त की कामना क्यों न की जाय। और उनके प्राप्त करने का प्रयत्न क्यों न किया जाय। मनुष्य का पुरुषार्थ ही यही है, कि जितने भोगने योग्य सुख हैं सभी को भोगता हुआ वह परम सुखी बने। यह बात बिना मेरी सहायता के नहीं हो सकेगी। मैं ही उसे अप्राप्त सुख की ओर अग्रसर किरती रहती हूँ। और विपरीत इसके यह बाई सदा त्याग का उपदेश देकर तुम्हें सुखों से हटाने का प्रयत्न करती रहती है। तुम्हें शान्ति का उपदेश देकर अकर्मण्य बनाना चाहती है। मनीराम, नए-नए अनोखे सुखों की खोज में लगकर सदा अपनी इन्द्रियों को तृप्त करते रहना ही तुम्हारा परम पुरुषार्थ है।

ये मनुष्य साधु-सेवा कर रहे हैं, घोर प्रयत्न कर रहे हैं, अपने अभिलषित अप्राप्त सुखों की प्राप्ति के लिए आशीर्वाद

माँग रहे हैं, और अपने खण्डित सुखों को मेरे ही द्वारा पूर्ण करना चाहते हैं, तो इसमें वे क्या बुरा कर रहे हैं। कहाँ तो मेरा यह कहना कि एक सुख को उपलब्ध करके दूसरे को प्राप्त करने के अभिलाषी बनो, दूसरे को प्राप्त करके तीसरे के लिए प्रयत्न करो, जो तुम्हारा अभीष्ट है उसीकी धुन में सदा लगे रहो। और कहाँ यह मूर्खा किसी अज्ञात सुख की आशा में तुम्हारे इन सारे के सारे प्रत्यक्ष सुखों पर वज्रपात करती है। तुम देवी के चकमें में आकर अपने चिरसंगी लोभासुर आदिका बहिष्कार कर रहे हो, कि जिनके द्वारा ही तुम इस मायापुरी में सुख-भोगते हुए कालक्षेप करते रहते हो। परन्तु मैं तुम्हें ऐसा करने कब दूँगी। मुझ में अपारशक्ति है, मैं उन त्यागियों को भी— जिन्होंने कि भय के मारे संसार छोड़ घोर निर्जन वन में वास कर लिया है, जो संसार की ओर भूल कर भी नहीं देखते—एकबार विचलित कर ही देती हूँ। पूर्व भोगे हुए सुखों का स्मरण कराके उनके हृदय को डाँवाडोल कर ही देती हूँ। फिर भला तुम कितने पानी में हो। क्या इस देवी में शक्ति है कि तुम को मुझ से छुड़ा सके?

शांतिदेवी ने हँस कर कहा, कि निर्लज्ज, तू बुद्धिमानों की दृष्टि में सदा से ही निन्दनीय रही है और आगे भी रहेगी। उसका कारण यह है कि जिसका नाम तू सुख कह कर बहका रही है, वह सुख है ही नहीं। तू सुख के नाम को कलंकित कर

रहो है। मनीराम तुम इसके धोखे में मत आओ, इसके बताए हुए सुख के भ्रम में सच्चे सुख को मत भूले रहो। दृष्टांत के लिए देखो—तुमने एक बकरी को सुन्दर-सुन्दर चारा देकर खूब चराया। वह पूर्ण सुखी व संतुष्ट होगई। अन्त में उसको एक भेड़िये के सम्मुख कर दिया, जिससे तुरन्त ही उसका सम्पूर्ण सुख कपूरवत् उड़ गया। वह परम भयभीत व दुखी होगई। तुमने एक मनुष्य को सुन्दर-सुन्दर षट्रस भोजन खिला कर अनेक सुगंधित द्रव्यों से सुवासित करके व अनेक रमणियों से भोग-विलास कराके सुख के समुद्र में डुबोया, अन्त में उसे देवी के सम्मुख लाकर उसका बलिदान करना चाहा, तो उस समय तुम देखोगे कि उसकी क्या शोचनीय दशा हो जायगी। सारांश यह कि यदि उस बकरी को या उस पुरुष को पूर्व से ज्ञात होता, कि वे सुख उनको उनके प्राण हरण के लिए दिए जा रहे हैं, तो वे उनका भोगना कदापि अंगीकार न करते। तुम रात-दिन निज नेत्रों से देखते रहते हो, कि इन असुरों द्वारा प्राप्त सुखों में घोर दुख छिपा रहता है। उन सुखों के भोगने के अनन्तर ऐसे-ऐसे विकट दुःखागारों का सामना करना पड़ता है, कि मनुष्य उनसे घबराकर पश्चात्ताप करता हुआ खुल्लमखुल्ला कह देता है, कि हाय, हमने बड़ी मूर्खता की। क्या वह सुख हैं, जिनको भोग कर अंत में पछताना पड़े, और यह कहना पड़े कि हमने मूर्खता की। वे सुख अमृत नहीं विष हैं। कोई भी चतुर पुरुष अमृत को छोड़ विष पान नहीं करेगा।

अब तुम देखो कि सच्चे सुख का—जिसके तुम वास्तव में इच्छुक हो, उसका—यह क्षणिक व परिणामी दुख स्वरूप सुख सच्चा स्वरूप नहीं है। उसका सच्चा स्वरूप यह है कि वह एक रस हो, उसमें दुख किंचित् भी मिश्रित न हो, जो आदि अंत दोनों में एक-सा हो। अब हम तुमको उसका सच्चा स्वरूप दृष्टांत से समझाते हैं।

तुमको किसी इन्द्रिय के विषय-सुख भोगने की प्रबल इच्छा हुई, प्रयत्न करने से किसी समय तुम्हारी वह इच्छा पूर्ण हुई, तुम्हें उस इच्छा-पूर्ति में सुख प्राप्त हुआ, वह सुख अल्प समय ही रहा, उतने समय में तुमको शान्ति मिली, तुमने एक संतोष की सांस ली। तुमको दीर्घकाल से किसी वस्तु को मिलने की इच्छा होरही है, तुम उसके लिए घोर प्रयत्न कर रहे हो, बड़ी कठिनाई से वह तुम्हें प्राप्त हुई, प्राप्त होने पर एक शांति की लहर तुम्हारे हृदय में उठ गई, स्वतः ही संतोष की छाया हृदय-पटल पर अंकित होगई, बस वही शांति की लहर, संतोष की सांस तुम्हारे सच्चे सुख का स्वरूप है। यदि यही इन्द्रिय-जन्य सुख सदा टिकाऊ होता, तो हम कह सकते, कि तुमको सुख प्राप्त होगया। पर वहाँ क्या हुआ, कि वह सुख अल्प काल भी नहीं ठहरने पाया था, कि इसी तृष्णा डायन ने तुरन्त ही आक्रमण कर दिया, और तुम्हारी शान्ति का, जो सुख स्वरूप थी, मटिया मेट कर दिया। वह शांति रूपी सुख उदय होकर भी इसी सत्या-

नाशिनी के गर्भ में पुनः विलीन होगया। यदि वह शांति स्थिर रहती, तो सुख भी ठहरता; परन्तु तृष्णा डायन ने ऐसा न होने दिया।

अब तुम भली भाँति समझ रहे होगे, कि सुख केवल मेरे ही द्वारा मिल सकता है। सुख की मैं ही एकमात्र कारण हूँ। मेरे ही भग जाने पर सुख भी कर्पूर की भाँति तुरन्त उड़ जाता है, और यही तृष्णा बारम्बार मुझे हटाके दुखों को सम्मुख करती रहती है। किसके द्वारा? उन्हीं असुरों द्वारा, जिनकी वह स्वामिनी है। वह कहती तो यह है कि मैं अपने चिरसंगी असुरों द्वारा तुमको सुख उपलब्ध कराती हूँ, परन्तु यह उनकी सदा की संगिनी होने के कारण मुझ पर आघात करके तुमको दुःखागार में ढकेल देती है, जिससे तुम दुखी के ही दुखी रह जाते हो। और यही क्रम सदा बना रहता है, क्योंकि मैं इसको कभी नहीं सुहाती।

मनीः—आप असुरों के सहारे वहाँ पहुँच कैसे जाती हैं, जिससे इनको आप पर आक्रमण करने का अवसर मिलता है।

शांतिः—सची बात यह है कि तुम्हारे इष्ट देव सदा तुम्हारे पास हैं, और मैं भी कभी उनसे पृथक् नहीं हूँ। मैं ही तुमको उनके सच्चे स्वरूप की पहचान कराने वाली हूँ। वे अपनी झलक तुमको तुम्हारी इन्द्रियों द्वारा, मन द्वारा, बुद्धि द्वारा कभी-कभी दिखा देते हैं; परन्तु तुम्हारी इन्द्रियों पर मन पर बुद्धि पर तो असुर-आसुरी पहले ही से अधिकार जमाए रहते हैं। उनको

टिकने नहीं देते। फिर मैं और मेरे साथ-साथ तुम्हारे इष्ट देव भी छिप जाते हैं। असुर सुख या आनन्द के देने वाले कदापि नहीं हैं, वे तो केवल दुखदायी हैं।

अब तुम सब मन्त्रियों ने मेरा और इस तृष्णा का भेद भली भाँति समझ लिया होगा, कि वास्तव में मैं तुम्हारे इष्टदेव का दर्शन कराने वाली हूँ, या यह आसुरी। अब तुम मुझे अपनाओगे या इसको—इसका निर्णय करके उत्तर दो। उसी समय चेतनदास ने मनीराम से कहा, कि शांतिदेवी की सारगर्भित व अतर्क्य बातों को मैं अपने विचारों की धारा में स्थिर पाता हूँ।

बुद्धि०—मैं भी अपना निर्णय देता हूँ, कि तृष्णासुरी समेत सब असुरों का बहिष्कार करना ही चाहिए, क्योंकि वे सब हम को दुखों में ढकेल कर हमारे कलपने-बिलपने का तमाशा देखने वाले हैं।

अहं०—मैं यात्री का प्रतिनिधि होकर उसके कल्याण के लिये तुम्हारे निर्णय को स्वीकार करता हूँ, बोलो मनीराम तुम्हें तो अब कुछ आपत्ति शेष नहीं रह गई।

मनी०—शांतिदेवी की कृपा से मेरा चंचलता का अवगुण दूर हो गया और मैं उन क्षणिक सुखों की आशा छोड़ चुका, जिनको दिखाकर ये असुर मुझे ललचा लिया करते थे। परन्तु अब मैं देखता हूँ कि ऐसा करने से मैं निष्क्रिय हुआ जाता हूँ। और मेरा स्वभाव है कि मैं क्षण भर भी निष्क्रिय होकर नहीं बैठ सकता,

सो कृपा करके इसका भी उपाय बता दीजिये, जिससे मैं अकर्मण्य न बन जाऊँ।

शांति०—देखो मनीराम, तुमको असुर धोखा देकर अबतक यह सिखाते रहे हैं, कि स्वार्थमार्ग को छोड़ देने से तुम निठल्ले रह जाओगे। यही अभ्यास तुमको सदा से रहा है-अर्थात् जितने स्वार्थमय काम हैं, वे सब तो करने योग्य हैं, शेष कुछ भी कर्त्तव्य नहीं है। परन्तु सोचो कि तुम्हारे यात्री की यह यात्रा तो कर्म-प्रधान है, उसमें तुम सब निष्क्रिय कैसे रह सकोगे। भेद यह है कि असुर तुमको स्वार्थ-मार्ग से कर्मों में लगाते हैं और हम परहित-मार्ग से। कर्म दोनों मार्गों में ही करना होता है। परहित-मार्ग पर चलने से तुम्हारा यह हित है, कि तुम्हारा यात्री सुगमता से अपनी यात्रा पूर्ण कर अपने गंतव्य स्थान पर पहुँच सकता है, और स्वार्थ-मार्ग पर चलने से सदा इसी नगरी में फँसा रह-कर कष्ट उठाया करता है। सो जब तुम परहित-मार्ग पर चलने लगोगे, तब तुम स्वतः ही देखोगे कि ज्यों-ज्यों वहाँ तुमको श्री आनंददेव के दर्शन होते चलेंगे, तुम्हारा मन कभी उसको छोड़ने को नहीं चाहेगा। और ठीक वैसे ही कर्म करते चलोगे जैसे तुम्हें यहाँ स्वार्थ-मार्ग में करने को मिलते हैं। कर्मों में भेद नहीं होगा, भेद होगा केवल मार्ग का।

तृष्णासुरी बीच में बोल उठी, कि देखो मनीराम तुम्हारे प्रश्न का उत्तर यह देवी ठीक-ठीक नहीं दे सकी। तुम्हारा प्रश्न महत्त्व-

पूर्ण है। कोई भी क्यों न हो उसका मन कर्म में तबतक नहीं लग सकेगा, जबतक उसे उसमें अपना कोई न कोई स्वार्थ नहीं दिखाई पड़ेगा। जब तुम्हारा मन ही उस कर्म को करने में नहीं लगेगा, तब तुम उस कर्म को करोगे ही क्यों ? कर्म न करने से फिर तुम निठल्ले ही बैठे रहोगे। जैसे—जब तुम्हें किसी वस्तु के प्राप्त करने की इच्छा होती है, तभी वह तुम्हारा स्वार्थ तुमको प्रेरणा करके उस कर्म में लगा देता है। अतः बिना स्वार्थ-मार्ग पर पग धरे हुए, बिना हमारा संग पकड़े तुम कभी भी क्रियाशील नहीं बन सकते। और निष्क्रिय रहना तुम्हारे स्वभाव के विरुद्ध है।

शांति०—मनीराम, यह तृष्णासुरी जिस भाँति तुमको समझा रही है, यह वही चक्र है जिसमें तुम सब भूले रहते हो। अब मैं तुमको और भी स्पष्टरूप से समझाती हूँ, कि तुम किस प्रकार परहित-मार्ग पर चलकर क्रियाशील बन सकते हो। सबसे प्रथम तुम स्वार्थ व परहित-मार्ग का भेद स्पष्टरूप से समझ लो, जिससे तुम्हें फिर कोई धोखा न रह जाय।

स्वार्थ कहते हैं, केवल अपने ही हित में अपना हित देखना। और परहित कहते है सब के हित में अपना हित देखना। अब विचारणीय यह है, कि वह अपना हित स्वार्थ-मार्ग से अर्थात् केवल अपने ही हित पर दृष्टि रखने से मिल सकता है अथवा परहित-मार्ग से; अर्थात् सब के हित पर ध्यान रखने

से मिल सकता है। सोचो, तुम्हारा हित या कल्याण किसमें है, अर्थात् तुम्हारा स्वामी यात्री कब पूर्ण सुखी हो सकता है, जिसके कि सुख में तुम्हारा सब का भी सुख सम्मिलित है। तुम्हारा स्वामी तभी पूर्ण सुखी हो सकता है, जब वह अपनी यात्रा पूर्ण करके अपने गंतव्य स्थान पर पहुँच जाय। जब तुम स्वार्थ-मार्ग से चलने लगते हो, तो इस मायापुरी के सम्पूर्ण पदार्थ तुमको अपने निजी दीखने लगते हैं, यद्यपि वे सब के सब तुम्हारे निजी नहीं हैं। उसका फल यह होता है, कि वे सब तुमको यहीं फसाये रहते हैं, आगे बढ़ने नहीं देते। और यात्री यहीं सदा अटका रह कर अपनी यात्रा पूर्ण न कर सकने के कारण अपने गंतव्य स्थान पर नहीं पहुँचने पाता। इस प्रकार यह मार्ग उसका घोर अहित करता है। और यदि तुम परहित-मार्ग से चलोगे तो ये मायाकृत सारे पदार्थ, जो वास्तव में तुम्हारे निजी नहीं हैं, यात्री को यहाँ फँसाने वाले नहीं बन सकेंगे। तुम उनसे अपनी यात्रा में अपना निर्वाह भी करते चलोगे और परायों का भी उनसे अभाव दूर करते चलोगे। तुम्हें यह ध्यान बँधा रहेगा, कि वे सब तुम्हारी यात्रा में केवल तुम्हें सहारा देने वाले हैं, उनसे अन्य कोई प्रयोजन नहीं। इस प्रकार तुम्हारे हृदय से संकीर्णता निकल जायगी और फिर तुम्हारे मार्ग में कोई भी अटकाव नहीं रहेगा। तुम विश्व-प्रेम में डूब-कर सब के हित में ही अपना हित देखने लगोगे।

उस समय तुम्हें फिर इतना काम करने को दिखाई पड़ने लगेगा, कि जितना स्वार्थ-मार्ग में नहीं मिल सकता। इस प्रकार तुम क्रियाशील बने हुए ही बिना किसी विघ्न-बाधा के अपने मार्ग में चलते हुए यात्री को उसके गंतव्य स्थान पर पहुँचा दोगे। मनीराम ने हर्षित हो कर कहा कि अब मुझे कोई भी आपत्ति शेष नहीं रह गई, मैं स्वार्थ-मार्ग को त्याग कर परहित-मार्ग पर ही चलूंगा और मैं सब असुरों का तृष्णासुरी समेत बहिष्कार करता हूँ।

तब मनीराम को पूर्ण रूपेण अपना कर शांतिदेवी सम्पूर्ण देवों सहित यात्री के हृदय-गढ़ के उच्च सिंहासन पर जा विराजीं और यात्री से कहा कि अब तुम्हारी विजय पूर्ण रूपेण हो गई। तुम अब निश्चित होकर स्वराज्य करो, क्योंकि तुम्हारे गढ़ में अब असुरों का पता कहीं भी नहीं है।

उपसंहार

भूल का अन्त

वही स्थान है, वही यात्री है और वे ही उसके चारों साथी, मनीराम, बुद्धिप्रकाश, चेतनदास और अहंकारी हैं। उसी स्थान पर बैठ कर परम दुखी होकर यात्री ने अपनी भूलों को प्रकट किया था। उस समय वह कितना निराश हो रहा था, उसने मनीराम की कैसी भर्त्सना की थी! आज भी वही स्थान है, जहाँ पर वह अपने मित्र विवेकानन्द सहित विराजमान है, गढ़ में पूर्ण शान्ति छा रही है। उसके मन्त्रीगण पूर्ण सन्तोष धारण किये हुए बैठे हैं। उनके मुख पर आज रत्ती भर भी दुख का चिन्ह नहीं है। जैसे कोई राहगीर अकस्मात् अपने मार्ग का पता पा कर प्रफुल्लित हो जाता है, वही दशा आज इस संसार-यात्री की हो रही है। वह बड़ी प्रसन्नता से मनीराम से कह रहा है, कि कहो प्यारे मनीराम, अब तो हम लोग अपने मार्ग का ठीक-ठीक पता पाकर निश्चित हो गए।

मनी०—श्रीमती शान्तिदेवी की कृपा से मेरी चंचलता दूर हो गई और यह परहित-मार्ग, जो मुझे विषमय दिखाई दे रहा था, अब अमृत तुल्य जँचने लगा है।

बुद्धि०—और मनीराम के सावधान हो जाने से मुझे भी सुविधा हो गई।

चे०—मुझमें भी सुन्दर-सुन्दर विचार-तरंगें उठने लगी हैं। मुझे अब सब कुछ प्रत्यक्ष-सा हो रहा है।

या०—मित्र विवेकानन्द जी, यह शुभ दिन मुझे आप की कृपा से ही प्राप्त हुआ है।

वि०—परन्तु यदि तुम स्वयं साहसी न होते, सत्याग्रह के व्रत में दृढ़ न रहते, तो ये तुम्हारे मन्त्री कभी तुमको हमारे अभिमुख न रहने देते। तुम्हारे साहस को धन्य है, कि जिस समय से तुमने अपने अस्तित्व व अपनी शक्ति को भली भांति समझ लिया, तभी से तुम इतने दृढ़ बने रहे कि मनीराम के लाख विचलित होने पर भी तुम न विचले; कभी ऐसा हुआ भी तो जिस समय मैंने तुम्हारे गंतव्य स्थान का तुम्हें स्मरण करा दिया जिससे तुम सावधान होगये। दूसरा कोई भी तब तक किसी की सहायता नहीं कर सकता, जब तक वह स्वयं स्वावलंबी न बन जाय। जो यात्री सत्य के प्रकाश में भी अंधा बना रहता है, वह निश्चय ही असुरों द्वारा पतित हो जाता है, क्योंकि यदि कोई नेत्र विहीन है तो उसे सूर्य का प्रकाश क्या करेगा। प्रकाश में देखने के लिये नेत्रों की परम आवश्यकता है।

या०—यह आपकी योग्यता है, कि जो मुझ सरीखे पतित, मार्ग-भ्रष्ट यात्री की प्रशंसा कर रहे हैं मैं तो अपने को

इसलिए परम भाग्यवान् समझता हूँ कि मुझको आप सरीखा हितैषी मित्र मिल गया। मैं परम दुखी होकर मारा-मारा डोल रहा था। जब से आप मेरे सहायक हुए, दुख किनारा करने लग गये। मेरे नेत्र भी हों तो भी बिना सूर्य के प्रकाश के नेत्र किसी अर्थ के नहीं हैं। उसी प्रकार बिना तुम्हारी सहायता के मैं भटकता फिरता था। तुम्हारे उपदेशों ने मेरे सारे भ्रम दूर कर दिये, तभी तो मैं स्वावलम्बी बन सका। यदि मैं अंधकार में पड़ा रहता, तो कैसे सम्हल सकता था।

मित्र क्या कहूँ, जिस समय मैं आपसे मिला था, मेरी बुरी दशा थी। यह तो मैं समझता था कि इस स्थान पर मैं सदा टिकाऊ नहीं हूँ, मुझे कहीं न कहीं जाना अवश्य है; परन्तु इस बात का मुझे किंचित भी ज्ञान नहीं था कि मैं कौन हूँ, कहाँ पर हूँ और मुझे कहाँ जाना है। इस बात को तुमने आदि से ही ऐसी अच्छी तरह समझाया था कि मैं तुम्हारी प्रशंसा नहीं कर सकता। आपने मुझे मेरे इच्छित पदार्थों के ही रूप में मेरे गंतव्य स्थान का पता दे दिया था। सत, चित, और आनन्द को ही मेरी वास्तविक प्रबल इच्छाऐं बता कर उसी पूर्ण सच्चिदानन्द तक पहुँचने का उस समय संकेत कर दिया था। नदी तब तक शांति नहीं पाती, जब तक वह महासागर से नहीं मिल जाती। यहाँ के पदार्थों से कभी मेरी भूख नहीं मिटती और अशांति पीछा नहीं छोड़ती। इसी में मैं अपने अस्तित्व को

ॐ

भी सूत्र समझ गया था। फिर मुझे मायारानी के दरबार में ले जाकर वहाँ का भी भेद समझा दिया था। मैं समझा कि जिसको मायारानी अपना स्वामी बता रही थी, वही मेरा सच्चिदानन्द है। मायारानी की नगरी उसी का एक खेल है। वहीं पर मैं खेल खेलता हुआ यात्रा कर रहा हूँ। वाहरे विचित्र खेल! यदि मैं सत् को संग लेकर परहित-मार्ग से यात्रा करता हूँ तब तो ठीक-ठीक रास्ता चलने लगता हूँ, और यदि तम के सहारे स्वार्थ-मार्ग पर चला जाता हूँ तो असुर मुझे भटका कर मार्ग-भ्रष्ट कर देते हैं और मैं भटकता डोलता हूँ। असुर मुझे बलात् स्वार्थ मार्ग पर घसीटते हैं। मेरा मनीराम विवश हुआ खिंचा चला जाता है। मेरे अन्य मन्त्री भी उसके पीछे-पीछे चले जाते हैं और मैं भी अपने की तरह उनके पीछे हो लेता हूँ। आपने मुझ अंधे को उस समय जब-जब आवश्यकता पड़ी, सत्य का प्रकाश फैला कर सब कुछ उजागर कर दिया, जिससे मैं वास्तविकता को भली भाँति समझ गया। यहाँ तक कि ये मेरे चारों साथी, जिनके कि पीछे मैं हो लिया करता था, मुझे स्पष्ट मायारानी के सम्बन्धी दीखने लगे, और उसी प्रकाश में मैं स्वयं को निर्मल शुद्ध स्वरूप- जिसमें मायारानी का किंचित् भी सम्बन्ध नहीं है-स्पष्ट देखने लगता था। मैं तुरन्त ही सम्हल जाता था। फल यह होता था कि देव असुरों को परास्त करके मेरे मन्त्रीगण को मेरी सेवा के लिये लौटा लाते थे।

आप ही की कृपा से मुझे ऐसा स्वच्छ प्रकाश मिलता था, कि जिसमें प्रत्येक वस्तु अपने वास्तविक रूप में मुझे दिखाई पड़ जाती थी, जिससे मैं नित्य प्रति निडर व साहसी होता चला जाता था। इसमें सन्देह नहीं, कि यदि मुझे इतनी प्रबल सहायता न मिली होती, तो मायारानी के ऐसे विकट खेल में से, जहाँ असुर पग-पग पर ऐसे-ऐसे विकट फंदे डाला करते हैं कि उनसे बच कर निकल जाना नितांत ही कठिन है, मैं अपने को किसी भाँति भी सम्हाल नहीं सकता था। परन्तु आज मैं फूला नहीं समाता हूँ। जिस समय मैं अपने सम्मुख ऐसे ही सहायक मित्र को विराजमान देखता हूँ कि जिन्होंने मुझे मझधार में डूबते हुए को बाँह पकड़ कर किनारे लगा दिया।

जब तक असुर इस गढ़ में रहे तब तक मैं अपनी भूलों को समझता हुआ भी भ्रम में पड़ जाया करता था, क्योंकि उनके सहवास का यह फल स्वाभाविक ही था। अब जिस समय से असुर यहाँ से भगा दिये गये हैं, मुझे ऐसा दीखने लगा है, कि मेरी सम्पूर्ण भूलें निकल कर मुझे वास्तविकता प्रत्यक्ष-सी होगई है। मानो मेरे नेत्रों पर से एक प्रकार का आवरण हट कर वे एक दम निर्मल हो गये हैं। मुझे चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश दीख रहा है। उसी प्रकाश में मैं स्पष्ट देख रहा हूँ कि मैं स्वयं रूप रंग रहित अपने इस गढ़का अधीश्वर हूँ जो मुझे इस यात्रा के लिये मिला हुआ है। मैं अपने चारों साथियोंको—जिनकी इस

यात्रा में परम आवश्यकता है—अपनी ही सहायता के लिये प्रतिक्षण संग लिये हुए यात्रा कर रहा हूँ। मैं अपने ही इच्छित पदार्थ सत् चित व आनंद का बना हुआ एक पुतला हूँ। इसके अतरिक्त कुछ भी नहीं हूँ। यह मायापुरी, जिसमें होकर मुझे यात्रा करनी है, एक बृहत् खेल का स्थान है। मैं अपनी मूर्खता से इसी खेल में, जिसका अंत नहीं है सदा फँसा भी रह सकता हूँ और पर-हित-मार्ग पर चल कर देवों की सत्संगति से यहाँ से निकल भी सकता हूँ। उसी प्रकाश में मैं बड़े आश्चर्य के साथ देख रहा हूँ, कि मेरी घुड़ दौड़ उसी सच्चिदानंद रूपी महा-सागर के लिये हो रही है, जिसका मैं प्रतिक्षण इच्छुक हूँ—अर्थात् वही मेरा गंतव्य स्थान है।

ओ मित्र, मैं यहाँ पर उन्हीं सच्चिदानंद को ही—जान में या अनजान में—सदा ढूँढ़ा करता था। उनके अतरिक्त मैं कभी किसी वस्तु को नहीं चाहा करता था, परंतु वे मिलते कहाँ थे। क्योंकि उन्हीं के धोखे में इस मायापुरी के सार-हीन मिथ्या पदार्थों में फँस जाया करता था। जब वे नहीं मिलते थे, तब मैं घबराकर रोने लगता था। फिर ढूँढ़ता था, परंतु फिर भी यहाँकी जादूगरनी मुझ पर अपना विचित्र प्रभाव डाल कर मुझे भटकाया करती थी, और मैं सदा अपने वास्तविक गंतव्य स्थान से कोसों दूर रहा करता था। परंतु अब वह बात नहीं रही है। आज मेरे नेत्रों के सम्मुख वह उज्ज्वल प्रकाश होरहा है, जिस ने

उस जादू को दूर करके वास्तविकता को स्पष्ट कर दिया है। कारण यह था कि यहाँ के जादूगरों ने मेरे गढ़ को मलिन करके अंधकार फैला दिया था, जिसमें मैं अंधा होकर सब कुछ भूल गया था। अब उसी प्रकाश में मेरी सब भूलें निकल गई हैं और मैं इस योग्य होगया हूँ कि अब सीधे व सरल मार्ग पर चल कर अपने गंतव्य स्थान पर पहुँच जाऊँ। अब तक मैं ठोकर पर ठोकर खाकर रोता हुआ चलता था, पर अब इन सब माया-कृत कौतुक भरे दृश्यों को देखता हुआ उनसे राग-द्वेष रहित होकर प्रसन्न होता हुआ चलूंगा। मुझे यह यात्रा पूरी करनी अवश्य है, बिना इस यात्रा के पूरे किये हुए मैं अपने गंतव्य स्थान पर नहीं पहुँच सकूंगा। वहाँ पहुँच कर मेरी यात्रा का अंत हो जायगा और मेरे ये सम्पूर्ण मायाकृत खेल भी पूर्ण हो जायँगे। यह भविष्य मुझे इस प्रकाश में प्रत्यक्ष हो रहा है।

मित्र विवेकानंदजी, मेरी ऐसी उच्च दशा केवल आप ही के द्वारा हुई है। मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हूँ। आपने ही मेरे नेत्रोंके ऊपर से आवरण हटा कर सत्य का प्रकाश फैला दिया है, आप ही ने मुझे मेरे उपास्य देव सच्चिदानंद के दर्शन भी करा दिये हैं। आप ही ने मेरे विचले हुए मनोरामको असुरोंसे रक्षा करके उन्हें मेरे अधीन बना दिया, जिससे मेरा मार्ग सुगम होगया है। क्योंकि वही विचला हुआ मार्ग में रोड़ा अटकाया करता था। आज मैं वह भूला हुआ यात्री नहीं रहा, आज मैं अंधकार में भटकता हुआ परम दुःखी

यात्री नहीं रहा, आज मैं आप ही की कृपा से मार्ग परिचित यात्री बन गया हूँ। अब मेरी सब भूलों का अंत हो गया है और मेरा मार्ग अत्यंत सरल व सुगम होगया है। आपने मुझे मेरे गंतव्य स्थान के द्वार पर खड़ा कर दिया है। अब निश्चित स्थान पर पहुँचने में विशेष विलंब नहीं है।

इति

ॐ ओ३म् सच्चिदानंद ॐ